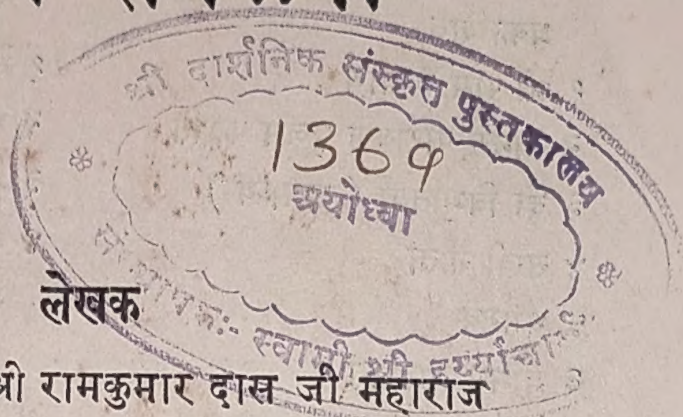


श्रीमते रामानन्दाय नमः
'विजय' ग्रन्थमाला की पहली मणि

हिन्दी
७२

वेदों में रामकथा



मानस तत्वान्वेषी पं० श्री रामकुमार दास जी महाराज

'रामायणी, वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न'

संस्थापक 'श्री रामग्रंथागार' वरविश्राम बाग

मणिपर्वत श्री अयोध्या जी

प्रकाशक

सेठ श्री ब्रजमोहन दास जी 'विजय'

शुजाल पुर (मध्यभारत)

[सजिल्द निवछावरि ४]

दान कर्ता

व्याकरण वेदान्ताचार्यः

स्वामी श्री हर्याचार्यः

लेखक की अब तक की कृतियाँ

प्रकाशित

- १ श्री राम मन्त्रार्थ
- २ मानस पारायण पूजन पद्धति
- ३ दो विभूतियाँ (अप्राप्य)
- ४ सखी गीता
- ५ धर्मरथ
- ६ मानस सिद्धान्त
- ७ श्री जानकी चरणचामर
की सरला टीका
- ८ रजः प्रच्छालिनी (श्री जानकी
चरणचामर का पद्यानुवाद)
- ९ मङ्गल पचीसी (पद्य)
- १० संवाद बतीसी (रम्भा शुक
संवाद का सरस पद्यानुवाद)
- ११ वेदों में राम कथा

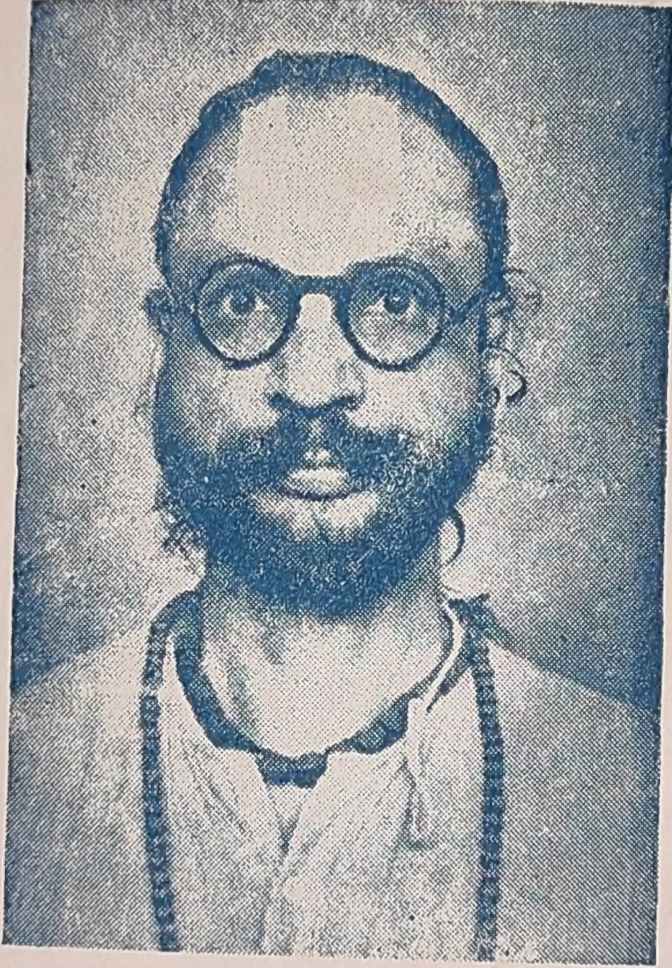
अप्रकाशित

- १ वेदों में कृष्ण कथा
- २ मानस रत्न मंजूषा
- ३ मानस मनन
- ४ मानस समाधान रत्नावली (रा. च.
मा. की दो सौ शङ्काओं का आलो-
चनात्मक शास्त्रीय समाधान)
- ५ सरल हवन पद्धति
- ६ भक्तमाल भूमिका भाष्य
- ७ भक्त भास्कर (३०० छप्पयों में)
- ८ मानस मुक्तावली
- ९ मानस की वैदिकता
- १० तुलसी-मानस माल (सङ्कलित)
- ११ स्तोत्र मञ्जरी (संस्कृत)
- १२ पद्य प्रलाप
- १३ ब्रह्मा की भोली या विश्ववैचित्र्य
- १४ श्री सीता गुण-गान

क्षमा याचना

बहुत सावधानी करने पर भी दोष कोश मानव स्वभाव वश दृष्टि दोष से प्रूफ देखने में चार छ अशुद्धियाँ आ ही गई हैं। उन एकाध अक्षरों की अशुद्धियाँ मूल और टीका मिलाकर पढ़ने से ठीक हो जाती हैं अतः विश पाठक उन्हें पढ़कर सुधार लेंगे। मन्त्रों के क्रम संख्या की गड़बड़ी से कोई विशेष हानि नहीं।

युक्तं यस्य वचो हरि-ध्वनि निभं यावन्न कर्णं गतम्,
 तावन् 'मानस'-विघ्नकारि-करिणो गर्जन्ति गर्वाकुलाः ।
 सोऽयं रामचरित्रमानसमहातत्वानुसंधायकः,
 श्रीमान् 'रामकुमार' पण्डित वरः सम्बर्द्धयते सूक्तभिः ॥ १ ॥
 द्वाभ्यां संभूय गीतं रघुपतिचरितं रामयज्ञप्रसंगे,
 द्वाभ्यामश्वोपनीतो रघुपतिपृतना निर्जिता द्वागुभाभ्याम् ।



ले
ख
क

ले
ख
क

हंहो किन्त्वेक एव श्रुतिशत-सहितां रामगाथां गृणाति,
 संदेहान् चोरयित्वा जयति गुणिगणान् राम पूर्वः कुमारः ॥ २ ॥
 संशय-‘तारक’ नाशनशीलो, विबुध कदम्ब-विनोद सलीलः ।
 रामचरित मानस-सुविचारो जयतु सदा कवि रामकुमारः ॥ ३ ॥
 (ये तीनों श्लोक-शास्त्रार्थ महारथी पण्डित श्री माधवाचार्य
 शास्त्री (देहली) रचित हैं ।)

श्रीमते रामानन्दाय नमः

भूमिका

भारत की सनातन प्रजा का धार्मिक विधान वेदों के आधार पर बना हुआ है। शानकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा कर्मकाण्ड इन तीन विभागों में वेद बाँटा गया है। ऋक्, यजु साम और अथर्व आदि चार नामों से वेदों को विश्व ने सुना है। वेद मानव जाति के प्रकाश का भण्डार है। प्राचीन महर्षियों ने उनके गूढतत्त्वों का अध्ययन किया और उस अध्ययन को उपनिषदों दर्शनों तथा पुराणों के रूप में मानवों को समझाया। युगों के अनुसार हजारों लाखों सद्ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं पर सभी में वेदों का प्रकाश घूमता हुआ उतरा। गुरुओं ने इसे अमृतत्व कहा और सुरक्षित रखकर पीढ़ियों को दिया।

वेदों की प्राचीनता सम्पूर्ण विश्व को मान्य हुई परन्तु उनकी रचना के सम्बन्ध में लोक एक मत नहीं हुआ। पाश्चात्य लोग वेदों की उत्पत्ति उस प्रकार नहीं मानते जिस प्रकार भारतीय विद्वान मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि वेद मनुष्यों के लिखे हुए हैं और ईसा से लगभग दो हजार वर्ष पहले की रचना है। भारत के विद्वानों का मत इन विचारों के सर्वथा विरुद्ध है। उनका कहना है कि वेद अपौरुषेय हैं और बहुत-बहुत प्राचीन हैं। उनका यह भी विश्वास है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और पहले यह देवताओं को मिला है। इस विषय का प्राचीन ऋषियों ने कुछ संकेत भी किया है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं,
यो वै वेदाँश्च प्रहिणोतितस्मै ।

तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं,
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ।

(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

सृष्टि के आरम्भ में जिसने पितामह ब्रह्मा को उत्पन्न किया और उसी के लिये जिसने वेदों का उपदेश दिया। अपनी बुद्धि को प्रकाशित करने वाले

उस देव की मैं मुमुक्षु शरण लेता हूँ । यहाँ वेदों को उस परमपिता परमात्मा ने सृष्टि में उत्पन्न हुए सर्व प्रथम सृष्टि कर्ता ब्रह्मा को पढ़ाया । इस प्राचीन विश्वास पर सनातन धर्म के विद्वान् वेदों को अपौरुषेय मानते हैं । इसके अतिरिक्त और भी बहुत से प्रमाणों से पाश्चात्य विद्वानों के, ईसा से दो हजार वर्ष पहले वेदों की रचना हुई है, इन प्रचारों का खण्डन हो जाता है इस कारण वेदों का अत्यन्त प्राचीन होना सिद्ध होता है ।

वेदों ने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध किया है । वेदों की सारी ऋचाएँ ईश्वर महिमा का गान करती हैं इसलिये वेदों को ईश्वरीय ज्ञान से ओत-प्रोत कहा है । ईश्वर सम्बन्धी जितने भी मन्त्र हैं सभी वेदों में आये हैं और वे सब वैदिक कहलाते हैं । उपासना काण्ड को मानकर जितने भी भारत में सम्प्रदाय चले हैं सबके मन्त्र वेदों में मिलते हैं । वेदों के अन्दर भी सबसे प्राचीन ऋग्वेद है इसलिये ऋग्वेद में जिन उपासनाओं के मन्त्र हैं उन्हें बहुत ही महत्व दिया गया है ऐसा वैदिकों का मत है ।

अवतारों का भी विवरण वेदों में अच्छी प्रकार से हुआ है । यद्यपि वेद अवतारों से पूर्व में ही सृजन हो चुके थे परन्तु उनमें परात्पर परमात्मा के भावि चरित्रों का भी वर्णन अवतारों के साथ पवित्र मानकर किया गया है । इनमें वेदों की प्राचीनता नष्ट नहीं होती क्योंकि ब्रह्म के सगुण, निर्गुण तथा अवतार के कार्यों का चित्रण ही वेद कहलाता है वही वहाँ हुआ है ।

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे,

वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ।

तस्माद्रामायणं देवि वेद एव न संशयः ।

(इत्यगस्त्य संहितावचन)

वेदों से वेद्य परब्रह्म जब दशरथनन्दन के रूप में अवतरित हुए तब वेदों ने भी प्राचेतस् भगवान् वाल्मीकि जी के मुख से स्वयं रामायण रूप में अवतार लिया, अतः भगवान् शिव भगवती पार्वती जी से कहते हैं, देवि ! श्रीरामायण स्वयं ही वेद है इसमें संशय नहीं है । इन पवित्र वचनों के आधार पर वेदों में निरूपित अवतारों के चरित्र या उनके वर्णन विशेषतः समुचित कहे जा

सकते हैं। प्राचीन काल से ऐसी ख्याति सुनी जाती है कि महर्षि वाल्मीकिजी ने वेद माता गायत्री के एक-एक अक्षर पर एक-एक हजार श्लोक लिखे और इसी प्रकार के पूरे मंत्र के चौबीस अक्षरों पर श्री रामायण रूप में सम्पूर्ण राम का चरित्र लगभग चौबीस हजार श्लोकों में लिखा। श्री वेदमाता गायत्री परात्पर ब्रह्म का स्मरण कराती है और उसी की ओर जीवों को आकृष्ट करती है। श्री रामायण भी परात्पर राम के अवतार का स्मरण कराती है और उन्हीं की ओर जीवों को खींचती है। श्री रामायण और ब्रह्म गायत्री एक हैं और दोनों वेद हैं यही भगवान् वाल्मीकि रचित रामायण के आरम्भ में प्रतिज्ञा हुई है।

प्राप्त राज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः,
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्र पदमात्मवान् ।
चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः ।

(श्रीमद्वाल्मीकीये रामायणे चतुर्थ सर्गः)

भगवान् वाल्मीकि ऋषि ने रामावतार का वर्णन विचित्रपदों में और विलक्षण अर्थपूर्ण वाक्यों में किया है। सम्पूर्ण रामचरित्र को महाकाव्य श्री रामायण के रूप में उस महान् ऋषि ने पाँच सौ सर्ग में लिखा है इस प्राचीन प्रसिद्धि ने रामायण को वेद कहा है और इसी पर सारा ऋषि मण्डल रामायण की ओर उसे वेद मानकर झुका है।

वेदों ने अनेक अवतारों को कहा है परन्तु उनमें से रामावतार को लोक ने विशेष रूप से सुना है, इसलिये कि यह अवतार मर्यादा पूर्ण अवतार हुआ है। धर्म और सत्य के पवित्र आदर्श को मानव जाति के सामने स्थापित करने वाला यह अवतार परात्पर ब्रह्म का अवतार कहा गया है। ब्रह्मविद्या के महान् गुरु भगवान् वाल्मीकि, भगवान् अगस्त तथा भगवान् वशिष्ठादि ऋषियों ने रामावतार को विश्वकल्याण के लिए बताया है। उन्होंने राम के तेज, बल, वीर्य और पराक्रम को देखकर राम से अधिक क्या कोई इतना भी नहीं है यह निश्चय किया है। इन महान् ऋषियों का झुकाव राम के उदार और पवित्र चरित्रों के वर्णन में हुआ और इसी हेतु हजारों, लाखों और करोड़ों रामा-

यणों की रचनाएँ भूलोक में हुई। राम की उपासना जो अवतार के पहले लोक में प्रचलित थी और जिसका उद्गम सगुणब्रह्म की धारा से था, निर्गुण ब्रह्म के विचार भी जिसमें निहित थे—रामावतार के बाद प्रौढ़ हो गई। ज्ञान काण्ड और कर्मकाण्ड दोनों ही उसमें सहज रूप से मिल गये। वेदों के तत्वों को यथार्थ रूप से जानने वाले ऋषियों ने परात्पर राम की उपासना में रामावतार के रूप को स्थापित कर दिया। लोक ने परात्पर राम में और मर्यादा-वतार के राम में कोई अन्तर नहीं देखा। इस प्रकार रामोपासना की धारा लोक में युगान्तरों से बही और अब तक बह रही है। आज के संसार ने उसे श्री सम्प्रदाय के नाम से पहचाना है अथवा तो उसमें आचार्यपाद रामानन्द के परम्परया आचार्य रूप में प्रादुर्भाव होने से उसकी महती प्रतिष्ठा बढ़ी है और अब उसका नाम श्री रामानन्द सम्प्रदाय भी हुआ है।

प्राचीन काल में प्रजा को यह बताने की आवश्यकता नहीं थी कि वैदिक ऋचाओं से जिस परतत्त्व का ज्ञान होता है अवतार में आये हुए राम वही हैं। संहिता काल के ऋषियों ने वैदिक ब्रह्मतत्त्व को राम में देखा और सीधा निर्णय दिया 'राम एव परब्रह्म' राम परमात्मा परब्रह्म हैं उनकी उपासना करो। परमात्मा अवतार में आया और वेद भी नये रूप में मनुष्यों के सामने आये। भगवती आत्रेयी ने भगवान् वाल्मीकि के आश्रम से भगवान् अगस्त के आश्रम को जाते समय मार्ग में वन देवता को दण्डकारण्य में बताया कि वह भगवान् अगस्त के आश्रम में ब्रह्मविद्या के अध्ययन को जाती है, भगवान् वाल्मीकि के यहाँ उसे अध्ययन करने में विघ्न था। एक तो दो बालक लव और कुश जिन्हें महर्षि ब्रह्मविद्या का अध्ययन कराते हैं बड़े ही मेधावी हैं—उनके साथ वह अध्ययन नहीं कर सकती। दूसरे महर्षि स्वयं स्वरचित चतुर्विंशति साहस्रिका संहिता के प्रचार में हैं स्वतन्त्र दूसरे छात्रों को समय नहीं दे सकते।

“अथ स भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मजस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय” (उत्तर रामचरितम्)

अथ—पितामह ब्रह्मा की आज्ञा से भगवान् वाल्मीकि ने मनुष्यों में सबसे पहले शब्द ब्रह्म का उतना सुन्दर रूपान्तर रामायण नाम के इतिहास में

किया है। इस कथन से प्राचीन युगों में रामचरित्र को वेद मान लिया गया। ब्रह्मविद्या के गुरुओं का भुकाव जब रामचरित्र की ओर हुआ तो साधारण प्रजा का भुकाव तो होना ही हुआ। युगों के परिवर्तनों से जब प्रजा में अविद्या के प्रभाव से अन्धकार का प्रसार हुआ और प्रजा को यह समझने की आवश्यकता हुई कि राम का अवतार परात्पर अवतार है तब वेदों में राम को या रामकथा को खोजने का समय आया। बड़ी-बड़ी विभूतियाँ उस समय आईं। और उन्होंने वेदों में घुसकर राम को और रामकथा को खोजा और संसार को बताया कि वेदों में रामचरित्र है और रामचरित्र में वेद है।

भारत के इतिहास में पिछिले युगों में ऐसे भी काल आये हैं जिनमें वेदों पर ही भयानक आपत्ति आई है। उन्हें नष्ट करने के अनेक उपाय किये गये हैं देश के प्रतापी ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठस्थ करके सुरक्षित रखा है परन्तु फिर भी वेदों के बहुत से अंश नष्ट हो गये हैं। ऋग्वेद संहिता के हजारों सूक्त लोप हैं यह ऋग्वेद के गुरुओं की सेवा में संहिता को नियम पूर्वक अध्ययन करते समय मैंने सुना है। म्लेच्छों का शासन भारत के अन्दर उससे भी अधिक भयानक आया, उसमें हिन्दू राष्ट्र की तलवार टूट गई और देश परतन्त्रता की शृङ्खलाओं में जकड़ गया। उस समय जो रोमाञ्चकारी संकट प्रजा ने सहा उसे लिखने में हृदय काँपता है। हिन्दुओं के विपुल धन, विपुल जन, विपुल साहित्य तथा विपुल सम्मान धूल में मिल गये। किसी प्रकार हिन्दू जाति जीवित रह गई यह भगवान की बड़ी कृपा हुई। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ से देश का भाग्य बदला और कुछ समय अच्छा आया। उसी समय हिन्दू धर्म के प्रतापी आचार्य रामानन्द का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने प्रजा में जीवन लौटाया। वे निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ थे। उनकी प्रतिभा से अत्याचारी सम्राट् काँप गये और अपने अत्याचार बन्द कर दिये। रामानन्द को इतिहास ने युगप्रवर्तक महापुरुष माना है इसलिये कि उन्होंने धर्म की मर्यादा को देश में सुरक्षित किया है। आचार्य रामानन्द के साथ उनके हजारों तेजस्वी शिष्य प्रशिष्य भी उत्पन्न हुए, उन्होंने देश भर में फैल कर प्रजा में सुख शान्ति की स्थापना की। रामोपासना का पुनः प्रचार हुआ

उसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम का पवित्र आदर्श था । लोक ने राम को दीन बन्धु और पतितपावन के रूप में देखा इसी से उनकी उपासना की ओर वह झुका । कुछ पीढ़ियों के बाद रामनन्द की परम्परा में गोस्वामी श्री तुलसीदास जी का पदार्पण हुआ । उन्होंने 'रामचरित मानस' महाकाव्य की रचना करके उसे विश्व को समर्पण किया । इस अनुपम ग्रन्थरत्न से भारतीय संस्कृति सुरक्षित हुई और प्रजा में सुख तथा शान्ति फैली । हिन्दी भाषा में रामायण पुनः वेदों के रूप से आई । इसका प्रभाव भी भारत में वैसा ही पड़ा जिस प्रकार पिछले युगों में श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण का पड़ा था । इन पवित्र ग्रन्थों से जो उपकार हुआ है उसे संसार ही जानता है । यह विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का कार्य है ।

गोस्वामी जी के कुछ ही पीछे हम फिर वैदिक क्रान्ति का समय देखते हैं । वेदों में राम कहाँ हैं ऐसे विमत वादियों के प्रश्न सुनते हैं ? इस विवाद के समाधान करने को उस समय श्री आचार्य नीलकण्ठ का दर्शन होता है । विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में सम्भवतः इन प्रतिभाशाली विद्वान का जन्म होता है । चतुर्धरवंशीय पं० गोविन्द सूरि के ये पुत्र थे और दक्षिण गोदावरी तट पर किसी कोपर नामक ग्राम में निवास करते थे । आचार्य नीलकण्ठ ने 'मन्त्र रामायण' नाम के वैदिक ग्रन्थ की रचना की और उसमें संपूर्ण रामकथा को वेदों की ऋचाओं से सिद्ध किया । मन्त्रण रामायण में प्रायः ऋग्वेद संहिता के मन्त्र हैं तथा कुछ अन्यत्र से भी लिये गये हैं । उन मन्त्रों पर विस्तृत संस्कृत भाष्य है जिसे पढ़कर नीलकण्ठ के प्रखर पाण्डित्य का प्रदर्शन होता है । उपासना काण्ड का मुख्य मन्त्र जो षडक्षर मंत्रराज कहलाता है उसी ग्रन्थ के अन्दर ऋग्वेद के मन्त्र भाग से लेकर सिद्ध किया है । रामोपासकों को यह ग्रन्थ बड़े उपकार का स्वीकार हुआ है । भाग्य से यह ग्रन्थ आज उपलब्ध भी होता है परन्तु उसका प्रचार कम है । आचार्य नीलकण्ठ ने और भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें से बहुत से उपलब्ध भी होते हैं । इस प्रकार हम पिछले युगों के क्रमशः इतिहास को पढ़ते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि पिछले विद्वानों ने हमें बहुत कुछ सामग्रियाँ

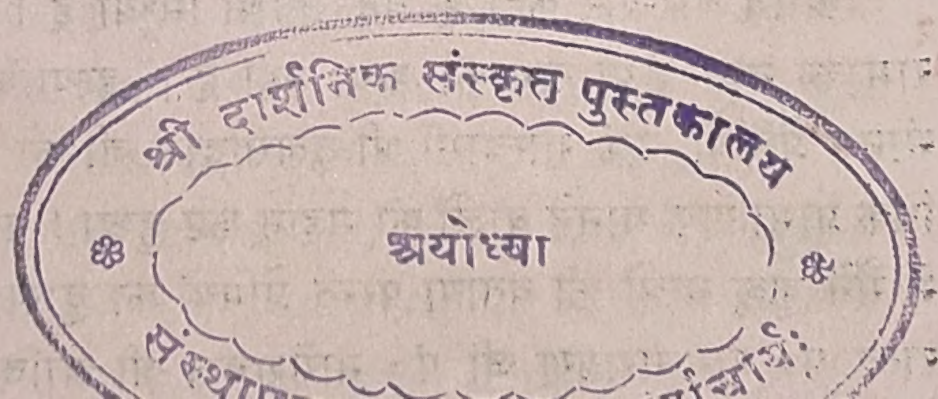
दी हैं जिनका हम उपयोग नहीं कर पाते हैं और उनकी खोज भी नहीं कर पाते हैं ।

आज हमारे सामने वेदों का प्रश्न पुनः पुनः उपस्थित है । बहुत से बुद्धिवादी आडम्बरी जनता में यह प्रचार करते हैं कि वेदों में राम नहीं हैं । यद्यपि ऐसे कथन पर प्रजा कम विश्वास करती है फिर भी कुछ लोगों को भ्रम हो ही जाता है । ऐसी अवस्था में इस समय ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता है जिसमें वेदों का तात्पर्य सरल हिन्दी में समझाया गया हो और जनता जिसे पढ़ कर अपना भ्रम हटा सके । इस कमी को पूरा करने की इच्छा से श्री अयोध्या निवासी पं० श्री रामकुमारदास जी रामायणी ने 'वेदों में रामकथा' नामक ग्रन्थ को लिखा है । आपने बड़े परिश्रम से वेद मन्त्रों का सब प्रमाण खोज करके उनपर सुवोधिनी हिन्दी टीका की है । यह ग्रन्थ राम भक्तों के लिये बड़ा ही उपयोगी होगा । इससे देश और राष्ट्र का भी अधिक हित होगा ऐसा मेरा अनुमान है ।

डा० आर, एस, डी० योगिराज गोवत्स

२८-१०-५७

हरिद्वार



❀ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❀

प्राक्कथन

या वेदेषु कथिता त्रिपथगा लोक पावनी ।

सा श्रीराम कथा दिव्या किञ्चदत्र विराजती ॥

सूरिणा नीलकण्ठेन मन्त्ररामायणाभिधम् ।

कृता संगूढं यद्भाष्यं तत्संक्षिप्तं कृता मया ॥

सेमरावाँ (बाराबंकी) के कुछ मानस प्रेमियों ने १५ जनवरी सन् १९४५ ई० को एक तीन दिन का श्री रामायण सम्मेलन तथा तीन दिन का ही अखण्ड श्री हरि नाम सङ्कीर्तन किया था । सम्मेलन के अन्तिम दिन में अकबरपुर (जौनपुर) के प्रसिद्ध व्याख्यानदाता पं० श्री शंकरानन्द “प्रति-वाद भयंकर” ने अपने प्रवचन में कहा कि गोस्वामी तुलसीदास ने जो,

“वेद विहित तेहि दशरथ नाऊँ”

“नेति नेति जेहि वेद निरूपा”

वरणहु रघुपति विशद यश श्रुति सिद्धांत निचोरि,

जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।

सोइ दशरथ सुत भगतहित कोशल पति भगवान् ॥

आदि बार-बार कहा है वह सर्वथा मिथ्या है । क्योंकि वेदों में कहीं भी राम का नाम तथा राम की कथा नहीं है । इत्यादि सुनकर उपस्थित सभी मानस प्रेमियों एवं गोस्वामी श्री तुलसीदास जी की हर एक बात को वेदाधिक प्रामाणिक मानने वालों को महान् कष्ट हुआ । यद्यपि कि अन्तिम प्रवचन में मैंने कुछ मन्त्रों को बताया परन्तु प्रेमियों का दुःख न गया । सभा के उपरान्त पं० रामनारायण जी पं० नागेशदत्त जी आदि कई मानस प्रेमियों ने वेदों से श्री रामचरित्र सङ्कलन करके हिन्दी भाषा में टीका करने के लिए मुझे बारम्बार प्रेरित किया । मैंने मन्त्र रामायण का नाम पता बतला दिया तो भी उन भावुक रामायणियों को सन्तोष नहीं हुआ । उन्हीं प्रेमियों की शुभ

प्रेरणा से मैंने मन्त्र रामायण का साधारण सा हिन्दी अनुवाद कर लिया। उसके दो वर्ष बाद “अखिल भारतीय रामायण सम्मेलन” के कलकत्ता वाले अधिवेशन में उन्हीं पं० शंकरानन्द जी ने प्रज्ञाचल्लु पं० बच्चू लाल जी ‘सूर’ से पूछा कि वेद में राम का नाम कहाँ है ? सूर जी ने कहा कि—जिन शाखाओं में राम का नाम है वे आज उपलब्ध नहीं हैं। इसका असली कारण यह है कि बच्चू सूर जी की “कर्णपिशाची” का प्रवेश वेदों में नहीं है। इससे वह कर्णपिशाची उन्हें वेद का मन्त्र तो बतला नहीं सकती थी। अतः सूर जी ने सोचा कि बड़ा भारी वेदज्ञ कहाने वाला इतना प्रसिद्ध व्याख्यान-दाता जब मुझ अन्धे से पूछ रहा है तो निश्चय ही प्राप्य शाखाओं में राम-नाम न होगा, इसलिए वाक् चातुरीमय उत्तर दिया था। उस सम्मेलन में आहूत होने पर भी गलाबाज न होने के कारण माँगने पर भी उस समय मुझे समय नहीं दिया गया कि मैं वेद का उद्धरण बतलाऊँ, दिखलाऊँ। परन्तु तभी से मैंने मन्त्र रामायण की हिन्दी टीका के ठीक करने में लग गया और शीघ्र ही टीका का प्रस्तुत रूप तैयार हो गया।

आज से चार सौ वर्ष पूर्व महाविद्वान एवं परम भगवद् भक्त श्री नीलकण्ठ जी ने इस भारत भूमि को अलंकृत किया था। (कई लोगों का मत है कि सुप्रसिद्ध पं० श्री नीलकण्ठ दीक्षित ही मन्त्र रामायणादि के कर्ता हैं) महामहोपाध्याय पं० श्री कालीप्रसाद जी शास्त्री ने “विद्वद्वृत्तम्” के द्वितीय भाग में लिखा है कि “नीलकण्ठ सूरिः अयमीसोः षोडश्यां शताब्द्यां गोविन्द सूरैः सकासात् चतुर्धर वंशे गोदावर्याः पश्चिम तटवर्तिनि महाराष्ट्रस्य कूर्परे ग्रामे बभूव। अयं महाभारतस्य “भारत भावदीपिका” नाम्नाष्टीकायास्कर्ता।”

इन्होंने वेदों से श्रीकृष्ण कथा सम्बन्धी एक सौ दस मन्त्रों का सङ्कलन “मन्त्र भागवत” नाम से और श्री राम-कथा सम्बन्धी डेढ़ सौ मन्त्रों का सङ्कलन “मन्त्र रामायण” नाम से करके उन पर संस्कृत में सुन्दर भाष्य किया है। इन्होंने अपने ग्रन्थों में अपने लिए “श्री मत्पदवाक्य प्रमाण मर्यादा धुरन्धर चतुर्धर वंशावतंश गोविन्द सूरि सूनुः नीलकण्ठः” लिखा है। प्राचीन शैली के अनुसार किसी मन्त्र का पता नहीं दिया है। मैंने संहिताओं (मन्त्र

भाग वेदों) से ढूँढ़-ढूँढ़कर सभी मन्त्रों का पता प्रत्येक मन्त्रों के साथ दे दिया है । किसी-किसी एक ही मन्त्र के कई संहिताओं में एकाधिक शब्दों के अनेक पाठ फेर हैं । जैसे “वेदों में राम कथा” के १५४ मन्त्र में ऋग्वेद में “पंथा ये भिः” पाठ है पर अथर्व वेद में “पंथानो ये भिः” पाठ है । १५६ मन्त्र के चतुर्थ चरण का पाठ ऋग्वेद में “अरिष्ठां त्वां सह पत्यादधामि” पाठ है, परन्तु अथर्व वेद में “स्योनंते अस्तुसह सम्भलायै” पाठ है । १५८ मन्त्र में जहाँ ऋग्वेद में “उत्तिष्ठत्” पाठ है वहीं अथर्व वेद में “वीरयध्वम्” पाठ है, इसी मन्त्र के तृतीय चरण का पाठ ऋग्वेद में “अत्राजहाम ये असन्न शेवाः” पाठ है वहीं शुक्ल यजुर्वेद में “अत्राजहीमोऽशिवा ये असत” पाठ है । इसी तरह अनेक मन्त्रों में है । ऐसी स्थित में विद्वद्ब्रिष्ठ पं० श्री नीलकण्ठ जी ने जिस पाठ को रख कर अर्थ किया है मैंने उसी पाठ को रखा है, और जो मंत्र उनके सङ्कलित मन्त्र रामायण के नहीं हैं मेरे अन्वेष्टित हैं । उनका वही पाठ है जो मुझे प्रथम मिला एवं प्रसङ्गानुकूल है, पता मैंने सबका दिया है अर्थ करने में श्री नीलकण्ठ जी के भाष्य को ही अपना पथप्रदर्शक माना है । मंत्र रामायण के मन्त्रों को मैंने कहीं-कहीं आगे पीछे भी कर दिया है परन्तु अर्थ उनके भाष्य के अनुसार ही हैं । मन्त्र रामायण की मन्त्र संख्या मन्त्रों के आदि में दे दिया है जिससे स्पष्ट हो जाय कि कौन-कौन मन्त्र इस संग्रह में मन्त्र-रामायण के हैं और कौन-कौन नहीं हैं ।

इस ग्रन्थ में १५५ मन्त्र रामायण के हैं, तथा २४ वाँ और अन्त के अयोध्या वर्णन वाले ६ मन्त्र परम पूज्य वेदोपनिषद्भाष्यकार पंडितराज स्वामी श्री भागवदाचार्य जी महाराज की टीका सहित स्वामी जी से आज्ञा लेकर ही इसमें दिया गया है । शेष मेरे अपने अन्वेष्टित हैं । मन्त्रों का पाठ स्वामी दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेद, यजुर्वेद भाष्य (अजमेर से प्रकाशित) तथा प्रसिद्ध आर्यसमाजी पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी के संशोधित एवं प्रकाशित वेदों से हैं ।

“वेदों में रामकथा” में संग्रहीत वेद मन्त्रों के इस अर्थ के सम्बन्ध में कुछ लोग ऐसा कह सकते हैं कि इन मन्त्रों का जो अर्थ पं० श्री नीलकण्ठ

जी ने अथवा इस ग्रन्थ के लेखक ने किया है, उस अर्थ को क्या अन्य वेद व्याख्याताओं ने भी किया है। और यदि नहीं किया है तो यह अर्थ माननीय कैसे हो सकता है। इस पर उन्हें समझ रखना चाहिए कि वेद मन्त्र कल्पवृक्ष वत् अनेक अर्थ देने वाले हैं। यहाँ मैं एकाध मन्त्र उदाहरण में रखता हूँ; जिनका अर्थ कई तरह से किया गया है और सब एक दूसरे के विरुद्ध हैं। परन्तु उनमें किसी अर्थ को मिथ्या कहने का साहस कोई भी नहीं कर सकता। जैसे ऋग्वेद १।१६४।८६ अस्यवामीय सूक्त पर “देवता यज्ञ और आत्मा” को लेकर तीन प्रकार की व्याख्याएँ हैं और उनके सम्बन्ध में निरुक्ति का मत है कि,

अयं मंत्रार्थ चिन्ताभ्यूहोऽभ्यूहोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतः ॥

(निरुक्तपरिशिष्ट १।१२।१२)

मन्त्र का यह अर्थ विचार परम्परागत अर्थ के और तर्क से निरूपित किया गया है कर्मकाण्डियों में निम्नलिखित मन्त्र बहुत प्रचलित है।

चत्वारिशृङ्गा त्रयो अस्यपादा द्वेशीर्षे सप्तहस्तासो अस्य ।

त्रिधावद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्या आ विवेश ॥

(शु० यजु० १७।६१ ऋ० ४।५८।३ तै० आ० १०।१०।२ नि० १३।७)

इसका अक्षरार्थ है कि “अस्य (इसके) चत्वारि शृङ्गाः (चार सींग हैं) त्रयः पादाः (तीन पाँव हैं) द्वेशीर्षे (दो शिर हैं) अस्य (इसके) सप्त हस्तासः (सात हाथ हैं यह) महादेवः वृषभः (महादेव बलवान बैल) त्रिधावद्धः (तीन तरह से बाँधा हुआ) रोरवीति (जोर से रोता-चिल्ला रहा है। यह) मर्त्या (मरण धर्मवालों में) आविवेश (प्रवेश किया)।

इस मन्त्र में वर्णित यह महादेव वृषभ कौन है। इस पर कई मत हैं महर्षि पतञ्जलि ने पाणिनीय सूत्र (१।१।१) पर भाष्य लिखते समय बतलाया कि यह महादेव शब्द है। नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात ए चार प्रकार के शब्द ही चार सींग हैं। भूत भविष्य और वर्तमान ए तीन काल तीन पैर हैं। नित्य और कार्य ए दो प्रकार की भाषायें दो शिर हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, और अधिकरण ए सात कारक या विभक्तियाँ

सात हाथ हैं । और मुख कण्ठ और हृदय इन तीन अङ्गों से शब्द उच्चरित होता है, यही उसका तीन तरह से बँधा होना है ॥ १ ॥

निरुक्त परिशिष्ट १३-७ के मतानुसार चार वेद अथवा होता, उद्गाता अध्वर्यु और ब्रह्मा चार सींग है, सोमरस निकालनेवाले प्रातः सवन मध्यं सवन और सायं सवन तीनों समय अथवा ऋग्यजुस्साम ही तीन पैर हैं, हविर्धान और प्रवर्ग्य अथवा दो हवन दो शिर हैं, सात वैदिक छन्द अथवा ऋत्विक् सात हाथ हैं । वह यज्ञ मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प इन तीनों से नियमित किया गया है, यही उसका तीन तरह से बँधा रहना है ॥ २ ॥

वर्तमान काल के प्रसिद्ध आर्य समाजी वैदिक विद्वान सातवलेकर जी ने इस मन्त्र का महादेव वृषभ हृदय को सिद्ध किया है । क्योंकि इस मन्त्र के ऋषि वामदेव हैं और शरीर उदर के वाम भाग में रहनेवाला देव हृदय ही हैं । उन्होंने हृदय का प्रतिपलक (चित्र) भी दिया है । देखिए वैदिक धर्म वर्ष ३३ अङ्क ६ वेद में शरीर-विज्ञान शीर्षक लेख ॥ ३ ॥

श्री हरिश्चन्द्र मैगनीज जिल्द १ संख्या ६ मार्च १५ सन् १८७४ ई० में 'श्रुति रहस्य' शीर्षक से छु अर्थ और भी प्रकाशित हैं जो निम्नलिखित हैं—

श्री रामानुज का अर्थ यह श्रुति ईश्वर के वर्णन में है, चारों वेद चार सींग हैं, नित्य बद्ध और मुक्त तीनों प्रकार के जीव तीन पाद हैं, शुद्ध सत्व और गुणात्मक सत्व इसके दो सिर हैं अर्थात् शिरःस्थान में हैं, महत्तत्वादि, सात प्रकृति और विकृति इसके सात हाथ हैं, ऐसा महादेव श्रेष्ठ वृषभ वासुदेव अपने संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन तीन रूपों से मनुष्यों में बँधता नाम प्रगट होता हुआ सब वस्तुओं को रोरवीति अर्थात् नाम रूपवत् करता है और मर्त्यनाम चेतनाऽचेनन पदार्थों का अन्तरात्मा होकर प्रवेश करता है ॥ ४ ॥

श्री विद्यारण्य का अर्थ यह श्रुति प्रणव परक है, अकार, उकार, मकार और नाद ये इसके चार सींग हैं; अध्यात्म विश्व और तैजस ये तीन पाद हैं, चित् और अचित् ये दो शक्तियाँ शिर स्थान में हैं; भूरादि सात लोक सात हाथ हैं, विराट् हिरण्यगर्भ अव्याकृत इन तीन प्रकारों से बँधा हुआ वृषभ प्रणव ब्रह्म तेजोगमत्व का प्रतिपादन करता है ॥ ५ ॥

श्रीबल्लभाचार्यजी के मतानुयायी का अर्थ यह श्रुति पुष्टि लीलास्थ पूर्ण पुरुषोत्तम का ही प्रतिपादन करती है, उन श्री पुरुषोत्तम के चार नित्य सिद्धादि यूथ शृंग अर्थात् उत्तम स्थान में हैं और उनके तीन पाद अर्थात् प्राप्ति होने के साधन तनुजा, चित्तजा और मानसी यह तीन प्रकार की सेवा है; सख्य और आत्मनिवेदन ये दो भक्तियाँ शिर अर्थात् सिद्ध स्थान में हैं; श्रवणादिक सात भक्तियाँ हाथ अर्थात् साधन स्थान में हैं; श्री पुरुषोत्तम की नौ प्रकार की भक्ति से युक्त जीव अलौकिक सामर्थ्य सायुज्य और सेवा में उपयोगी देह धारण इन तीन प्रकार से बँधा है, और उनकी लीला के प्रवेश के अर्थ धर्म-स्वरूप वर्षा करने वाले और शोभा करने वाले वृषभ अर्थात् श्री आचार्य रोर-वीति नाम भक्तों को मंत्र और ग्रंथ द्वारा उपदेश करते हैं जिससे वर्णधर्मा-जीव अर्थात् सेवामार्गी जीव जब अधिकारी होते हैं तब महादेव लीलास्थ पूर्ण पुरुषोत्तम उनमें आवेश करके लीला का अनुभव कराते हैं ॥ ६ ॥

सङ्गीत पर अर्थ यह श्रुति संगीत का प्रतिपादन करती है, इसके तत, वितत, घन और घमन चार सींग हैं, तीन ग्राम तीन पाद हैं; लय और स्वर दो सिर हैं; सात स्वर या त्रिमूर्छन सप्तक सात हाथ हैं, कण्ठ नाभि और मुख इन तीन स्थलों से बँधा हुआ संगीत रूपी वृषभ अर्थात् गान ब्रह्म मनुष्यों को तन्मय कर देता है ॥ ७ ॥

श्री वेणु पर अर्थ यह श्रुति श्री वेणु का प्रतिपादन करती है, गान में चार रीति की बाणी चार सींग हैं; कोमलादि तीन स्वर पाद हैं, मुख, छिद्र वा लय और स्वर दो सिर हैं; सात रंध्र सात हाथ हैं, अधरोष्ठ दो हस्तों से बँधा है, ऐसा रुद्रोवैवेणुः । इस श्रुति से साक्षाद्रुद्र स्वरूप वेणु 'श्री गोपालमुपास्महे श्रुति शिरो-वंशीरवैदर्शितम्' इससे वेणुरूप ही धर्म ही मनुष्यों में प्रवेश करता है ॥ ८ ॥

✓ साहित्य पर अर्थ यह श्रुति साहित्य का भी प्रतिपादन करती है; इसके आर-मय्यादि कथन चार सींग हैं, लक्षणा व्यंजना और ध्वनि तीन पाद हैं, दृश्य और श्रव्य दो शिर हैं । चित्रादि सात हाथ हैं, गद्य, पद्य और गीत तीन रीति से बँधा है, ऐसा साहित्य रूपी वृषभ मनुष्यों को चित्त में उल्लास कर आनन्द देता है । यथा—

सुभाषित रसास्वाद वद्ध रोमाञ्चकञ्चुकाः ।

विनापि कामिनी संगंकवयः सुखमासते ॥

सुभाषितेन गीतेन युवतीनाञ्चलीलया ।

यस्य न द्रवते चित्तं स वै मुक्तोऽथवा पशुः ॥ ६ ॥

किसी के मत से वह महादेव वृषभ सूर्य है, चारों दिशायें चार सींग हैं, वेद के तीन काण्ड तीन पैर हैं, दिन और रात दो शिर हैं, सातरंग की किरणें सात हाथ हैं, जाड़ा गर्मी वर्षा अथवा पृथ्वी अंतरिक्ष और द्युलोक अर्थात् भू भुवःस्वः तीनों भुवन में नियमित वर्तना सूर्य का तीन तरह से बँधा होना है ॥ १० ॥

आर्य समाज के स्वामी दयानंद सरस्वती के (ऋग्वेद भाष्य के) मत से वह महादेव वृषभ धर्म व्यवहार है, चारों वेद अथवा अर्थ धर्म, काम, मोक्ष अथवा विश्व प्राज्ञ तैजस और तुरीय आदि ही उसके चार सींग हैं । कर्म उपासना ज्ञान अथवा मन शरीर आदि तीन पैर हैं । व्यवहार और परमार्थ अथवा उद्गायन और प्रापणीय अथवा अध्यापक और उपदेशक आदि दो शिर हैं । सात छंद अथवा सात विभक्ति अथवा पञ्च कर्मेन्द्रिय शरीर और आत्मा अथवा पञ्च ज्ञानेन्द्रिय शरीर और आत्मा आदि सात हाथ हैं । मंत्र, ब्राह्मण, कल्प, अथवा कण्ठ, हृदय, शिर, अथवा श्रवण, मनन, निदिध्यासन, अथवा ब्रह्मचर्य, श्रेष्ठ कर्म उत्तम विचार अथवा श्रद्धा, पुरुषार्थ, योगाभ्यास इत्यादि तीन तरह के बन्धन हैं ॥ ११ ॥

आर्य समाज के स्वामी दयानन्द (आर्य समाज के माने महर्षि) जी अनेकों विकल्प करके भी किसी निश्चय पर नहीं पहुँचे, संदिग्ध ही बने रह गये, सायण ने तो विभिन्न मतों की और भी कई व्याख्यायें लिखी हैं । इसी तरह चित्त्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदु ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहात्रीणि निहितानेङ्कयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥

ऋ० १।१६।४५ अथर्व० ६।१०।२७ तै० ब्रा० २।८।८।५ श० ब्रा० ४।१३।१७ नि० १३।६ इस मंत्र का अन्तरार्थ है कि, (वाक् चत्वारि परिमिता) वाणी को चार भागों में विभक्त किया गया है । (तानि पदानि) उन भागों

को (ये मनीषिणः ब्राह्मणाः विदुः) जी मनीषी ब्राह्मण हैं वे ही जानते हैं इनमें से (त्रीणि गुहानिहिता) तीन को तो गुफा में रखा गया है । इससे उन तीनों को तो (नेङ्गयन्ति) सब कोई नहीं बोल एवं समझ पाएँ हैं केवल (तुरीयं वाचं) चौथे विभाग की वाणी ही (मनुष्याः वदन्ति) मनुष्य बोलते हैं ।

वाणी के चार विभाग कौन हैं ? इस पर महर्षि पतञ्जलि ने तो एक ही व्याख्या किया है परन्तु निरुक्त परिशिष्ट १।६ में आर्ष, वैयाकरण, याज्ञिक, नैरुक्तादि कई और सायण के यहाँ विभिन्न मत की सात व्याख्यायें उद्धृत हैं । पूरे मन्त्रों को ही बात नहीं, अपितु मन्त्र के केवल किसी-किसी शब्द पर भी अनेकों विभिन्न व्याख्यायें हैं । जैसे अश्विनौ को देखा जाय, ये अश्विनौ कौन हैं । इस पर विभिन्न मत के समर्थकों के अर्थ गिनाते हुए—द्यावा-पृथ्वी; दिन-रात; सूर्य-चन्द्रमा; दो राजा; दो पुण्यात्मा; आदि कई अर्थ निरुक्त दैवत काण्ड ६।१ में बताया गया है श० ब्रा० ४।१।१।८ में दो वैद्य बतलाया गया है । इसी तरह और भी अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं । निरुक्त के दैवत काण्ड के १।१।३ में इस तरह कहा है कि—

एव मुञ्चावचैरभिप्रायै ऋषीणां मन्त्र दृष्टयो भवन्ति ।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न अभिप्रायों से ऋषियों की मन्त्र दृष्टियाँ होती हैं । अतः कोई भी अर्थ अनुचित इसलिए नहीं कहा जा सकता कि सभी प्राचीन अर्थकारों ने मन्त्रों का साक्षात्कार किया था, जिसे जिस रूप में मन्त्र देवता का साक्षात्कार करके अर्थ लाभ हुआ था उसने वैसा ही लिखा । और मन्त्र साक्षात्कार के विषय में याष्क महर्षि का कहना है कि,

न ह्येष प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा ।

“बिना ऋषित्व और तपस्वित्व के मन्त्र साक्षात्कार नहीं होता”

[वैसे जिनको कोई अपना विशिष्ट मत चलाना, समाज स्थापित करना, अपने को ऋषि कहाना होता है तो वे वेदों का मनमाना अर्थ करते हैं, पर वह अर्थ प्रामाणिक नहीं होता । वे तो कहीं-कहीं अनेकों विकल्प कल्प करके स्वयं भी किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते ।]

... श्री नीलकण्ठ जी को अपना मत या समाज स्थापन करना नहीं था, और

न ऋषि महर्षि कहलाने का ही शौक था । उनमें ऋषित्व और तपस्वित्व दोनों था । इसी से उन्होंने बिना तोड़े-मरोड़े ही भाष्य किया है । व्यास, वाल्मीकि आदि मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने गोस्वामी तुलसीदास जी ने वेदों में श्रीरामचरित्र श्रीकृष्ण चरित्र का होना बताया है । श्री नीलकण्ठ जी ने उन्हीं में से कुछ मन्त्रों का सङ्कलन मन्त्र रामायण और मन्त्र भागवत नाम से कर दिया है ।

जबसे यूरोपियनों के चेले भारत में हुए तब से वे “ईसा पंथी, मूसा (चूहा) पंथी गुरुङ्ग चेले लोग वेद की प्रत्येक बातों को आकाशीय या भौतिक पदार्थ मात्र मानने लगे हैं, वे वेदों में इतिहास नहीं मानते परन्तु प्राचीनकालीन सभी वैदिकों ने वेदों को त्रिकालज्ञ एवं त्रैकालिक वक्ता मानकर वेदों में भौतिक पदार्थों के अतिरिक्त इतिहास भी माना है । प्राचीन काल में वेदार्थ करने के जितने साधन थे उनमें एकमात्र श्री यास्क का निरुक्त ही कुछ बचा है । बाकी सबका कलेवर पूर्णतः या अंशतः कराल काल के गाल में गलित हो गया । श्री यास्क जी परम वैज्ञानिक होते हुए भी वेदों में इतिहास का होना भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं,

इत्यैतिहासका—नि० २-५-१६-२

तत्रैतिहासमाचक्षते—नि० २-५-२४-२

तत्र ब्रह्मेतिहास मिश्रमृङ्मिश्रं गाथा मिश्रं भवति नि० ४-१-६-२

पुण्य कृतकावित्यैतिहासिका—नि० ६-१-१

आज के सर्वमान्य धर्मशास्त्र प्रणेता मनु अपनी स्मृति १२-६७ में कहते हैं कि

भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्ववेदात्प्रसिद्धयति

वेद स्वयं भी कहता है कि हमारे पेट में इतिहास भरे हुए हैं अथर्व० १५-६

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ११

इतिहासस्य च वै पुराणस्य च गाथानाञ्च

नाराशंसीना च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १२

अतः वेदों में इतिहास प्रचुर मात्रा में विद्यमान है । परन्तु वेदों के अर्थ का ज्ञान अंग्रेजी अनुवाद में या दयानन्दीय भाष्य किंवा वैदिक सम्पत्ति पुस्तक सरीखे एक पक्षीय आलोचनात्मक पुस्तकों मात्र के पढ़ने से नहीं होता है.....

वेद में जिन इतिहासों का सङ्केत है, उनका विस्तृत वर्णन रामायण महाभारत एवं पुराणों में है। और वेद के विधि निषेधात्मक सङ्केतों का विशदीकरण स्मृतियों में है। इसलिए वेदार्थ ज्ञान के लिए श्री वचन भूषणकार का मत है कि—

वेदार्थो निश्चेतव्यः स्मृतीतिहास पुराणैः

(श्रीराम जी कल्पित हैं श्रीरामचरित व्यास वाल्मीकि आदि की कल्पना है)
ऐसी कल्पना करने वालों ने कभी वेद का स्वयं साक्षात् दर्शन तो किया ही नहीं और न मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की कृतियों (स्मृतीतिहास पुराणादिकों) को ही देखा है। वेद में छोटे-बड़े अनेक इतिहास हैं, लगे हाथ एक आध का उदाहरण भी देख लेने में अच्छा ही रहेगा। जैसे—

ब्रीडौ सतीरभिधीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्तविप्राः ।

विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्तानलसाविवेश ॥

ऋ० ३।३।५

धीराः सप्त विप्रा
ब्रीडौ (निरुद्धा)
सतीः (गाः) मनसा अभि
अतृन्दन्
प्राचा अहिन्वन्

अङ्गिरागोत्रके सातविद्वान् एवं ज्ञानी ब्राह्मण
एक दृढ़ पर्वत की गुफा में रोकी गई अपनी
गायों को मन से अभिलक्षित (जान) करके
अन्य सम्पत्तियों की उपेक्षा करते हुए
पूर्वजों के मार्ग से उन गायों को प्राप्त करने के
लिए यत्न किए अर्थात् जैसे पूर्वज लोग देवा-
नुष्ठान द्वारा प्राप्य वस्तु प्राप्त करते थे वैसे ही
करने का सङ्कल्प किए। अर्थात्
सर्वोत्तम यज्ञ (देवाराधन) द्वारा अपनी समस्त
गायों को प्राप्त करना चाहे,
इन विद्वानों के कर्मों को अच्छी तरह जानकर
इन्द्र ने उनके नमस्कार से प्रसन्न होकर
उस पर्वतीय गुफा में प्रवेश किया ॥

ऋतस्य पथ्याम्
विश्वाम् अविन्दन्
ता इत प्रजानन्
नमसा
विवेश ।

इस मन्त्र पर सायण का भाष्य है कि—पुरा किलांगिरसां गावः पणिना-

मकैरसुरैरपहृत्य निगूढे कस्मिंश्चित्पर्वते स्थापिता । तेचांगिरसस्तत्प्राप्त्यर्थमिन्द्रं तुष्टुवुः । स्तुतश्च, स इन्द्रो गवामन्वेषणाय देवशुनीं प्राहिणोत् । सा च गवामन्वेषण परा सती तत् स्थानमलभत । तथा विज्ञापित इन्द्रस्ता गा आनीयांगिरेभ्य प्रादादित्यैहासिकी कथा । अर्थात् पूर्वकाल में आङ्गिरस संज्ञक ऋषियों की गायों को पणिसंज्ञक असुरों ने हरण करके एक पहाड़ी गुफा में छिपा रखा था । उन ऋषियों ने अपनी गायों के लिए इन्द्र की स्तुति किया । इन्द्र ने प्रसन्न होकर उनकी गायों को खोजने के लिए देवशुनी नामक दूती को भेजा, उसके पता लगा कर बताने पर इन्द्र ने उन गायों को लाकर आङ्गिरस ऋषियों को दे दिया । यह ऐतिहासिकी कथा मंत्र भाग संहिता में है ।

इसी तरह ऋग्वेद १।१४७।३ “ये पायवो मामतेयम्” इस मन्त्र में भी एक ऋषि की ऐतिहासिकी कथा मिलती है । भाई बहिन यमयमी तथा विश्वामित्र और नदी के सम्बाद की बात तो वेद में प्रसिद्ध ही है । हाँ यह बात अवश्य है कि वेद में प्रायः कोई भी बड़ा इतिहास क्रमवद्ध नहीं है । विभिन्न प्रकरणों में अनेक रामायणीय पात्रों, ऐतिहासिक व्यक्तियों का नाम तत्तत्प्रकरणानुसार आया है । जैसे दान के प्रकरण में दशरथ का नाम एवं उनके विशद दान का वर्णन “चत्वारिंशद्दशरथस्य” ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १२६ मन्त्र ४ में है ।

अनेक लोगों का दुराग्रह है कि वेद के जिस मन्त्र का जो देवता है वही उस मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय है । परन्तु यह बात सर्वथा ठीक नहीं है क्योंकि (चत्वारि शृंगाः त्रयो) ऋ० ४-५८-३ मन्त्र का देवता “अग्निः सूर्यो वा अपो वा गावो वा घृतं वा” लिखा है । शब्द नहीं यज्ञ नहीं-हृदय नहीं ईश्वर नहीं, प्रणव नहीं, लीलास्थ पुरुषोत्तम नहीं, सङ्गीत नहीं, साहित्य नहीं धर्मव्यवहार नहीं परन्तु व्याकरण महाभाष्यकार ने शब्द को निरुक्ति परिशिष्टकार ने यज्ञ को-स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धर्म व्यवहार को भारतेन्दुजी ने और छः को और सातवलेकर जी ने हृदय को महादेव वृषभ बतलाया है पर अग्नि, जल, घृत आदि प्रायः किसी ने नहीं कहा है । ऐसी स्थित में लिखित देवता का महत्व क्या रहा, लिखित देवता ही का प्रतिपादन मन्त्र में है यह तथ्य कहाँ रहा ?

यही नहीं बहुत से एक ही मन्त्र एकाधिक संहिताओं में हैं और उनमें अनेकों मन्त्रमें ऋषि तथा देवता भेद है । जैसे—

(१) जीवं रुदन्ति....ऋ० १०-४०-१० में ऋषि कक्षीवती घोषा और देवता अश्विनौ लिखा है । और यही मन्त्र अथर्व १४-१-४६ में है । वहाँ ऋषि सूर्या सावित्री और देवता आत्मा लिखा है ।

२ यत् किंचेदं वरुण....ऋ० ७-८६-५ में ऋषि मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः लिखा है और यही मन्त्र अथर्व ६-५१-३ में हैं वहाँ शन्तातिः ऋषि लिखा है ।

३ सङ्गच्छस्व पितृभिः....ऋ० १०-१४-८ में ऋषि वैवस्वत यमः और देवता लिङ्गोक्ता देवता पितरो वा लिखा है । यही मन्त्र अथर्व १८-३-५८ में है वहाँ ऋषि अथर्वा और देवता यम लिखा है । ऐसे और भी कितने मन्त्र उपस्थित किए जा सकते हैं । इस सम्बन्ध में आर्य समाज के प्रतिष्ठित वेदज्ञ विद्वान एवं व्याख्याता स्वामी विद्यानन्द विदेह की भी सम्मति मननीय है । श्री विदेह जी लिखते हैं [देवता और स्वर किसी सीमा तक मन्त्रार्थ खोलने में सहायक हैं । किन्तु वेद मन्त्रों का वास्तविक अर्थ निर्विकार चिन्तन आत्मानुभूति और अन्तः श्रवण के द्वारा ही प्रगट होता है । बादामों में छिलकों का जितना उपयोग है, उतना ही उपयोग वेदों में ऋषि, देवता छन्द और स्वर का है । सेवन बादामकी गिरी की जाती हैं छिलके नहीं । गिरी का सेवन कराने के लिए गिरी से छिलकों को अलग करना पड़ता है । वेदों की व्याप्ति में महत्त्व वेद मन्त्रों में निहित शिक्षाओं का ही है । वेदों के ऐसे संस्कृत भाष्य हैं जिसमें किसी भी मन्त्र के साथ ए चारों बातें नहीं दर्शायी गई हैं । इसमें वेद विरुद्धता, ईश्वर विरुद्धता की कोई बात नहीं है । सविता वर्ष ६ अङ्क ८]

अतएव ऋषि का अर्थ मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय या मन्त्र का रचयिता नहीं हैं । प्रत्युत मन्त्रार्थ का द्रष्टा है । और जिस मन्त्र का जो देवता लिखा है वह देवता मात्र ही मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय नहीं है । किंवा जिस देवता के आराधन, अनुष्ठान कृपा से जिस मन्त्र का साक्षात्कार अर्थ ज्ञान जिस ऋषि को हुआ उस ऋषि ने उसे भी मन्त्र का देवता लिख दिया । इसका तात्पर्य यह

हुआ कि मन्त्र का जो अर्थ प्राचीन भाष्यकारों ने लिखा है उस अर्थ के अतिरिक्त और भी अनेक अर्थ हो सकते हैं। तभी तो (चत्वारि शृंगाः) मन्त्र का भिन्न-भिन्न अर्थ विभिन्न भाष्यकारों ने किया है। और ऋषि भी अन्य हो सकते हैं। तथा च मन्त्रोपरि उल्लिखित ऋषि ने उस मन्त्र का क्या अर्थ समझा था इसके लिये तत्तत् ऋषि लिखित स्मृति-संहिता-तंत्र-आगम-पुराणोक्त प्रवचन आदि का आलोडन करना चाहिए। अनेक सम्भ्रान्त विद्वानों महात्माओं का तो कहना है कि अनेक ऋषियों के अनेकों ग्रन्थों के आलोडन और अनेकों देवताओं के आराधनानुष्ठान में समय न लगाकर समस्त वेद वेद्य एकमात्र परमात्मा की ही कृपा से मन्त्रार्थ ज्ञान प्राप्त करना सर्वोत्तम है। सम्भवतः पं० श्री नीलकण्ठ एवं महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि आदि ने ऐसा ही किया है।

याष्का चार्य ने “गावः” शब्द का अर्थ इन्द्रियाँ, चमड़ा, सरेस, मज्जा, आदि किया है। इसी बल पर जिस मन्त्र में देवता के स्थान में गावः भी लिखा है उस मन्त्र में अनेक विद्वान शरीर विज्ञान भी ढूँढ निकालते हैं। इसी तरह वेदव्यास द्वैपायन महर्षि ने जो महाभारत में शिव सहस्र नाम और विष्णु सहस्र नाम तथा पुराणों में राम सहस्र नाम और कृष्ण सहस्र नाम लिखा है। उन नामों में नब्बे प्रतिशत नाम और उनके पर्याय वेदोल्लिखित देवताओं के हैं। अतएव वेद के नब्बे प्रतिशत मन्त्रों का अर्थ राम कृष्ण विष्णु शिव परक होना ही चाहिये। आज तक जितने भी वेदवेत्ता हुए हैं उन सब में सबसे विशिष्ट वेद ज्ञान वाले महर्षि द्वैपायनकृष्ण हुए हैं। इसी से वे वेदव्यास करके ख्यात हैं। उनके मत से वेदों (वेद मन्त्रों) से प्रतिपाद्य एकमात्र श्री हरि ही हैं। यथा—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम् ॥

(महाभारत भीष्मपर्व ३६-१५)

अतः वेद के समस्त मन्त्रों में भगवान श्री राम कृष्ण का ही प्रतिपादन है “वेदों में रामकथा” तो एक अल्प संग्रह मात्र है। साथ ही स्मरण रखना चाहिए कि वेदों में उतनी ही रामकथा सुस्पष्ट रूप से मिल सकनी सम्भव है

जितनी कि प्रति कल्प में एक ही रूप में होती है । परन्तु जो कथांश सम्बाद आदि कुछ-कुछ हेर-फेर के साथ हुआ करते हैं वे शायद वेद में स्पष्ट न मिलें ।

जैसे कि दशरथ जी की पुत्रेष्टि यज्ञ, राम वन गमन, वालि वध, मारीच वध, लंका दहन, रावण वध, आदि तो सब कल्प में करीब-करीब एक ही तरह से होते हैं । इसलिए ऐसी कथाओं का तो संकलन स्पष्ट रूप से वेदों में है । पर धनुर्भंग, परशुराम संवाद, वन मार्ग वर्णन, अंगद दौत्य अन्य राक्षस युद्ध आदि प्रतिकल्प में बदला करते हैं । अर्थात् इन चरित्रों में पर्याप्त हेर-फेर हो जाया करता है । इससे इनका स्पष्ट वर्णन वेद में नहीं भी मिल सकता । पुनः ऐसे ही जिन रामायणीय पात्रों का नाम प्रतिकल्प में एक ही हुआ करता है उनका नाम तो वेद में स्पष्ट मिलता है जैसे दशरथ, इक्ष्वाकु, मांधाता, रघु, राम, सीता, भरत, हनुमान, दशानन, त्रिशिरा आदि आदि । परन्तु जिनका नाम प्रतिकल्प में भिन्न-भिन्न हुआ करता है उनका नाम वेद में सुगमता से प्राप्त नहीं हो सकना ठीक ही है ।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ।

(ऋ० १०-१६०-३)

तेषां वै यानि कर्माणि प्राक् सृष्ट्यां प्रति पेदिरे

तान्येव वै प्रपद्यन्ते सृज्यमाना पुनः पुनः

(महाभारत)

इस मन्त्र की व्याख्या उपनिषदों एवं अन्य इतिहास पुराणों में की है ।

यं ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोतितस्मै

तं ह देवमात्म बुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहं प्रपद्ये

(श्वेताश्वतरो प० ६।१८)

पर वेदों में कोई भी इतिहास क्रम बद्ध नहीं है, इसे तो पहिले ही कहा गया है परन्तु मन्त्रों का अधियज्ञ, आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक (पुराकल्प सम्बन्धित या भविष्य कथन रूपमें) कई तरह के अर्थ होते हैं, ऐसा प्राचीन काल से सभी वेदवेत्ता मानते आये हैं । महाभारत शान्ति पर्व अ० २३२ के २४वें श्लोक में—

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा ॥

कहा है और स्वयं वेद भगवान् का कहना है कि—

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुप्रुतिम् ॥

(ऋ० ८।७।६, तै० सं० २।६।११)

(विरूप !) हे विशेष रूप वाले ! तुम (नूनम्) अवश्य ही (तस्मै अभिद्यवे) उस परम तेजस्वी (वृष्णे) वृष्णि वंशोत्पन्न परमात्मा के लिये (नित्यया) नित्य अर्थात् त्रैकालिक कथन करने वाली (वाचा) वेदवाणी द्वारा (सुप्रुतिम् चोदस्व) उत्तम प्रार्थना करो ।

आज कल जो लोग “वेदों में रामकृष्ण का नाम नहीं है, वेदों में राम-कृष्ण की कथा नहीं है” आदि अनर्गल प्रलाप किया करते हैं उन्हें मैं अपनी ओर से कुछ न कहकर (बेटावर-देवरिया-गाजीपुर निवासी) पं० श्री वाराणसी प्रसाद त्रिवेदी एम० ए० एल० एल० बी० काव्य सांख्यतीर्थ की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर देना चाहता हूँ । जो उन्होंने जनवरी सन् १९३२ की “गङ्गा” में अपने लेख में लिखा है ।

“....यह साधारण वेदों की चर्चा के शौकीन हम अंग्रेजीदों विद्वानों के दिमाग में इतनी सुटढ़ प्ररुढ़ और प्रतिनिविष्ट है कि इसे एकदम दूर कर देना दुःसाध्य ही नहीं असम्भव भी है ।

एक दिन किसी पण्डित सेवी विद्याव्यसनी आस्तिक के घर, एक संस्कृत साहित्य के एम० ए० वेदों के विषय में कुछ Buhler बुलर कुछ mullar मुलर कुछ weber वेबर और कुछ Fragar फ्रेज़र के जोर पर तथा कुछ अपनी मन गढ़न्त से लम्बी-चौड़ी डींग मार रहे थे । वहाँ एक संस्कृत का कोरा किन्तु अच्छा विद्वान् पण्डित भी बैठा था । आस्तिक से न रहा गया, बोले, पण्डित जी ! आप कुछ कहते क्यों नहीं ? पण्डित जी ने कहा, यदि कोई शराब पीकर बड़बड़ाए तो उसके मुँह नहीं लगा जाता । बात बड़ी कड़वी थी सही किन्तु है बिल्कुल ठीक । हम अंग्रेजीदों की बुद्धि पर विलायती शिद्दा का कुछ ऐसा विपाक्त रङ्ग ही चढ़ा हुआ है....।”

यद्यपि कि इन पंक्तियों को त्रिवेदी जी ने मात्र अंग्रेजीदों को लक्ष्य

करके ही लिखी हैं। पर तो भी हम देखते हैं कि जो अंग्रेजी के विद्वान् क्या बिल्कुल अंग्रेजी नहीं पढ़े हैं। श्री किशोरीदास जी वाजपेयी के शब्दों में—

रही संस्कृत दूरि लौं, हिंदिहु पढ्यों न नेक ।

पै वेदन के वाद में, जीत्यों विबुध अनेक ॥

(तरंगिणी)

उन्हें मुलर, बुलर, वेबर, फ्रेजर, आदि की विलायती शराब तो नहीं मिलती पर यदि वे किसी समाज विशेष का ठर्रा ही पी लिए हैं, अथवा अपनी ज़बान दराज़ी के बल पर उन्हें सभा सोसाइटी की मान प्रतिष्ठा रूपी भङ्ग ही पीने को मिल जाया करती है वे भी अपने नशे में बहुत कुछ बड़बड़ाया ही करते हैं।

यद्यपि कि गोस्वामी तुलसीदास जी की ही रामायण (श्री रामचरित मानस) में भगवान् श्री शङ्कर जी का आदेश उद्धृत है कि—

जिन्हकृत महा-मोह-मद पाना, तिनकर कहा करिय नहिं काना ।
परन्तु तो भी भगवच्चरित्रावगाहन की लालसा कान करने को बाध्य करती है। ऐसी बातों पर कान करने से अपना तो लाभ होता ही है। भगवच्चरितामृत पान करने को मिलता ही है। महा-मोह-मदपी का लाभ चाहे न होता हो परन्तु ऐसा भी कहते नहीं बनता क्योंकि मोह-मदिरा का नशा उतर जाने पर उसे भी भगवच्चरिता मृत पान करने का आनन्द आयेगा ही। इसीलिए—

सर्वे सुखिनः सन्तु सर्वे निरामयाः

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ॥

मैं बारम्बार अपने मित्र पं० श्री शङ्करानन्द जी तिवारी “प्रतिवादि भयङ्कर” को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि जिनको एक निमित्त बनाकर मेरे प्रभु श्री सीताराम जी ने मुझे अपने चरित्र में कुछ समय तक विचरण करने का अपूर्व सुअवसर दिया और यह सेवा करवा लिया और जिनको कि,

स्तोतुमञ्जुजभवश्चभवश्चनेशः

उन श्री सीताराम जी की कृपा का धन्यवाद मैं कैसे दे सकता हूँ, और फिर धन्यवाद दूँ ही क्यों? अपनी वस्तु प्राप्त करके कोई धन्यवाद नहीं दिया जाता। उनकी (परमात्मा की) कृपा हमारे (जीव के) लिए ही तो है उनके अपने

किस काम की । अतः श्री सीताराम जी की कृपा हमारे (बद्ध जीवों के) ऊपर होती है तो वे विशेष स्तोष्य नहीं हैं । क्योंकि हम कृपा के सर्वथा अधिकारी हैं । और अधिकारी के पास उसकी वस्तु यदि पहुँच जाये तो इसमें किसका और कैसा निहोरा ?

सन् १९४७ की लिखी गई पुस्तक अब तक न प्रकाशित होकर आज इतने दिनों पर प्रकाशन का सुयोग बैठाने में भी भगवान श्री सीताराम जी का कुछ विशेष कृपा भाव होगा ही जिसको हम अज्ञानी बद्धजीव समझने में सर्वथा असमर्थ हैं ।

श्री सीताराम चरणाश्रित

रामकुमार दास

पुनश्च—

भवानीमण्डी (राजस्थान) के श्रीरामद्वाराके महान्त श्री पं० राममनोहरदास जी “राम स्नेही” एक विद्वान-प्रवक्ता एवं भगवन्नाम प्रेमी सन्त हैं उन्हीं के सत्सङ्ग एवं शुभप्रेरणा के परिणाम स्वरूप सेठ श्री ब्रजमोहनदास जी ‘विजय’ इस ग्रंथ ‘वेदों में रामकथा’ का प्रकाशन बड़े उत्साह से कर रहे हैं । उन्हीं महान्त जी महाराज के प्रेमाग्रह के कारण इस प्राक्थन के साथ में कई पत्रों में प्रकाशित अपना “प्रलापौषधि” शीर्षक लेख एवं ग्रन्थान्त में भगवन्नाम माहात्म्यसूचक कुछ वेद मन्त्र भी उद्धृत किये दे रहा हूँ ।



प्रलापौषधि

अतोव दोन पालिके शुचिस्मिते कृपालुके,
दयार्णवे जगद्धिते जगत्प्रसूति कारिके ।
प्रपन्न दुःख हारिणि प्रशस्त सौख्य दायिनि,
प्रसीद रामवल्लभे, प्रदेहि पाद पल्लवम् ॥

कोई व्यक्ति किसी कारण पागल (उन्मत्त), हो जाता है तो वह प्रायः अण्ड-बण्ड बकने लगता है (प्रलाप करने लगता है) दूसरों को अकारण गाली देने लगता है । उसपर भी तारीफ यह कि वह स्वयं को पागल नहीं मानता अपितु सारे संसार के ज्ञानियों से बढ़कर ज्ञानी एवं विद्वान् समझता है इसी से अपनी ही बके जाता है किसी की सुनता ही नहीं । उसकी विचार शक्ति तो रह ही नहीं जाती जिससे कि वह विचार कर बोले—

बातुल भूत विबस मतवारे । ते नहिं बोलहिं बचन विचारे ॥

नीति तो यह है कि —

जिन कृत महामोह मदपाना । तिनकर कहा करिय नहिं काना ॥

और कोई विचार शील व्यक्ति कभी किसी पागल के प्रलाप पर ध्यान देता भी नहीं परन्तु मानवता के नाते प्रत्येक व्यक्ति से जहाँ तक बने उसका उत्तमोत्तम उपचार करना चाहिये । यदि किसी तरह वह पागल उत्तम औषधि का सेवन कर लेवे तो उसका मस्तिष्क ठीक हो जाय, प्रलाप करना गाली बकना बन्द हो जाय । किसी तरह औषधि सेवन ही नहीं करेगा तब तो “ईश्वरेच्छा वलीयसी, हरि इच्छा भावी बलवाना” न्यायानुसार रोग को उसके पूर्व पाप का परिणाम समझना ही पड़ेगा । गीता में मुनि का लक्षण बतलाया गया है ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगत स्पृहः ।

बीत राग भय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ २।४५

ऐसे मुनि सदैव से एक मात्र नारायण का ही भजन करते हैं—

भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ।
 सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनुतानिह ॥
 मुमुक्षवो घोर रूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
 नारायण कलाः शान्ताः भजन्ति ह्यनसूयवः ॥

(श्री भाग० १।२।२५, २६)

जिसमें उपर्युक्त लक्षण न हों वह मुनि नहीं हो सकता, परन्तु इन दिनों गोरखपुर में गीता एवं भागवतोक्त लक्षणों से सर्वथा रहित होने पर भी एक महाशय स्वयं को मुनि ही नहीं मुनीश्वर तक लिखते मानते हैं और फीस लेकर जिसे अपना अनुयायी बनाते हैं उसे भी मुनि कहते एवं लिखते हैं । अपने दलालों द्वारा सैकड़ों मील से पत्र मँगाकर अपनी धाक जमाने के लिये छापते हैं कि सैकड़ों मील दूर रहता हुआ भी रोगी केवल पत्र लिख देने मात्र से ही असाध्य रोग से मुक्त हो जाता है । प्रयाग कुम्भ के आकस्मिक मृत्यु काण्ड में राम राम कहने वाले दबकर मर गये पर मुनीश्वर का नाम जपने वाले दबने वालों की मध्य भीड़ में भी सपरिवार साफ-साफ बच गये, आदि-आदि । देखिये ज्ञान शक्ति १६५४ की जून जुलाई का अंक पृष्ठ क्रमशः १७-१८ । प्राचीन काल के मुनियों ने “प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा....अतिमानं सुरा पानम्” बतलाया है । वह गोरखपुरी योगीश्वर मुनीश्वर उपाधिधारी व्यक्ति अपने वाक् चातुर्य के बल पर कुछ सामान्य लोगों से थोथी प्रतिष्ठा प्राप्त करके अति मान सुरा का पान करके उन्मत्त हो गये हैं । अनेक तरह का प्रलाप करते रहते हैं । उसी प्रलाप में यदा कदा जगत्पूज्य परम वेदज्ञ महात्मा गोस्वामी श्री तुलसीदासजी को भी एक स्वाँस में सैकड़ों गालियाँ दिया करते हैं । अभी-अभी १५।६।५४ ई० को अपने ज्ञान शक्ति के अंक में मानस की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करके उन पर वेद प्रमाण तुलसी के अनुयायियों से माँगा है प्रति चौपाइयों के आगे पीछे गालियाँ देकर श्री तुलसीदास जी का स्मरण किया है । हर बात के लिये कह दिया है कि यह बात वेद में नहीं ही है जिससे मुनि समाज के सदस्य समझें कि हमारे मुनीश्वर जी बड़े वेदज्ञ हैं । पर मुनीश्वर जी ने तो—
 घटं भित्वा पटं छित्वा कृत्वा रासभ रोहणम् ।

येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत् ॥

नीति को अपनाया है । अस्तु, उस लेख का शीर्षक है ।

“तुलसीदास जी ने वेदों को पढ़ा क्या देखा तक नहीं था ।” देखने में लेख का कलेवर लम्बा-चौड़ा है पर $\frac{1}{2}$ अंश गाली है और $\frac{1}{2}$ अंश मानस की उद्धृत पंक्तियों पर वैदिक प्रमाण की जिज्ञासा । वही जिज्ञासा बिना गाली दिये हुए जिज्ञासु भाव से सभ्यजनोचित शब्दों में की जा सकती थी जैसा कि अनेक मानस पाठक और जिज्ञासु करते रहते हैं परन्तु प्रलापी को गाली का विचार कहाँ ? गालियों का उत्तर तो न देकर उस सम्बन्ध में मैं यही कहूँगा कि—

ददतु-ददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तः ।

पर उनकी उद्धृत चौपाइयों का वेद प्रमाण पूरे पते के साथ दूँगा । यही उस प्रलाप की औषधि होगी, ज्ञानशक्ति में गाली बकने वाले ने मानस की जिन पंक्तियों को उद्धृत किया उनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों पंक्तियाँ ऐसी हैं जिन्हें वेद मूलक लिखा है । मैंने प्रायः सब की मूल श्रुतियों को प्राप्तकर “मानस की वैदिकता” नामसे पुस्तक रूपमें संग्रह कर लिया है परन्तु यहाँ प्रलापक की जिज्ञासित पंक्तियों की ही वेद मूलकता रूप औषधि बताई जाती है । उचित है कि प्रलापक महाशय निर्देशित स्थानों पर श्रुतियों को देखकर अपने मस्तिष्क की औषधि कर लें यदि सचमुच उनकी वेद मूलकता चाहते हों । (यदि उनमें कुछ आत्मबल हो और वे सत्य पथ पर आरुढ़ हों तो इस लेख को ज्यों-का-त्यों अपने ज्ञानशक्ति पत्र में बिना घटाए बढ़ाए छाप दें ।)

अब ज्ञान शक्ति में उद्धृत मानस की पंक्तियों की वेद मूलकता देखिये पर स्मरण रहे कि जिन श्रुतियों का अर्थ बहुत स्पष्ट है उनका हिन्दी अर्थ नहीं दूँगा लेख का कलेवर बढ़ जाने के डर से । पर कठिन मन्त्रों का अर्थ दूँगा लेकिन अपनी ओर से नहीं वरन् पूर्ववर्ती विद्वानों के लिखे अर्थ का मैं केवल हिन्दी अनुवाद कर दूँगा और पता तो पूरा-पूरा श्रुतियों का रहेगा ही ।

(१) नानापुराणनिगमागमसंसतम् ॥

वरनहु रघुपति विशद जस, श्रुति सिद्धान्त निचोरि ॥

इसकी वेद मूलकता जानने के लिये मेरी लिखी २७५ पृष्ठ की मानस

सिद्धान्त नामक पुस्तक देखिये जो मानस संघ रामवन सतना मध्यप्रदेश से मिल सकती है ।

(२) सकल काम प्रद तीरथ राऊ, वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ ।
वेद प्रमाणः—

सितासिते सरिते यत्र संगमे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।

ये वै तत्त्वं हि सृजन्ति धीरास्ते जनाः सोऽमृतत्वं भजन्ति ॥

(ऋक् परिशिष्ट २२।१)

ऋक् परिशिष्ट में लिखा है कि यह मन्त्र ऋग्वेद १०।७५।५ “इमे गंगे यमुने सरस्वति०” के बाद पढ़ना चाहिये (यह मन्त्र इतना स्पष्ट है कि लघु कौमुदी का विद्यार्थी भी समझ सकता है) ।

(३) स्वायंभू मनु अरु शत रूपा । जिनते भइ नर सृष्टि अनूपा ॥

दम्पति धरम आचरन नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिनकै लीका ॥

वेद प्रमाणः—

(क) “अहं मनुरभवम् । (ऋ० ४।२६।१)

(ख) “मनवे ह वै प्रातःअवनेग्यमुदकमाजहः”,

“सर्वाप्रजा निरवाहाऽथेह मनुरेवैक परिशिशिषे”,

“एतान् हैव प्रजायते यां मनुः प्राजायत,

“यस्य ह प्रजा भवत्येक आत्मना भवत्यथोत

दशधाप्रजा हविष्क्रियते तस्मात् प्रजा भूयोहविष्करणम् ।

(शतपथ ब्राह्मण) १।८।१।१, ६, ११, ३४

(ग) मनुना कृत्या स्वधया वितष्टा० । (यजु, काठक संहिता १।२।४)

(घ) मनुना ह्येषाकृता स्वधसा० । (यजु० का० सं० ३।१।१)

(४) यद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना । वेद पुरान विदित जग जाना ॥

वेद प्रमाणः—

१—तद्विष्णोः परम पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । (ऋ० १।२२।२०)

२—विष्णोर्यत् परमं पदम् । (ऋ० १।२२।२१)

३—विष्णोः परमे पदे मध्व उत्सः । (ऋ० १।१५।५)

४—परमं पदमवभाति भूरि० । (ऋ० १।१५।६)

५—त्रिपादस्यामृतं दिवि ।

(ऋ० १०।६०।३ यजु० ३१।३ अथर्व १६।६।३ तै० आ० ३।१२।१)

६—तत्र मध्यम पाद प्रदेशोऽमित तेजप्रवाहकतया नित्य बैकुण्ठं विभाति । (त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषत् अध्याय १)

७—स एव नित्य परिपूर्णः पाद्विभूति बैकुण्ठ नारायणः । (त्रि० अ० २)

८—तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा पंच बैकुण्ठानतीत्य० । (त्रि० अ० ५)

९—अनादि पाद विभूति बैकुण्ठमेवाभाति० । (त्रि० अ० ६)

१०—विद्याविद्ययोः सन्ध्यौ विष्वक्सेन बैकुण्ठं पुरम्० । (त्रि० अ० ६)

११—विद्यामायाऽनन्तबैकुण्ठान्परितोऽवस्थितान्० । (त्रि० अ० ६)

१२—एवं ब्रह्मविद्याबैकुण्ठमाविश्य० । (त्रि० अ० ६)

१३—ततः श्री तुलसी बैकुण्ठं पुरमाभाति० । (त्रि० अ० ६)

१४—तन्मध्ये च विशुद्ध बोधानन्द बैकुण्ठम्० । (त्रि० अ० ६)

१५—ततः सुदर्शन बैकुण्ठमाभाति० । (त्रि० अ० ७)

(५) पुरसोभा सम्पत्ति कल्याणा । निगम शेष शारदा बखाना ॥

वेद प्रमाणः—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या ।

तस्या हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

तस्मिन्हिरण्यये कोशेऽयरेत्रिप्रतिष्ठिते ।....

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।

पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥

(अथर्ववेद १०।२।३१, ३२, ३३)

ऋग्वेद १।१२६।४ में दशरथ जी की इतनी धन-सम्पत्ति का वर्णन है कि यज्ञ से विदा होने वाले हजारों ऋत्विजों को (प्रत्येक को) चालीस ४० श्याम कर्ण घोड़े और इतने ही सुशिक्षित मतवाले गजेन्द्र एवं हजारों दास उन्होंने विदाई में दिया था ।

(६) अति सुन्दर सुचि सुखद सुशीला । गावहिं वेद जासु जश लीला ॥
 दूषन रहित सकल गुन रासी । श्रीपति पुर वैकुण्ठ निवासी ॥
 । विष्णु सकल गुणधाम ॥

इन पंक्तियों पर मुनीश्वर कहाने वाले का तो भारी प्रलाप है कि वेद में कहीं भी श्रीपति लक्ष्मीपति की चर्चा ही नहीं है । यदि कभी वेदों का अध्य-
 यन किया होता हो वैसा न कहा जाता । विष्णुसूक्तों (श्रीपति की यशः
 गाथाओं) से समस्त वेद भरा है और विष्णुसूक्तों का संग्रह मात्र एक बड़ा
 ग्रंथ बन जाता है । यहाँ पते के सहित कुछ मन्त्र दिक्दर्शन रूप से उद्धृत किये
 दे रहा हूँ—

१—अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।

पृथिव्याः सप्त धामभि ॥ (ऋ० १।२२।१६)

२—इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम् । (ऋ० १।२२।१७)

३—त्रीणि पदानि विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।

(ऋ० १।२२।१८)

४—विष्णोः वीर्याणि पश्यत यतो ब्रतानि पस्पशे (ऋ० १।२२।१९)

५—विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचम् । यः पार्थिवानि विममे रजांसि ॥

(ऋ० १।१५।१)

६—पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि । गुह्यं नाम गोनाम् ॥

(ऋ० ५।३।३)

७—विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिशतु । (ऋ० १०।१८।१)

८—ऋक्परिशिष्ट का ११वाँ सूक्त श्री सूक्त के नाम से विख्यात है जो कि
 ऋग्वेद पञ्चम मण्डल का अन्तिम सूक्त है उसमें २६ मन्त्र हैं जिनमें कई बार
 श्री जी को “हरि वल्लभा, विष्णुपत्नी, माधव प्रिया, विष्णु प्रिया, अच्युत
 वल्लभा विष्णुमनोऽनुकूला आदि कहा गया है ।

ऋ० ६।६६।१—८ समस्त सूक्त, ऋ० ७ः६६, १००।१-१४ समस्त सूक्त
 श्रीपति का कथन करता है ।

९—श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ० । (शुक्ल यजुर्वेद ३।१२२)

इस मन्त्र में नारायण को “श्रीपति एवं लक्ष्मीपति” कहा गया है । इस सूक्त के अन्तिम छ मन्त्रों का नाम ही उत्तरनारायण विख्यात है । इसके अतिरिक्त और भी अनेकानेक मन्त्र श्री पति यशोगान के वेद में हैं ।

(७) ईर्षालु निन्दक महाशय का प्रलाप है कि श्री राम जी के किसी पूर्वज का नाम वेद में नहीं है, अतः यहाँ थोड़े से नाम दिये जाते हैं—

१—इक्ष्वाकु—या त्वं वेद पूर्व इक्ष्वाको ! (अथर्व १६।३६।६)

ईजऽऐक्ष्वाको राज० । (शतपथ ब्रा० १३।५।४।५)

२—सुद्युम्न—सुद्युम्नोद्युम्नं यजमानाय धेहि ।

(यजुर्वेद मैत्रायणी सं० १।२।१६)

३—सुदास—विश्वामित्रो यदवहत सुदासमप्रियायत० ।

(ऋ० ३।५।३।६)

४—यौवनाश्व मान्धाता—(ऋ० १०।१४६।१-६)

५—६—यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता के अन्तिमार्ण्यक १।४ में एक साथ कुछ चक्रवर्तियों की सूची देते हुए श्रुति ने श्री राम जी के कई पूर्वजों का नाम गिने हैं—

अथ किमेतैर्वा महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्न भूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्न कुवल्याश्व यौवनाश्व अश्ववध्न्यश्वाश्वपतिः शशबिन्दु हरिश्चन्द्रोऽम्बरीषो ननक्तुः शर्यातिर्ययातिरनरणयोऽक्षसेनादयो मरुत्त भरत प्रभृतयः राजानो मिषतो बन्धुवर्गस्य महतीं श्रियं त्यक्त्वाऽस्माल्लोकादमुं लोकं प्रयाता ॥

१०—सगर के साठ हजार पुत्र—(अथर्व २०।१२७।१)

षष्टि सहस्रा नवतिं च कौरम । आरुशमेषुदद्महे ।

११—रघु—रघुः श्येनः पतयत्० । (ऋ० ५।४५।६)

उतो अह क्रतु रघुम् (ऋ० ८।३३।१७)

१२—दशरथ—चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणः (ऋ० १।१२६।४)

१३—वैवस्वतमनु—मनुर्वै यत्किंचावदत् तद्भेषजमासीत् ।

(यजु का० ११।५।६)

(८) श्रुति सिद्धान्त इहै उरगारी । भजिय राम सब काम बिसारी ॥
वेद प्रमाण—

समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो । य एक इद् भूरतिथिर्जनानाम् ॥
(सामवेद पू० ४।३।३)

सामसंस्कार भाष्य का हिन्दी अनुवाद—विश्वा ओजसा = सम्पूर्ण शक्ति से अर्थात् अन्य ओर लगी हुई सारी शक्तियों को एकत्रित करके—(सब काम बिसारी ।) दिवःपतिम् = आनन्द के स्वामी परमात्मा को प्राप्त करो । यः जनानाम् = जो परमात्मा समस्त प्राणियों का 'इत् एकः = एक मात्र' अतिथिः भूः = पूज्य एवं प्रिय होता है ।

(९) यह नइ रीति न राउर होई । लोकहु वेद विदित नहिं गोई ॥
सकृत प्रणाम किये अपनाये ।

वेद प्रमाण—

अपिवत् कद्रुवः सुतमिन्द्र सहस्रबाहे । तत्रादिष्ट पौंस्यम् ॥

(साम पू० २।२।७ ऋ० ८।४४।२६)

सामसंस्कार भाष्य से—इन्द्रः = परमात्मा कद्रुवः = कुत्सित गतिवाले भक्त जीवों का । सुतम् = किया हुआ पूर्व पाप जो कि सहस्रबाहे = हजारों प्रकार से बाधा देने वाले होते हैं उन पापों को । अपिवत् = नाश कर देते हैं । तत्र = पाप नाश हो जाने पर जीवों का । पौंस्यम् = पुरुषार्थ, प्रताप । अददिष्ट = देदीप्यमान हो जाता है ।

(१०) भक्ति मोरि पुराण श्रुति गाई ।

वेद प्रमाण—

(क) तस्यते भक्तिवानो भूयास्म । (यजुर्वेद मैत्रायणी सं० १।५।३१)

(ख) आदित ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्कादवदेव जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सन्पत अमृतेमेवैः ॥

(ऋ० १।६८।३४)

आर्य समाज संस्थापक स्वामी दयानन्द जी का अर्थ—देव = हे जगदीश्वर । आपका आश्रय करके, यत् = जो, विश्वे = सब जनिष्ठाः = अतिज्ञान युक्त,

सयन्त = एक सम्मत विद्वान् लोग, एवैः = प्रातिकारक गुणों और, शुष्कात् = धर्मानुष्ठान तपसे, ते = आप के, देवत्वम् = दिव्य गुण प्राप्त करने वाले, ऋतम् = बुद्धि और कर्म, नाम = प्रसिद्ध अर्थ युक्त संज्ञा [आपके सार्थक नामों को] सिद्ध, जुषन्त = प्रीति से सेवा करें [नाम जपें] वे, ऋतम् = सत्य रूप को भजन्त = सेवन करते हैं, वैसे, अमृतम् = मोक्ष को जीवः = मनुष्य प्रयत्न से आत्मात् = सबको प्राप्त करता है। मनुष्य परमेश्वर की उपासना (भक्ति) बिना व्यवहार व परमार्थ के सुखों को नहीं प्राप्त कर सकता है।

११—उपरोहिती कर्म अति मन्दा । वेद पुराण स्मृतिकर निन्दा ॥

अथर्व वेद के गोपथ ब्राह्मण पूर्वार्द्ध २।२१ में ब्राह्मणों के नाचने और मनुष्यों के गीत गाने की निन्दा की गई है। देखिये—

एष ब्राह्मणो गायनो नर्तनो वा भवति, तमग्लागृध इत्याचक्षते ।

तस्माद्ब्राह्मणो नैव गायेत्रानृत्येन्माग्लागृधः स्यात् ॥

(गो० पू० २।२१)

परन्तु उपरोहित को राजा की प्रशंसा के गीत गाने पड़ते हैं जैसा ऋग्वेद के दसवें मण्डल के १७३ और १७४ सूक्तों के ग्यारह मन्त्रों में वर्णित है। इसी से उपरोहिती कर्म को मन्द कहा है।

मानस के उपरोहित शब्द पर भी ध्यान देकर पुरोहित और उपरोहिती शब्द के अन्तर को समझ लेना चाहिये। यज्ञाचार्य को 'पुरोहित' कहा जाता है। 'उपरोहित' नहीं और यहाँ उपरोहिती कर्म के मन्दत्व की बात है 'पौरोहित्य' की निन्दा एवं मन्दत्व से तात्पर्य नहीं।

१२—चहुँयुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ ।

यहि सहै रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुराण श्रुति सारा ॥

राम नाम गुण चरित सुहाये । जन्म कर्म अगणित श्रुति गाये ॥

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधमौ मुक्त होइ श्रुति गावा ॥

नाम उधारे अमित खल । वेद विदित गुण गाथ ॥

चारों वेदों के प्रमाण—

१—भूरिनामवन्दमानोदधाति, पितावसो तज्जोषायसे ।

(ऋ० ५।३।१०)

२—नतस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः । (शु० यजुर्वेद ३२।३)

३—नामानिते शतक्रतो विश्वाभिर्गीभिरीमहे ।

इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ (अथर्व वेद २०।१६।३)

४—अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभिद्रोणानिरोरुवत् । सीदन्यानौ
वनेष्वा ॥ (साम वेद पू० पवमान काण्ड ५।४।७)

इन चारों मन्त्रों का अर्थ इसी ग्रन्थ में अलग “भगवन्नाम” शीर्षक में दिया गया है ।

५—“श्री रामचन्द्रमनुस्मरणेन गायत्र्या शतसहस्राणि जप्तानि
फलानि भवन्ति, प्रणवानामयुत कोटि जपा भवन्ति, दशपूर्वान्दशोत्त-
रान्पुनाति, स पंक्तिपावनो भवति, स महान् भवति सोऽमृतत्वं च
गच्छति ।” (रामोत्तर ता० उ० ६।४)

क्रमानुसार चतुर्थ युग का नाम है ‘कलियुग’ जिसका अर्थ कोषों में वर्णित है कि—

कलिः स्त्री कलिकाया नाशूराजि कलहे युगे ॥ (मेदिनी)

कलिर्विभीतके शूरे विवादेऽन्त्ययुगे युधि ॥ (हेमः)

सम्प्रहाराभिसम्पाते कलि संस्फोट संयुगा ॥ (अमरः)

कलयति पापेन जडयति कलिः ॥ (विश्वः)

निष्कर्ष यह कि वर्तमान चतुर्थ युग कलह विवाद, युद्ध एवं पाप आदि का युग है अर्थात् इन्हीं को बढ़ाता है । कलि शब्द का अर्थ पाप कलहादि है और इस “कलेर्युगः कलियुगः” सामान्यावबोध अर्थ को न समझकर मुनी-
श्वर कहाने वाले प्रलापी ने कलियुग का अर्थ मशीन यन्त्रों का युग करके
भगवन्नाम की खिल्ली उड़ाने की दुश्चेष्टा करके घोर तम पाप किया है, अपने
नाम के जल से तो अपने अनुयायियों का रोग दूर होना माने प्रचार करे और
भगवन्नाम के माहात्म्य पर मिथ्यात्व का आरोप करे । जो व्यक्ति कलि और

कल शब्द का भेद एवं अर्थ नहीं समझ सकता वह कितना बड़ा विकृत मस्तिष्क वाला पागल होगा । शोक !

१३—तहाँ वेद अस कारण राखा । भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा ॥
भगति मोरि पुराण श्रुति गाई ॥

वेद प्रमाण—

दोषो गाय बृहद्वाय द्युमद्वेहि आथर्वणस्तुहि देवं सविस्तरम् ।
तमुष्टुहि यो अन्तः सिन्धौसूनुः । सा यस्य युवानमद्रोधवाचं
सुशेवम् ॥ सघानो देवः सवितासा विषदमृतानिभूरि । उभे
सुष्टुती सुगातवे ॥ (अथर्व वेद ६।१।१, २, ३)

१४—ढोल गँवार शूद्र पशु नारी । ये सब ताड़न के अधिकारी ॥
नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं । अवगुण आठ सदा उर रहहीं ॥

एक तो ये दोनों चौपाइयाँ क्रमशः समुद्र और रावण की कही हैं, इनका उत्तरदायित्व समुद्र और रावण पर है, दूसरे इन पर वैदिकता की छाप नहीं है, फिर भी श्री तुलसी के अनुयायियों से नारी दूषण का वैदिक प्रमाण माँगा गया है । स्मरण रहे कि मानस की प्रत्येक सैद्धान्तिक बातों की वैदिकता दिखाने के लिये श्री तुलसी का एक साधारण अनुयायी मैं ही तैयार हूँ बड़े-बड़े विद्वानों की बात अलग ही है अस्तु—स्त्रियों के गुण के सैकड़ों और दूषण के कोड़ियों प्रमाण वेद में हैं, उनमें मात्र दूषण चाहने वालों के लिये एकाध प्रमाण ये हैं—

१—एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वो तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरहयाणा । (ऋ० ७।८०।२)

२—सावृकी रश्विना वृषणा नरेति । (ऋ० १।११७।१८)

३—अभ्रातरो नयोषणोव्यन्तः, पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदम जानता गभोरम् ॥

(ऋ० ४।५।५)

(रौ रौ नर्क कल्प शत परई ।)

४—(गुप्त प्रसविनी व्यभिचारिणी), आरे मत् कर्त रहसूरिवागः ।
(ऋ० २।२६।१)

५—कुहस्विद् दोषा कुह वस्तो रश्विना, कुहाति पित्वं करतः कुहोषतु ।
(ऋ० १०।४०।२ पूरा सूक्त १४ मन्त्र)

६—(छोटी बुद्धि)—गोष्ठं गाव इवाशतां । (ऋ० ८।४३।१७)

७—एष स्य मानुषीष्वाशयेनोन विक्षुसीदति ।

गच्छन् जारो न जोषितम् ॥ (ऋ० ६।३८।४)

८—अभिगावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम् ।

अगन्नाजिं यथा हितम् ॥ (ऋ० ६।३२।५)

९—आजामि रत्के अव्यत भुजेन पुत्र ओण्योः ।

सरज्जारो न योषणांवरो न योनि मासदन् ॥ (ऋ० ६।१०।१।१४)

१०—युवं कवीष्टः पर्यश्विना रथं विशोनकुत्सो जरितुर्नशायथ ।

युवोहं मक्षा पर्यश्विना मध्वासा, भरत निष्कृतं न योषणा ॥

(ऋ० १०।४०।६)

११—पुरुषो मा मृथा मा प्रपप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन् ।

न वै स्त्रैणानिसख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥

(ऋ० १०।६५।१५)

१२—यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वानिपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिवांसति तमितो नाशयामसि ॥ (ऋ० १०।१६२।५)

१३—यथा योषिद्वनपक्षयेतमेवतया निष्क्रीणामेक्ति ।

तामन्वार्तीयन्त तदनृतस्य जन्म ॥ (मैत्रायणी सं० ३।७।३)

१४—मोघ संहिता एव योषा तस्माद्य एव नृत्यति गायति ।

तास्मिन्तेवैता निमिश्ल तमा इव ॥ (शतपथ ब्रा० ३।२।४।६)

कहिये कुत्ता, शृगाल, भेड़िया, लकड़बग्घा, चीता, बाघ आदि हिंसक जन्तु के समान हृदय, अकल्याणरूप, मिथ्यावादी, व्यर्थ बकवादी आदि ताड़न के अधिकारी हैं कि नहीं ?

सुरूपं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् ।

योनिः क्लिद्यति नारीणां पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

स्त्रियोहि मूलं निधनस्य पुंसः स्त्रियोहि मूलं व्यसनस्य पुंसः ।

स्त्रियोहि मूलं नरकस्य पुंसः स्त्रियोहि मूलं कलहस्य पुंसः ॥

(चन्द्रकान्त वेदान्त दूसरा भाग पाँचवाँ विन्दु)

पुराणों और काव्यों का उद्धरण एक स्वतन्त्र पुस्तक बन जायेगा ।

१५—जासु छाँह छुड़ लेइय सींचा । लोक बेद सब भाँतिहि नीचा ॥

कोषों में चाण्डाल की श्रेणियों में निषाद की गणना की गई है ।—

निषादः स्वर भेदेऽपिचाण्डाले धीवरान्तरे । (मेदिनी)

निषादश्चपचावन्तेवासि चाण्डाल पुक्कसाः । (अमरः)

निरुक्त ने निषाद को पंचमवर्ग कह कर पाप योनि माना है—

वर्णाः निषादः पंचम । निषाद....पापकम् ।

(निरुक्त नैगमकाण्ड ३।२।२)

और वेद ने चाण्डाल को कुत्ता तथा शूकर के साथ परिगणित करके

चाण्डाल वर्ग को श्वान शूकरवत् अस्पृश्य एवं त्याज्य बतलाया है—

अथ य इह कपूयाचरणा अभ्याशोहयत्तेकपूयांयोनिमापद्येरन्
श्वयोनिंवा शूकर योनिं वा चाण्डाल योनिंवा ॥

(सामवेदीय तवत्कार शाखाकाल्छान्दोग्य ब्राह्मण ७।१०।७)

१६—दुइ सुत सुन्दर सीता जाये । लव कुश वेद पुराणन गाये ॥

वेद ने बतलाया कि सीता जी के दो पुत्र हुये, पुराणों ने उनका नाम लव और कुश बताया है । जिस तरह एक राम जी ने ही चार रूप से दशरथ-पुत्र रूप में अवतार लिया था उसी तरह सीता जी भी चार रूप में अवतरित हुई थीं, इसी से वेद ने चारों बहिनों के आठों पुत्रों को सीता जी का ही पुत्र कहा है—

अष्टौ पुत्रासो अदितिर्ये जातास्तन्वस्परि ।

(ऋ० १०।७।८ तै० आ० १।१३।२ तांड्यब्रा० २४।१२।६)

पंडिताग्रगण्य विद्वद्बरिष्ठ श्री नीलकण्ठ जी के भाष्य की हिन्दी वेदों में राम कथा में देखिये ।

ऋग्वेद १०।११६ पूरे सूक्त के ऋषि लव ही हैं ।

१७—“विप्रवेष धरि वेद सब कहि विवाह विधिदेहिं ।”

“विप्रवेष धरि वेद तब आये जहँ श्री राम ।”

वैदिक साहित्य का थोड़ा भी ज्ञान रखने वाला व्यक्ति वेदों को सामान्य पुस्तक मान कर कुरान, बायबिल या अलिफलैला फोस्ट क्रूसो आदि पुस्तकों के समान मानकर मानस कार को गाली न देता उनकी हँसी न उड़ाता । अधिदेववाद के तत्व को जानने वाला वेदों के शरीर धारण पर शंका ही नहीं कर सकता । यह ठीक है कि सामान्य पुस्तकें शरीर नहीं धारण कर सकतीं, परन्तु वेदाधिदेव के शरीर हैं उसके आख, कान, नाक मुख आदि अवयव तो प्रसिद्ध ही हैं । वेद अपने वेष को परिवर्तित कर लेते हैं । वेदों के शरीर विवरण के लिये जिज्ञासुजनों को चरण व्यूह देखना चाहिये । चरण व्यूह में वर्णित है कि—

ऋग्वेदस्य ईतिः पत्नी, अयं रुक्मवर्णः, पद्म पत्रायताक्षः, सुविभक्त-
ग्रीवः, कुंचित केशश्मश्रुः पिंगलाक्षः, प्रमाणेन पंचवितस्तिमात्रश्च ।

यजुर्वेदस्यपत्नी धृतिः, अयं दीर्घ कपोलः ताम्र वर्णः, कांचन नयनः
आदित्य वर्णः षट् प्रादेश मात्रश्च ।

सामवेदस्य पत्नी शिवा अयं नित्य स्रग्वी शुचिवासाः, शमो
दान्तो, दण्डी, कांचननयनः श्वेत वर्णस्तथाषडरत्नि मात्रः ।

अथर्ववेदस्य पत्नी शक्तिः, अयंतीक्ष्णः, चण्डः कामरूपः क्षुद्रकर्मा,
स्वशाखाध्यायी, विश्वात्मा, प्राज्ञः, महानीलोत्पल वर्णः दशारत्निमात्रः,
स्वदार जुष्टः, परस्त्रियाः स्तन्यपश्चेति । (सम्प्रदायवृत्तम् पृ० १३, १४)

अधिदैववाद को समझने वाला इस तत्व को भली भाँति समझ सकता है । वेद के शरीर है और वेद ने ब्रह्म की विनती भी किया है । वेद स्तुति का मन्त्र केवल दिग्दर्शन के लिये दिया जाता है—

बोध मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।

पीयते त्वो अनुत्वो गृणाति वन्दासस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥

(ऋ० १।१४७।२, शु० य० १२।४२ तै० सं० ४।२।३।४ नि० ३।२०)

अर्थ—यविष्ठ ! = हे सदैव युवा रहने वाले भगवन् !, मे = मेरे, अस्य = इस, मंहिष्ठस्य = पूजनीय, प्रभृतस्य = अच्छे प्रकार से सजाये हुए स्तोत्र को बोध = सुनिये, स्वधाव ! = हे सुन्दर रीति से प्रजा को धारण करने वाले (राजारूप) परमेश्वर !, त्वः = कोई तो, पीयते = आपकी निन्दा करता है और, त्वः = कोई, अनुगृणाति = आपकी स्तुति करता है । अग्ने ! = हे प्रकाश रूप प्रभो !, तेवन्दासः = हम वेद तो आपकी स्तुति करने वाले हैं । अतः, ते = आपकी, तन्वम् = मूर्ति को, आ = सम्यक् प्रकार से अर्थात् विधि पूर्वक, वन्दे = वन्दना करते हैं ।

सर्वथा निराकारवादी आर्य समाज के स्वामी दयानन्द जी ने भी इस मन्त्र के अर्थ में “शरीरं अभिवादये” “तेरी शरीर की वन्दना करता हूँ ।” लिखा है ।

मालूम पड़ता है कि श्री रामचरित मानस में उद्धृत वेद स्तुति का—

ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुण यश नित गावहीं ।

यह वाक्यांश इसी उपर्युक्त मन्त्र का भावानुवाद है ।

१८—प्रलापी का प्रलाप है कि वेदों में कहीं भी श्रीराम कथा या राम-नाम नहीं है । उसने कभी वेदों को पढ़ा ही नहीं । [शिश्रोदर परायणता में अपना सारा जीवन बिताने वाला, परिवार पोषण के लिये चन्दा माँगने में व्यस्त रहने वाला अन्तिम आयु में वेदों को पढ़ भी नहीं सकता । ऐसे लोगों के लिये वेदों में श्री रामकथा एवं श्री राम नाम जानने के लिये सुगम साधन है कि वे विद्वद्वरेण्य श्री नीलकण्ठ सम्पादित एवं उन्हीं के भाष्य युक्त “मन्त्रा रामायण नाम से ऋग्वेद के मन्त्रों का सङ्कलन देखें । यदि संस्कृत समझ में न आये तो हिन्दी टीका युक्त मन्त्र रामायण का परिवर्धित रूप इस वेदों में राम कथा को पढ़ें ।] श्री राम नाम समन्वित कुछ वेद मन्त्र यहाँ दिये जाते हैं—

१—प्रतद्दुःशीमें पृथ्वाने वेने प्ररामे अवोचम् ।

(ऋ० १०।६३।१४)

२—सचन्तः यदुषसःसूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन ।

(ऋ० १०।१११।७)

३—नक्तं जातास्य औषधे रामे कृष्णे पलक्नि च ।

(अथर्व १।३१।१)

४—सु प्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्विर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥

(ऋ० १०।३।३ साम, १५।२।३)

५—नास्य राम उच्छिष्टं पिबेत्० । (तैः आ० ५।८।२३)

६—अधोरामः सावित्र्य० । (शु० यजु माध्य० २६।५६)

इस छठे मन्त्र के सम्बन्ध में सामसंस्कार भाष्यकार का कहना है कि यजु-वेद की यह सम्पूर्ण कण्डिका सूर्य वंशावतीर्ण श्री राम जी का ही कथन करती है (देखिये—तत्त्वदर्शी वर्ष ४ अङ्क ४ मार्ग शीर्ष १६६१ वि०)

१६—नट मर्कट इव सबहिं नचावत । राम खगेशवेद अस गावत ॥

वेद प्रमाण—

शतेन पाशैरभिधेहि वरणैर्न माते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः ।

आस्तां जाल्म उदरं शंसयित्वा कीश इवावन्धः परिकृत्यमानः ॥

(अथर्व वेद ४।१६।७)

२०—भक्तहेतु लीला तनु गहई । जौ यह वचन सत्य श्रुति भाषा ॥

श्रुति प्रमाण—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः ।

उपासकानां कार्यार्थे ब्रह्मणो रूप कल्पना ॥

(अथर्व वेदीय राम पूर्व तापिनी उप० कण्डिका १ श्रुः ७)

अन्त में मैं श्री आस्काचार्य जी का एक वाक्य देकर औषधि रूप इस लेख को पूर्ण करता हूँ—

नैष स्थाणोरपराधो यदेनमंधो न पश्यति पुरुषापराधः स भवति

यथा ज्ञान पदीषु विद्यातः पुरुष विशेषो भवति पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयो विद्यः प्रशस्यो भवति ।

(निरुक्त नैगमकाण्ड १।५।१६।२)

यह उस पुरुष का अपना अपराध अथवा दोष है कि जिसको शास्त्रों का स्पष्ट अर्थ दिखाई नहीं पड़ता । यदि अन्धा व्यक्ति ठूँठ पेड़ या स्तम्भ को नहीं देख सकता तो ठूँठ का क्या अपराध यह तो उस अन्धे का अपराध है । जैसे देश में विद्या विशेष से पुरुष विशेष होता है, इसी प्रकार वेदज्ञों में जो विशेष विद्वान् होगा उसी की प्रशंसा होगी, साधारण ज्ञान वालों को विद्वानों में कौन पूछेगा ।

मैंने उस प्रलाप की पूरी औषधि बता दिया है, औषधि सेवन करके मस्तिष्क ठीक कर लेने से प्रलाप स्वयं ही बन्द हो जायगा, यदि औषधि सेवन ही नहीं करेगा और—

‘सन्निपात जल्पसि मनुजादा ।’ ‘जल्पहिं कल्पित वचन अनेका ।’

न्यायानुसार प्रलाप चालू ही रहा तो उससे न तो मानस की प्रतिष्ठा कम हो सकती है न किसी आस्तिक प्राणी के हृदय से गोस्वामी जी ही उतर सकते हैं और न उनके अनुयायियों की ही कमी हो सकती है । श्री गोस्वामी जी के ही शब्दों में—

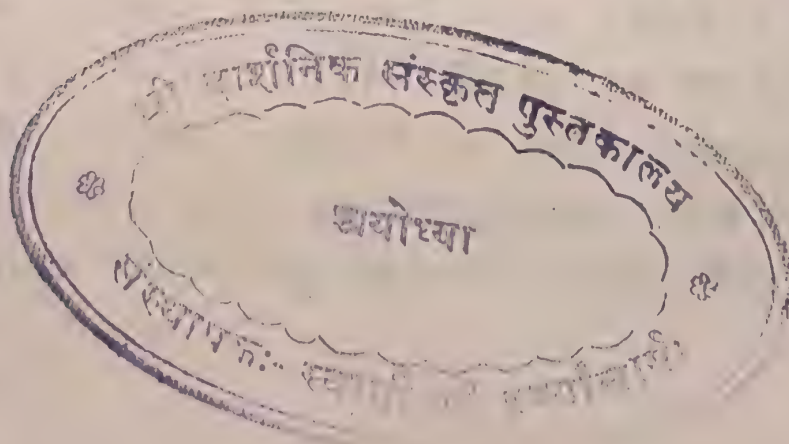
ईशशीश विलसति विमल तुलसी तरल तरंग ।

श्वान सरावग के कहे लघुता लहै कि गंग ॥

तुलसी देवलदेवके लागे लाख करोरि ।

काक अभागो हगि भरयो महिमा भई कि थोरि ॥

(दोहावली)



कटुसत्य

बहुतों को साहित्यिक चोरी करने का चस्का लग जाता है, किसी की कविता उड़ा लेना साधारण बात हो चुकी है। त्यागी विरक्त-साधु कहाने वालों को तो ऐसी मनोवृत्ति सर्वथा पतित कर देती है। कुछ लोग तो अपने परिचितों में प्रतिष्ठा पाने के लोभ से दूसरों की पूरी पुस्तक की पुस्तक अपने नाम से प्रकाशित करके बेंचते या बाँटते हैं। पण्डितराज स्वामी श्री भगवदाचार्य जी महाराज की 'त्रिरत्नी' पुस्तक को एक चित्रकूटी सज्जन ने अपने नाम से छपवा कर बाँटा था केवल पुस्तक का नाम एवं आकार बदल दिया था। असली लेखक की चर्चा ही नहीं की। अभी जब मैं इस पुस्तक को छापाने काशी जाने लगा तो परम श्रद्धेय स्वा० श्रीपरमानन्दजी जयपुर मन्दिर जानकी घाट ने एक मन्त्र रामायण की द्वितीयावृत्ति की छपी पुस्तक दी, उसे देखने से पता चला कि पं० श्री नीलकण्ठ जी के संस्कृत भाष्य मन्त्ररामायण का अनुपूर्वी अनुवाद है, आरम्भ में या मुख पृष्ठ पर अथवा भूमिका में कहीं भी उनका नाम नहीं दिया गया है। हाँ पुस्तक के अन्त में एक कोने में इस ढङ्ग से दिया गया है जिसका कोई अर्थ न हो। उसके बाद सबसे अन्त में तत्त्वदर्शी एवं केनोपनिषद्भाष्य के साथ प्रकाशित उपर्युक्त पण्डितराज स्वामी जी का लिखा "अथर्व वेद में अयोध्या" शीर्षक लेख दे दिया गया है (पहले संस्करण में नहीं था) परन्तु स्वामी जी की चर्चा नहीं गई है। इस लेख में स्वामी जी ने मन्त्रों का पता दिया है इसी से उस भाषाभाष्य नामक मन्त्ररामायण में अयोध्या का पता दिया गया है, परन्तु पं० श्री नीलकण्ठ जी ने किसी भी मन्त्र का पता नहीं दिया है इसी से उस हिन्दी मन्त्र रामायण में मन्त्रों का पता नहीं है। अब मैंने परिश्रम करके मन्त्रों का पता ढूँढ़ ढूँढ़ कर मन्त्रों के साथ दे दिया है तो शायद अगले संस्करणों में उन्हें पता देकर छापने बाँटने का शौक हो जाय या दूसरे लोग भी पता दे देकर छापने लगें

बिना परिश्रम मिल जाने पर क्यों छोड़े । चोरी पकड़ कर किसी के बोलने से भी क्या होता है—“एकां लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्यविजयीभवेत् ।” तो पुराना फार्मूला है । उस हिन्दी मन्त्र रामायण में नीलकण्ठी भाष्य का अनुवाद कर देने से “मधवा का अर्थ विडौजा” हो गया है । केवल हिन्दी वालों के लिये तो वह कठिन है ही संस्कृतज्ञ भी नीलकण्ठी भाष्य सुगमता से समझ सकते हैं, पर उसे नहीं । कारण कि हिन्दी गद्य और संस्कृत गद्य लिखने की रीति शैली ही भिन्न-भिन्न होती है । खेमराज बम्बई की छपी नीलकण्ठी मन्गरामायण में प्रेस के प्रेतों की कृपा से चार पाँच मन्त्रों में अशुद्धियाँ आ गई हैं, भाषाभाष्यकार के दोनों संस्करणों में ज्यों की त्यों वे बनी हैं । इसी तरह श्री जानकी चरण चामर पर मेरी सरला एवं रजः प्रच्छालिनी टीका छपने के पूर्व प्रकाशक महोदय यहाँ के कई विशिष्ट विद्वानों के पास हिन्दी टीका कराने गये पर लोगों ने परिश्रम से बचने किंवा अपनी असमर्थता छिपाने के लिये समयाभाव आदि का बहाना कर दिया था । अब सुनने में आता है कि उन्हीं में से कोई मेरी टीका का आकार प्रकार बदल कर अपना नाम टीकाकार में लिखाना चाहते हैं । मानसमणि आदि पत्रों में तो यदाकदा अपने पुराने मानस सम्बन्धी लेखों को परिवर्तित रूप में पाता ही हूँ । अस्तु ऐसे साहित्यिक चोरों महानुभावों से कहना यह है कि यदि इन सब की चोरी करें तो थोड़ा परिश्रम करके एवं चतुराई से करेंगे अन्यथा उन्हें मेरी त्रुटियों को भी लेकर उपहास पात्र बनना पड़ेगा ।

डा० श्री गोवत्स जी अपने इतने अभिन्न हैं कि उनको अपने स्नेह से स्वयं भूमिका लिख देने के कारण धन्यवाद देना अपने हाथों अपनी पीठ ठोकना है ।

आलोचकों से

कोई भी लेखक समस्त पत्र-पत्रिकायें एवं पुस्तकें नहीं देखा करता, और न देख ही सकता है । इसलिए जो सज्जन “वादे वादे जायते तत्त्व बोधः” की दृष्टि से इस ग्रन्थ की चाहे जैसी भी आलोचना करें, उनसे अनुरोध है कि वे

अपनी आलोचना की एक प्रति रजिष्ट्री द्वारा लेखक के पास अवश्य भेज दें जिससे लेखक उसकी प्रत्यालोचना करके उनके पास भेज दें ।

विनीत

लेखक

श्री मदगुरुचरण कमलेभ्यो नमः

श्री सीतारामाभ्यां नमः

श्री मते रामानन्दाय नमः

कलितिमिर दिनेशं तापहृत्तारकेशं

धृतनृप वर वेषं दिव्य लीला रसेशम् ।

असित घनसुकेशं शोभनं सन्निवेशं,

हरिहर हृदयेशं नौमि तं कौशलेशम् ॥

वेदकृत मङ्गलाचरण

ॐ ईषे ! त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय
कर्मणऽ आप्यायध्वमध्वन्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा
मावस्तेन, ईशत माघ शंशोध्रुवाऽ अस्मिन गोपतौ स्यात वह्निर्यजमा-
नस्य पशून् पाहि ॥ १ ॥ (शुक्लयजुर्वेद १।१)

ईषे 'ईषा लाङ्गल दण्डः, स्यात् सीता लङ्गल पद्धतिः'
(अमरकेश) के अनुसार 'सीता' और 'ईषा' पर्याय
हुआ । अतः 'ईषा' का सम्बोधन हुआ 'ईषे !'
अर्थात् हे सीते !

ऊर्जे आपकी माया से विजय पाने वाले पराक्रम के लिये
त्वा आपकी वन्दना करता हूँ इसलिये कि
वायवःस्थ वायुपुत्र हनुमान् जी के कन्धे पर स्थित होकर
देवः क्रीड़नशील-दिव्यज्ञानानन्द मङ्गल विग्रह युक्त
सविता सूर्य कुल के सूर्य श्री रामचन्द्र जी
वः प्र अर्पयतु आपके प्रेमाधीन हैं उन्हें आप हमें (भक्तों को)
प्राप्त कराइये ।

इन्द्राय श्रेष्ठ तमाय* सर्वैश्वर्य सम्पन्न श्री राम जी के, अन्त्यन्त श्रेष्ठ

* इन्द्र शब्द पर १२ मंत्र को देखिये ।

कर्मणे

अघ्न्या

भागम्

आप्यायध्वम् वः

प्रजावती

अनमीवा

अयक्ष्मा

स्तेनः ईशतः न

अघशंसः

मा ईशतः अस्मिन्

गोपतौ

ध्रुवाः

स्यात् यजमानस्य

बह्वीः पशून् पाहि ।

कर्म पूजन के लिये सर्वदा एवं सर्वथा

अवध्या अर्थात् गायों की वृद्धि करके उनके

(गायोंके भाग) गव्य-दुग्ध, घृत, दधि आदि

परिपुष्ट कीजिये बढ़ाइये और वे आपकी हैं एतदर्थ

वे सवत्सा गायें कभी भी

कृमिकीटादि जन्य सामान्य रोगपीडित न हों वे

यक्ष्मा आदि प्रबलतम रोगों से रहित हों उन्हें

चौरादि चुराने में समर्थ न हों ।

पापी गण इन्हें किसी तरह कष्ट देने में

समर्थ न हों । इस लोक में रहते हुये हमारी

गो पालक (चराचर पालक) श्री राम जी में

निश्चय सदैव रहने वाली प्रीति

हो । आप अपनी दया से यज्ञकर्ता (उपासक) के

बहुत से पशुओं की रक्षा कीजिये ॥ १ ॥

अब पाँच ऋचाओं में संक्षेप से श्री राम चरित का वर्णन है । इस दूसरे मन्त्र में भी प्रश्नोत्तर द्वारा ईश्वर की स्तुति रूप मङ्गला चरण ही है—

(१) कं नश्चित्रमिषण्यसिचिकित्वान् पृथुग्मानं वाश्रंवावृधध्यै ।

कत्तस्यदातुशवसो व्युष्टौ तत्तद्बज्रंवृत्ततुरमपिन्वत् ॥ २ ॥

(ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ६६ मन्त्र १)

वा वृधध्यै

नः इषण्यसि

चित्रम् पृथुग्मानम्

वाश्रम्

चिकित्वान्

कम् तस्य शवसः

हे गुरो आप जिस पुरुष की

स्तुति करने के लिये

हमें प्रेरित करते हैं (उस स्तुत्य पुरुष की)

रमणीयता निरतिशय ऐश्वर्य (और)

वर्णनीयशोभा को (आप)

जानते हैं (कि वह चित्रादि गुणवाला पुरुष)

कौन है (और) उस पुरुष के बल के

व्युष्टौ कत् दातु

प्रकाश में (हमें) क्या दिया जायेगा (अर्थात् स्तुत्य कौन है और उसकी स्तुति से क्या फल होता है ? गुरु रूप श्रुति का उत्तर है कि—वह ईश्वर धर्म-भूतज्ञान को संकुचित करने वाले महामोह)

तत्तत्, बज्रम्

वृत्ततुरम्

अपिन्वत्

अज्ञान को, नाश करने वाला है, और ज्ञान को सब प्रकार से

विकसित करके परमानन्द देनेवाला है ॥ २ ॥

अब श्रुति स्तुत्य स्वरूप का दिग्दर्शन करा रही है कि—

(२) सहि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।

स नीडेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ॥३॥

(ऋ० १०।६६।२)

हि सः

विद्युता

परम प्रसिद्ध उस (घनश्याम पुरुष श्री राम) ने विजली के समान कान्तिमती एवं जिस तरह तड़ित कभी भी मेघ से वियुक्त नहीं रहती वैसे सदैव घनश्याम सच्चिदानन्द श्री विग्रह के साथ रहनेवाली

द्युता, साम

वेति

अपनी दीप्ति मती शक्ति श्री सीता जी के साथ साथ प्रस्थान किया (अर्थात् माता पिता की आज्ञा से श्री सीता जी को साथ लेकर श्री राम जी ने अयोध्या से दण्डकारण्य को गमन किया ।)

अस्य पृथुम्

योनिम्

असुरत्व

आससाद

सः

सनीडेभिः

अस्य मायाः

प्रसहानः

इन श्री रामजी की, पृथ्वी से उत्पन्न

पत्नी (श्री सीता जी) को

असुर कर्म अर्थात् चौर कर्म पूर्वक

प्राप्त किया अर्थात् असुर रावण ने चुरा लिया ।

उन श्री रामजी ने तब लंका में जाकर

साकेत लोक में रहने वाले हनुमदादि पार्षदों के साथ

रावण की (नाग पाशादि समस्त) आसुरी माया का

नाश कर दिया कि (क्योंकि)

ऋते

न

सप्तथस्य

भ्रातुः

साम ।

सत्य स्वरूप श्री रामजी को किसी की माया नहीं लग सकती अर्थात् जो माया के वश हैं उन्हीं को दूसरे की माया बाधा दे सकती है, माया रहित-माया पति को नहीं। वह मायावी रावण कैसा थाकि, नारायण की सातवीं पीढ़ी में था (नारायण, ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, पुलस्त्य । विश्रवा और तब रावण । इस तरह रावण सातवाँ वंशज है)

उसके भाई विभीषण को (श्री राम जी ने अपना)

मित्र बनाया ॥ ३ ॥

(३) स वाजं यातापदुष्पदायन् स्वर्षातापरिषदन् स निष्यन् ।

अनर्वा यच्छत दुरस्य वेदो धनञ्छिशनदेवाँ अभिवर्षसाभूत ॥४॥

(ऋ ० १०।६८।३)

सः

अनर्वा

अपदुष्पदायन्

वाजम् यात

स्वर्षाता

शिशन् देवान् धनन्

शतदुरस्य

वेदः

सनिष्यन्

स परिषदन्

वर्षसा अभि अभूत ॥

समस्त मायारहित श्री राम जी

अश्व युक्त वाहनहीन अर्थात् बिना रथ के ही

समुद्र में सेतु बाँध कर लङ्का के

संग्राम में आ गये (उस संग्राम में)

इन्द्रादि लोकों के विभाजक श्री राम जी

कामुक रावणादिकों को मारकर

सौ द्वार (इन्द्रियाँ-प्रत्येक शिर के दश इन्द्रिय के

क्रम से रावण के सौ इन्द्रियाँ थीं) वाले रावण के

धन अर्थात् लङ्का के राज्य को

उसके भाई विभीषण को देकर

अपने परिजनों के साथ (शोभित हुये और

अपने सच्चिदानन्द रूप से विराजमान हुये ॥ ४ ॥

अब श्रुति पूर्व ऋचा में कथित 'अपदुष्पदायन' का विवरण करती है ।

(४) स यद्वयोऽवनीर्गोष्यर्वा आजुहोति प्रधन्यासु सस्त्रिः ।

अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥ ५ ॥

ऋ० १०।६६।४।

यत्र	जिस जगह
घृतम्	क्षरण स्वभाव वाला अर्थात् उत्ताल तरङ्गों वाला
वाः, द्रोणी	जल है (जहाँ पर) नाव जहाज ही
अश्वासः ईरते ।	घोड़ों के समान गमन करती हैं । (और जहाँ पर)
युज्यासः	सखा लोग अर्थात् श्री राम जी के मित्र बानर गण
अरथाः	बिना सवारी के
अपादः	पैदल नहीं जा सकते थे ऐसे महार्णव समुद्र में
सः यह्यः	उन श्री राम जी ने बहुत बड़ी
अवनीः	पृथ्वी की रचना कर
सस्त्रिः	पार करके अर्थात् दुर्गम समुद्र पर दश योजन (४०
	कोस) चौड़ा और सौ योजन (४०० कोस) लंबा
	पुल बाँध कर ससैन्य स्थल के समान उस समुद्र को
	पार करके
प्रधन्यासु गोषु	संग्राम योग्य भूमि अर्थात् समरांगण में
अर्वा आजुहोति ।	जाकर विजय करके बहुत प्रकार से दान एवं होमादि
	करते हुये पृथ्वी का पालन करने लगे ॥ ५ ॥

(५) स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारे अवद्य आगात् ।

वम्रस्यमन्ये मिथुना विबव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ॥ ६ ॥

ऋ० १०।६६।५।

रुद्रेभिः	रुद्रावतार हनुमदादि बानरों की सहायता से
सः अशस्तवारः	वे श्रीराम जी प्रतिकूल काल अर्थात् वनवास काल
	और सामरिक काल को
हित्वी, मुषायन्	पार करके, चोर रावण के द्वारा हरण की गई
अन्नम्	पृथ्वी अर्थात् पृथ्वी रूपा श्री जानकी जी को

अभीत्य

प्राप्त किया । (प्राप्त करने पर दश मास रावण के घर रहने के कारण लोकापवाद के डर से श्री राम जी ने जब श्री सीता जी को कुछ दुर्वचन कहा तो श्री सीता जी)

अरोदयत्

रुदन करने लगीं (तो भी समस्त देवताओं के सामने श्री सीता जी को अग्नि में छोड़कर अपवाद रूप)

अवद्य आरे

उनके समस्त दोषों को दूर करके

ऋभ्वा

ऋत अर्थात् पातिव्रत रूप सत्य से प्रकाशमान देवी श्री सीता जी के सहित और

रुद्रेभिः

हनुमदादि वानरों के सहित अपने

गयम् आगात्

गृह (अयोध्या) को आये । (इसे)

चम्रस्य, मिथुनौ

महर्षि श्री वाल्मीकि जी के दो शिष्य अर्थात् कुशीलव वाल्मीकि जी से रामायण पढ़ कर सब लोगों में प्रचार करेंगे । ऐसा हम अर्थात् वेद मानते हैं ॥६॥

विब्रवीः मन्ये ।

श्रुतियों में अनेक स्थान पर 'अन्न' शब्द पृथ्वी के लिये भी व्यवहृत हुआ है । (दे० "ता अन्नमसृजन्त" छा० उ० "पृथ्वी वा अन्नम् ।" तै० उ०)

(६) पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः संदहन्तो अब्रतान् ।

इन्द्रद्विष्टामपधमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥७॥

पितुः मातुः ये

(संसारी) पिता और माता से भी जो

आ अधि

सब प्रकार से बढ़ कर महान हित करने वाला है (उस राम चरित्र को)

सम्, अ, स्वरन्

अच्छी प्रकार से खूब, कीर्तन करने पर वह राम-चरित्र सुनने एवं कीर्तन करने वालों के

अब्रतान्

हिंसक अर्थात् काम क्रोधादि आध्यात्मिक शत्रुओं का अच्छी प्रकार से सर्वथा नाश करते हुये

सम् दहन्तः

मायया

इन्द्र

भूमनः दिवः

परि, इन्द्र

द्विष्टाम् असिकीम् त्वचम्
अपधमन्ति ।

ऋचा

शोचन्तः ॥

(७) प्रत्नान्मानादध्याये समस्वरञ्छलोक यंत्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पंथां न तरन्ति दुष्कृतः ॥८॥

ऋ० ६।७३।६

प्रत्नान् मानात्

अधि सम्

अ, स्वरन्

श्लोक

यंत्रासः

रभसस्य, मन्तवः

मूलाविद्या के सहित, जो पापशरीर कि
आत्मा का शत्रु है अर्थात् आत्मा को
भूलोक से (तथा) स्वर्ग से
परिच्युत कर नाना योनियों में पतित करके महान्
कष्ट देता है उस, आत्मा से

द्वेष करने वाले तमोमय पाप शरीर को
नष्ट कर देता है । उस रामायण का प्रथम

मन्त्र अर्थात् पहिला श्लोक—

“मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।

यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम् ॥”

शोक करते हुये (महर्षिवाल्मीकि के मुख से अना-
यास प्रकट हुआ है ॥ ७ ॥

(जिसने सबसे) पुरातन प्रमाण से अर्थात् वेद से
अधिक (अर्थात् वेद में जो यत्र तत्र सूत्र रूप से
श्री राम चरित्र वर्णित है उसे वाल्मीकि जी ने दिव्य
दृष्टि प्राप्त करके स्पष्ट रूप से विस्तार से साफ साफ
वर्णन करते हुये अच्छी प्रकार से

खूब, कीर्तन किया (अर्थात् परम रमणीक
काव्य किया और उस काव्य के प्रत्येक) पद्य
यंत्र के समान प्रवृत्त हुये अर्थात् महर्षि वाल्मीकि के
मुख से अनायास ही राम चरित्रात्मक पद्य निकलने
लगे । (उन राम चरित्रात्मक श्लोकों को जो लोग
नहीं पढ़ते सुनते वे चित्तरूपी नदी के)

वेगको अत्यन्त मान देनेवाले अर्थात् काम क्रोधादि से

अनक्षासः

बधिराः ऋतस्य
पन्थाम् अहासत

दुष्कृतः

न तरन्ति ।

(८) सहस्र धारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।

रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वंचः सुदृशो नृचक्षसः ॥ ६ ॥

ऋ० ६।७३।७

सहस्रधारे

आ

हजारों रूप से अर्थात् सब चराचर रूप में

वाह्याभ्यन्तर सर्वत्र (अर्थात्—

“यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ।

अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥”

इस श्रुति के अनुसार)

वितते पवित्रे

मनीषिणः कवयः

व्याप्त रहने वाले भगवान् के परम पवित्र चरित्र में
जितेन्द्रिय एवं बुद्धिमान् तथा काव्य रचना में समर्थ
(वाल्मीकि, व्यास, शिव, हनूमान् प्रभृति कवि लोग
भगवद्गुण कीर्तन द्वारा अपनी

वाचं, पुनन्ति ।

एषां, इषिरासः

अद्रुहः रुद्रासः

स्पशः

स्वंचः सुदृशः

नृचक्षसः ।

वाणी को पवित्र करते हैं ।*

उन कवियों में अद्भुत गति वाले (और)

किसी से द्रोह न करने वाले, रुद्रावतार हनूमान् ने
सीतान्वेषक चार बन कर अपने

सुन्दर गमन और सम्यक् परीक्षा द्वारा

श्री सीता जी को (रावण की वाटिका में) देखा ।

* “कवि कोविद् अस हृदय विचारी । गावहिं हरि यश कलिमल हारी ॥”

“कवि कुल जीवन पावन जानी । सीयराम यश मङ्गल खानी ॥

तेहिते मैं कछु कहा बखानी । करन पुनीत हेतु निज बानी ॥”

इस मन्त्र का भाव यह है कि श्री राम दास्यत्व की अधिकता के कारण (ब्रूमर्षि) वाल्मीकि के समान रुद्र (शिव, हनूमान्) ने भी रामायण की रचना की है । इसी तरह अन्यमनीषी कविगण भी श्री रामस्तव के द्वारा वाणी को और श्रीरामदास्यत्व के द्वारा देह को पवित्र करते हैं । इस प्रकार परमेश्वर में अपनी वाणी को लगा कर सफल एवं पवित्र करने वालों को क्या फल मिलता है ? इसका वर्णन अगले मन्त्र में किया है—

(६) ऋतस्य गोपा न दमाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्यन्तरादधे ।

विद्वान्स विश्वा भुवनानि पश्यत्यवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अब्रतान् ॥१०॥

(ऋ० ६।७३।८७)

सः उपरोक्त मन्त्रानुसार जो इस प्रकार भगवद्गुण गान के द्वारा अपनी वाणी को शुद्ध करता है और उस ब्रह्मविद्या के प्रभाव से वह

ऋतस्य गोपाः सत्य स्वरूप आत्म तत्व का रक्षक होता है (वह)
दमाय दम्भ करके किसी को कभी किसी प्रकार का कष्ट देने के लिये कविता या अन्य प्रयास

न नहीं करता । अतएव वह लोक में सर्वथा निर्भय रहकर अभय पद-मोक्ष प्राप्त करता है । क्योंकि वह

सुक्रतुः श्री राम जी का परम शोभन ध्यान करता है अतएव

त्रीः पवित्राः ज्ञान,* दया,† और शौर्य□ इन तीन पवित्र गुणों को

अन्तर्हृदि आदधे हृदय में धारण करता है । इसी कारण

सः विद्वान् वह व्यक्ति आत्मतत्त्वज्ञ होकर

* 'नहिज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।' 'नहिं कलु दुर्लभं ज्ञानं समानम् ।'

† 'न दया सदृशो धर्मः ।' 'धर्मं किं दया सरिस हरियाना ।'

□ 'लोकान्पुनन्तु रिपवो हि शस्त्र पूतान् ।'

अतः अधर्मियों को निग्रह करना = दण्ड देना भी अनुग्रह रूप धर्म है ।
इसी से शौर्य को परम पवित्र गुण माना है ।

विश्वा भुवनम्
अभि पश्यति
अजुष्टान् अव
अब्रतान्

सम्पूर्ण लोक अर्थात् ब्रह्माण्ड को
पूर्ण रूप से देखता है अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है,
और दीनों का अतिशत पालन करता है । तथा
कर्म और ब्रह्म अर्थात् लोक और परलोक दोनों से
भ्रष्ट लोगों का

कर्ते

कृन्तन् अर्थात् छेदन करता है = दण्ड देता है तथा
संग्राम में मारकर (उस पापिष्ठ का)

विध्यति ।

उद्धार कर देता है ॥ १० ॥

(१०) ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया वरुणस्य मायया ।

धीराश्रित् तत् समिनक्षन्त आशतात्राकर्तमव पदात्य प्रभुः ॥११॥

(ऋ० ६।७३।६)

इस मन्त्र में श्री हरिकथा में लगे हुआ की स्तुति और अन्यो भगवच्चरित्र
विमुखों की निन्दा की गई है ।

वरुणस्य

भोग एवं मोक्षार्थियों से वरणीय

ऋतस्य

सच्चिदानन्द परमात्मा को प्राप्त करनेवाला अर्थात्

तन्तुः*

ऊर्ध्व गति के साधन स्वरूप श्री रामजी की कृपा से

मायया† आ

किया गया एवं अत्यन्त

विततः

विविस्तृत रूप श्री राम चरित्र

वरुणस्य

वरुणपुत्र प्राचेतस (भार्गव) महर्षि श्री वाल्मीकि की

जिह्वायाः अग्रे

जिह्वा के अग्रभाग में स्थित हुआ अर्थात् महर्षि

वाल्मीकि ने श्रीराम चरित्र का गान किया, उस राम
चरित्र एवं श्रीराम जी के

धीराश्रित्

श्रवण मनन निदिध्यासन में लगे हुए पुरुषाग्रगण्य

* 'स यथोर्ण नाभिस्तंतुनोच्चैरौत् ।' (मैत्राणीय)

'स यथोर्ण नाभिः सृजते गृहणेत् च ।' (छां० उ०)

† माया वयुनम् ज्ञानम् (वै० नि०) मायादम्भे कृपायां च (कोश)

तत् समिनक्षन्त

आशत

अत्र

अप्रभुः

अ, कर्तम्

अवपदाति ।

लोग उस सर्वव्यापक परमात्मा को

प्राप्त करते हैं । और जो

इस रामकथा में अपने श्रवण एवं जिह्वा के लगाने में असमर्थ हैं अर्थात् अपनी इन्द्रियों को श्रीहरि चरित्र में नहीं लगाते वे लोग

अत्यन्त हिंसास्थान अर्थात् असिपत्रवन नामक नर्क में पतित होते हैं ॥ ११ ॥

(११) तां सु ते कीर्तिं मधवन महित्वा यत् त्वा भीते रोदसी आह्वयेताम् ।

प्रावो देवाँ अतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥ १२ ॥

(ऋ० १०।५४।१)

मधवन्

इन्द्र

ते ताम् सु

कीर्तिं महित्वा

यत् यत् भीतेः

रोदसी, त्वा

आह्वयेताम्

देवान् प्र

अवः

दासम्

ओजः

अतिरः

तु, अस्यै

हे धनवान् = लक्ष्मीपते = सीतानाथ !

हे परमैश्वर्यवान् = परमात्मन् !

आपकी उस परम प्रसिद्ध शोभन-सुन्दर

कीर्ति = सुयश का माहात्म्य पूर्वक वर्णन करता हूँ कि

प्रत्येक कल्प में जब जब राक्षसों से पीडित

स्वर्ग और पृथ्वी की सम्पूर्ण सत् प्रजाओं ने त्राहि-

त्राहि करके, आपका

आवाहन किया । तब तब आपने

देवताओं और महर्षियों का प्रकर्ष रूप से

पालन किया और

जो पूर्व जन्म का दास जय विजय अथवा भानुप्रताप

था वही दूसरे जन्म में रावण हुआ था उसको

पराक्रम करके युद्ध में

तिरस्कृत किया अर्थात् वध कर दिया, और उसके

बाद राज्य गद्दी पर बैठकर मनुष्य रूप से

निश्चित रूप से अर्थात् अच्छी तरह से इस मर्त्य-

प्रजायै अशिक्षः ।

लोक की अन्य प्रजाओं को वर्णाश्रमादि धर्म की समुचित रूप से (स्वयं पालन करते हुये) शिक्षा दिया ॥ १२ ॥

इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शास्वतम् ॥ (मनुस्मृति १२।१२३)

वाल्मीकीय रामायण में श्रीराम जी के लिये ब्रह्मा ने कहा है कि—

प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदन ॥ (वा० रा० ६।११७।१७)

इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत ॥ १८ ॥

ऐसा ही “अस्यवामीय सूक्त” के मन्त्र का उद्धोष है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथोदिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋ० १।१६४।४६)

ऋग्वेद १।३।४ के भाष्य में सायणाचार्य ने “इन्द्रः परमात्मा” कहा है और अथर्व वेद १।६।१ के भाष्य में भी सायण ने लिखा है कि—

इन्द्रः परमैश्वर्ययुक्तो देवानामधिपतिर्देवः, यद्वा इदंकारास्पदं विश्वंकारणभूतं ब्रह्मात्मानं अद्राक्षीदिति-इन्द्रः ॥

ऐत० उप० में “एषब्रह्मैव इन्द्रः” और शतपथ ब्राह्मण ६।५।१।३३ में “इन्द्रो यज्ञस्यात्मा” कहा है ।

मर्त्य स्वर्ग के उद्देजक दास को मारना और प्रजाओं को समुचित रूप से धर्म शिक्षा देना श्री रामभद्र जी का ही कार्य है अन्य का नहीं । उपनिषद् भाग की श्रुति भी यही कहती है कि—

धर्म मार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः ।

तथाध्यानेन वैराग्यं ऐश्वर्यस्वस्य पूजनात् ॥ (रा० ता० उ०)

लोक प्रसिद्ध कश्यप पुत्र देवराज इन्द्र का बारम्बार दैत्यों से पराजित होकर भागना पाया जाता है, इससे यह श्रुति आदितेय सहस्राक्ष परक नहीं हो सकती किन्तु “इदि परमैश्वर्ये” (भ्वा० प०) धातु से (ऋजेन्द्राग्र वज्र विप्र.....“उणादि २।२८” इति कर्तरिरिन् प्रत्ययः इन्द्रति परमैश्वर्यवान् भवतीति विश्वकोशे) निष्पन्न इन्द्र शब्द परमात्मा परक होने से यह श्रुति श्रीराम परक

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १३ ॥

(ऋ० ६।३।६। सामउत्त० २।५।४)

एष देवः हरिः
प्रत्नेन जन्मना
देवेभ्यः सुतम्
पवित्रे ।

ये दिव्य स्वरूप हरि श्रीराम जी
पूर्वजन्म = इससे पहले अवतार में
सर्व देव जनक—प्रजापति कश्यप के पुत्र—वामन
= उपेन्द्र थे, इस समय = (वैवस्वत मनु के चौबी-
सवें त्रेता में) परम पवित्र = सर्वथा निर्दोष कुल
रघुवंश में अवतार ग्रहण करके विराजमान हैं ॥ १३ ॥

वैसे ही इस समय भी आपका एक दास (भानुप्रतापादि में से कोई)
राक्षस बन कर महान् उपद्रव कर रहा है । अर्थात्

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।

स सोमं प्रथमः पपौ स चकार रसं विषम् ॥ १४ ॥

(अथर्व वेद ४।६।१।)

प्रथमः
ब्राह्मणः जज्ञे

पहिलेपहल (इसबार की सृष्टि में सर्वप्रथम एक ऐसा)
ब्राह्मण सन्तान उत्पन्न हुआ जिसके कि

ही है, अन्य परक नहीं । इन्द्र और राम शब्द पर्याय वाची शब्द हैं, क्योंकि
“इरां अन्नं ददाति इन्द्रः ।” इरा पूर्वक दानार्थक डुदाञ् धातु से इन्द्र शब्द
बनता है और “राति अन्नादि सर्वं वस्तुजातं ददाति रामः ।” दानार्थक ‘रा’
धातु से राम शब्द बनने से दोनों शब्द (राम और इन्द्र) दातृत्व अर्थ में
सिद्ध होकर पर्यायवाची हुए । ऐसे ही ‘इन्धी दीप्तौ’ से इन्द्र शब्द और “राजृ
दीप्तौ” से राम शब्द बनने से दोनों पर्याय वाची हुए, और इसी तरह “इदी
परमैश्वर्ये” से इन्द्र शब्द तथा “रमु क्रीड़ायाम्” से राम शब्द, विना ऐश्वर्य
के क्रीड़ा नहीं और क्रीड़ा ऐश्वर्य का द्योतक होने से भी दोनों (इन्द्र, राम
शब्द समानार्थ एवं पर्यायवाची हैं । अतः आगे के जिन मन्त्रों में ‘इन्द्र’
शब्द आया है वह प्रायः राम का पर्यायवाची ही है, इसे स्मरण रखना पर-
मावश्यक है ॥ १२ ॥

दशशीर्षः दशास्यः दश शिर और दश मुख है
 सः प्रथमः वह दशानन पहिले तो देवताओं तथा ऋषियों से
 छीन कर
 सोमम् पपौ वेद मन्त्रानुष्ठान (तप) रूप अमृत पिया और फिर
 सः रसम् उसने ही उस मन्त्रानुष्ठानादि को
 विषम् चकार । विष (जहर) कर दिया अर्थात् किसी को वेद
 मन्त्रानुष्ठान, यज्ञ, होम, पूजन पाठादि नहीं करने
 देता है ॥ १४ ॥

इस १४ वें मन्त्र का दूसरा अर्थ यह बताया गया है कि—

ब्राह्मणः ब्रह्मर्षि विश्रवा ने अपनी कैकसी नाम्नी पत्नी से
 प्रथमः पहिले (प्रथम सन्तान के रूप में)
 दशशीर्षः दशास्यः दश शिर और दश मुख वाला पुत्र
 जज्ञे, उत्पन्न किया (अर्थात् रावण कैकसी का पहिला—
 सः सोमम् पुत्र था) उस (दश शिर) ने सोम अमृत का
 पपौ पान किया (अर्थात् वह योग क्रिया से अपनी नाभि
 में अमृत कुण्ड स्थापित किये था जिससे कि उसने)
 विषम अरसम् विष को अरस (निः शक्त)
 चकार । कर दिया था अर्थात् बारबार शिर कटने पर भी
 मरता नहीं था ॥ १४ ॥

रघुपति शर शिर कटेहु न मरई ।

नाभि कुण्ड पियूष वस याके । नाथ जियत रावण बल हाके ॥

यावती द्यावा पृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्टिरे ।

वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥ १५ ॥

(अथर्व ४।६।२)

द्यावा पृथिवी

वरिम्णा यावती

सप्त सिन्धवः यावत्

आकाश और पृथ्वी

अपने विस्तार से जितनी बड़ी है

और सातो समुद्र जितनी दूर तक

वि-तस्थिरे
विषस्य
दूषणीं वाचम्
तां (वाचम्)
इतः निर्
अवादिषम् ।

फैले हैं, उतने विस्तार तक
विष स्वरूप दशास्य रावण की
दूषित वाणी-धर्म विरोधी आज्ञा फैली है
उस (रावण की दूषित एवं प्रबल वाणी का)
इस संसार से नाश करने के लिये
प्रार्थना करते हैं—हम देवता गण ॥ १५ ॥

भुजबल विश्व वश्य करि राखेसि कोउ न स्वतन्त्र ॥

देवता और ऋषियों ने जिस प्रकार परमात्मा का आवाहन किया था उसे स्पष्ट रूप से यह मन्त्र बतला रहा है ।—

(१२) आसूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घपांथे ।

रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कर्विर्दीदयद् गोषु गच्छन् १६

(ऋ० ५।४५।६)

दीर्घपांथे

इस महान संसार मार्ग में अवतार लेकर लीला करने के लिये

अस्य उर्विया

इस परमात्मा को श्रेष्ठत्व रूप से अत्यन्त अभिमत

यत् क्षेत्रम्

जो श्याम सुन्दर द्विभुज धनुर्धर शरीर है वह शरीर

सप्ताश्वः

सात घोड़े की रथ पर चलने वाले जो

सूर्यः

सूर्य हैं (उन सूर्य के वंश में)

आयातु

आवे अर्थात् अवतरित हो (किन्तु बहुत शाखाओं

रघुः

में विस्तृत सूर्य वंश में भी) रघुवंशी होकर

श्येनः

पक्षी रूप वह ब्रह्म लौकिक मनुष्यों के समान

अन्धः अच्छा

अन्नमय पिण्ड की ओर

पतयत्

भुके अर्थात् मनुष्यवत् आहार विहार करे और वह—

कविः, आ

सर्वज्ञ परमात्मा राजा—मनुष्य रूप में भी सदैव

युवा

युवक ही बने रहकर शाशक रूप से सम्पूर्ण

गच्छन्

भू-प्रदेश में विचरते हुये

दीदयत् ।

प्रकाशित होता रहे अर्थात् रघुवंश में शरीर धारण करके हम लोगों की रक्षा करे ।

इस मन्त्र का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि—

सूर्यः

सूर्यवत् सर्व प्रकाशक ज्ञान स्वरूप “द्वासुपर्णा”

(ऋ० १।१६४।२ अ० ६।६।२० इस श्रुति के अनुसार)

श्येनः

पक्षी = ईश्वर “तद्वावतोऽन्यानत्येति” इस श्रुति के अनुसार

रघुः आयातु

शीघ्र गामी वह ब्रह्म नरलोक में आवे । वह ज्ञान स्वरूप

कविः

सर्वज्ञ परमात्मा ज्ञान बल से इस मर्त्य लोक में अवतीर्ण होने पर भी सनकादिवत् सदैव एक अवस्थापन्न (युवा) रहते हुए लोकों पर कृपा करे । और

सप्ताश्वः ।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान नामक समाधि के सात अंग जिसकी प्राप्ति (आगमन) के साधन हैं । उस ब्रह्म का नाम सप्ताश्व है । (अन्य अर्थ पूर्ववत्) ।

“आशृण्वतीत्यः” आज्ञाकारी समुद्र अर्थात् समुद्र के नियन्ता इस तरह अन्य मन्त्र में ‘रघु’ पद सम्यक् प्रकार से श्री रामजी में ही संघटित होता है अन्य में नहीं यद्यपि कि समुद्रनियन्ता अगस्त्य भी हैं पर अन्य बातें अगस्त्य में न घटित होने से “आशृण्वतीत्यः” की तरह “आसूर्योपातु०” मन्त्र भी रघुकुलावतीर्ण दाशरथी राम परक ही है अन्य परक नहीं ॥१६॥

अब दो मन्त्रों में राजा दशरथ जी की मनः कामना श्रुति कहती है कि—
(१८) अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजाश्रव इच्छमानः ॥१७॥

(ऋ० १।१२६।१ नि० ६।१०)

अतूतः श्रवः

किसी को किसी प्रकार का कष्ट न देते हुये सत्कीर्ति की इच्छा करते हुये राजा दशरथ ने

इच्छमानः राजा

मनीषा सवान्
यो मे सहस्रस्य
अमिमीत

भाव्यस्य
स्तोमान्
प्रभरे
सिन्धौ अधि
क्षितः ।

इस संकल्प से यज्ञ का समारोह किया कि
जिन पितृगणों ने मुझको हजारों प्रकार का
ऐश्वर्य दिया है अर्थात् यह सैकड़ों प्रकार के विभवों
से युक्त सम्पूर्ण भूमण्डल का राज्य मुझे पूर्वजों का
दिया हुआ ही प्राप्त है, उन
पितृगणों के (पिण्डोदक के लिये ऐसे)
स्तूयमान प्रशंसनीय-यशस्वी पुत्रों को
प्राप्त करूँ जो कि पूर्ण बुद्धिमान (ज्ञानी) हों और
समुद्र के ऊपर भी अधिक (पूर्णरूप से)
ऐश्वर्य प्राप्त करें अर्थात् समुद्र दमन में सर्व प्रकारेण
समर्थ हों ॥ १७ ॥

(१८) उप मा श्यावाः स्व नयेन दत्ता वधूमन्तः दश रथासो अस्थुः ।

षष्टिः सहस्रमनुगव्यमागात सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अहाम् ॥ १८ ॥

स्व, नयेन
वधूमन्तः
श्यावाः दश रथासः
मा उप अस्थुः
अनु षष्टिः सहस्रम्
गव्यम् अगात्
दत्ताः सनत्
कक्षीवान्
अहाम् अभिपित्वे ।

(जो प्रत्येक पुत्र) अपने सत्पुरुषार्थ से
वधू प्राप्त करके अर्थात् सपत्नीक होकर प्रत्येक पुत्र
श्यामकर्ण अश्वों से युक्त दश १० रथों को लेकर
मेरे समीप उपस्थित हों, और प्रत्येक रथ के
पीछे-पीछे साठ हजार
गायों का झुण्ड मेरे पास आकर
मुझे दें । जिन गायों और रथों के समूह रूप धनों को
पुत्र कामना वाला मैं (दशरथ)
यज्ञ में (ईश्वर प्रीत्यर्थ) सत्पात्रों को दूँ ॥ १८ ॥

जब राजा दशरथ ने पुत्र प्राप्ति के संकल्प से अश्वमेध की तैयारी की तब
उन्हें सन्देह हुआ कि ये कोमलाङ्गी रानियाँ मेरे साथ यज्ञ मण्डप में रहकर
यज्ञीय अश्व की रक्षा का व्रतपालन सम्यक् प्रकार कर सकेंगी या नहीं, ऐसा
सन्देह होने पर बड़ी रानी ने कहा कि—

(२१) उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।

सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥१६॥

(ऋ० १।१२६।७॥ ति० ३।२०)

मे उपोप
परामृश

मे दभ्राणि
मा मन्यथा

गंधारीणाम् अविका
इव अहं सर्वा
रोमशा
आस ।

हमारे विषय में हम लोगों के लक्षणों से
विचार कर लीजिये कि ये रानियाँ दृढ़व्रता हैं या
नहीं और आप विना हमलोगों की परीक्षा लिये ही
मेरे व्रत में ये रानियाँ अर्धस्थित—असमर्थ हैं, ऐसा
मत समझ लीजिये, किन्तु यह निश्चय रखिये कि
गंधार देशोत्पन्न भेड़ों की रक्षा जिस प्रकार की
जाती है उसी तरह मैं एवं हम सब रानियाँ
बड़े-बड़े अयाल वाले यज्ञीय अश्व की रक्षा में सर्वथा
समर्थ हैं ॥ १६ ॥

जब पुत्रेष्ठी यज्ञ के लिये श्री वशिष्ठ जी की आज्ञा हुई कि—

सरज्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम्, (वा० उ०)

तो यज्ञभूमि को परिष्कृत करते हुए यज्ञरक्षार्थ ऋत्विजों ने श्री सरयू जी
का वरण निम्न मन्त्र से किया—

सरस्वती सरयुः सिन्धुरुर्मिभिर्महो मही रवसा यन्तु वक्षणीः ॥ २० ॥

(ऋ० १०।६४।६)

सरस्वती, सिन्धुः
सरयुः

निर्मल जल एवं बहुत विस्तृत धारवाली

श्री सरयू जी (यहाँ सरस्वती तथा सिन्धुः दोनों सरयुः
का विशेषण है ।)

महीरवसा ऊर्मिभिः
वक्षणीः

बहुत गम्भीर शब्द एवं महती तरङ्गों द्वारा
हमारे यज्ञ की रक्षा करने के लिये

महः यन्तु ।

पूज्य (अधिष्ठातृ) रूप से उपस्थित हों ॥ २० ॥

दशरथ जी के दूसरे पुरोहित वामदेव ने इन्द्र को समझाकर कहा कि—
उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णा चित्र रथावधी ॥२१॥

ऋ० ४।३०।१८

इन्द्र ! उत त्या
सद्यः सरयोः
पारतः
अर्णा, चित्र
रथा

हे देवराज इन्द्र ! आप
शीघ्र ही सरयू के

उस पार (उत्तर किनारे जहाँ यज्ञभूमि निर्माण की
जा रही है उधर) से मायामयी, विचित्र (अद्भुत)
रथ पर आने वाले विघ्नकर्ता असुरों की मायामयी
रथों को

अवधीः ।

नाश कर दीजिये, जिससे वे विघ्न करने के लिये
यज्ञस्थल तक पहुँच ही न सकें ।

वेद में सरयू को सर्वत्र ह्रस्व उकारान्त (सरयु) माना गया है इसी से
यहाँ षष्ठी के एक वचन का रूप 'सरयोः' दिया है । (ऋ० ५।१३।६ और
१०।६४।६) में भी 'सरयुः' ह्रस्व उकारान्त आया है ॥ २१ ॥

सब नदियों का जल लाने के लिये भेजते हुये धावनों को महर्षि अत्रि ने
समझाया कि—

मा वो रसाऽनितभा कुभाक्रमुर्मा वः सिन्धुर्निरीरमत् ।

मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिष्यस्मेइत् सुन्नमस्तु वः ॥ २२ ॥

(ऋ० ५।५३।६)

वः रसा, अनितभा,
क्रमुः कुभा, सिन्धुः मा
निरीरमत्
पुरीषिष्यः
सरयुः वः
मा परिष्ठात्

तुम लोगों को रसा अनितभा तथा
क्रमु कुभा और सिन्धु आदि नदियाँ मत
रमालें अर्थात् वहाँ अधिक समय मत लगाना ।
(तथा) अयोध्या पुरी की हित चाहने वाली
सरयू जी की धारा तुम लोगों को
आलसी मत बना ले अर्थात् सरयू जल से आनन्दित
होकर कर्तव्य को मत भूल जाना । यह यज्ञ सुचारु
रूप से सिद्ध हो जाने पर ही
हमें, तुम्हें, सब लोगों को सुख
ही होगा यह निश्चित है ॥ २२ ॥

अस्मे, वः सुन्नम्
इत् अस्तु

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ २३ ॥

ऋ० १।६।४ साम उत्त० ४।२।८

आत् अह यज्ञ के विभिन्न कर्म पूर्ण हो जाने और
स्वधाम् अनु विधि पूर्व हवनादि कार्य हो जाने के बाद
यज्ञियं नाम दधाना यज्ञ सम्बन्धी अनेक नामों को धारण करने वाले-यज्ञ
पुरुष परमात्मा ने, सर्व व्यापक होते हुये भी
पुनः गर्भत्वं एरिरे । पुनः गर्भ में आने का निश्चय किया ॥ २३ ॥

भक्ति सहित मुनि आहुति दीन्हें । प्रगटे अग्नि चरु कर लीन्हे ॥

“तिन के गृह अवतरिहौ जाई ।” जा दिन ते हरि गर्भहिं आये ॥

राजा दशरथ ने यज्ञान्त में ऋत्विजों की जैसी सत्कार पूर्ण बिदाई किया
उसका वर्णन श्रुति करती है कि—

(२०) चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।

मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पञ्चाः ॥ २४ ॥

ऋ० १।१२६।४

दशरथस्य राजा दशरथ के यज्ञ से विदा होकर ऋत्विक् लोग
जब अपने स्थान के लिये प्रस्थान करने लगे तब
सहस्रस्य अग्रे उन हजारों ऋत्विजों के प्रत्येक के आगे आगे उन्हें
दान में मिले हुये
अत्यान् चत्वारिंशत् बड़े वेग वाले चालीस अर्थात् कुल चालीस सहस्र
शोणाः लाल रङ्ग के श्यामकर्ण घोड़े और इतने ही
कृशनावतः मदच्युतः अत्यन्त सुशिक्षित मतवाले गजेन्द्रों की
श्रेणिम् नयन्ति पंक्ति को सेवकगण ले चलते हैं । तथा
कक्षीवन्तः पुत्र कामना वाले राजा दशरथ जी
उदमृक्षन्त पञ्चाः । अत्यन्त प्रेमपूर्वक दूर तक पहुँचाने गये ॥ २४ ॥

अवधपुरी रघुकुल मणि राज, । वेद विदित तेहि दशरथ नाऊ ॥

श्याम करण अगणित हय होते । ते तिन रथन सारथिन जोते ॥

इस प्रकार महाराज दशरथ जी से सभी ऋत्विजों को विदा कर दिया और अग्नि दत्त ब्रह्मचरु को निमित्त बनाकर जब श्री राम जी अवतीर्ण हुये तो बाल लीला देखने आये हुये देवता लोग भगवद्विव्यविग्रह को गर्भ में धारण करने वाली माता श्री कौशल्या जी की स्तुति प्रशंसा कर रहे हैं कि—

नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च ।

इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥ २५ ॥

अथर्व० १।२३।१

नक्तंजातास्या ओषधे ! हे चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली तथा भगवद्दर्शन से त्रिताप को दूर करने वाली अथवा सर्व दोषों का नाश करने वाली

असिक्नि ! हे मृत्यु से दूर रहने वाली चिर सङ्गिनी !

रजनि । हे स्वपति महाराज दशरथ जी को अनुरञ्जन कराने वाली अथवा श्री राम जी को जन्म देने वाली श्री कौशल्या जी !

इदम् किलासम् इन क्रीड़ा को त्याग देने वाले

यत् च पलितम् जो सफेद केश वाले हैं उन वृद्ध दशरथ जी को

रामे, कृष्णे श्याम वर्ण वाले अपने पुत्र भगवान् श्री राम में, आसक्त बना दो अथवा 'रामे कृष्णे' सतमी हैं

'जाते' का अध्याहार करना है अतः श्याम स्वरूप भगवान् श्री राम जी के प्रगट होने पर वृद्ध दशरथ जी को आप प्रसन्न कीजिये ॥ २५ ॥

इस मन्त्र का तात्पर्यार्थ लिखने के प्रथम वेदोपनिषद् भाष्यकार 'पंडित राज' स्वामी श्री भगवदाचार्य जी महाराज इस मन्त्र का शब्दार्थ इस तरह लिखते हैं—

'ओष' अथवा 'दोष' उपपद रख कर 'घेट' धातु से कर्ता में 'कि' प्रत्यय होकर 'ओषधि' शब्द बनता है । 'ओष' का अर्थ है 'दाह' । 'दाह' शब्द से सांसारिक त्रिविधि ताप का ग्रहण है, अतः 'ओषंधयति' जो त्रिविध ताप को

पान कर जाय अर्थात् नाश कर दे उसका नाम 'ओषधि' है। 'दोष' शब्द उप पद रखकर बनाना हो तो 'दकार' का लोप कर देना चाहिए। तब दोष धयति' यह विग्रह होगा। 'नक्तंजातास्या' एक पद है। 'नक्तंजात' चन्द्रमा का नाम है। 'किलास' में दो शब्द है 'किल + आस'। क्रीडनार्थक 'किल' धातु से किल शब्द बनता है। 'किलम् अस्यास्तीति किलासः' जो क्रीड़ा को दूर कर दे उसे 'किलास' कहते हैं। 'पलित' का अर्थ है सफेद केश। 'पलित' शब्द से तद्धित का 'अच्' प्रत्यय करने से 'पलित' का अर्थ श्वेत केश वाला होता है। 'रजनि' शब्द का अर्थ पति को रमण कराने वाली स्त्री है अथवा 'रकारार्थोरामः' आचार्य के इस वचनानुसार 'र' का अर्थ राम है। 'जनि' का अर्थ जन्म है (अतः) राम का जन्म जिससे हुआ है उसका नाम 'रजनी' है। 'ई' स्त्री प्रत्यय है अतः यहाँ तात्पर्य कौशल्या जी से है। सम्बोधन का रूप है। 'असिक्नि' का अर्थ है जिस स्त्री के केश सफेद न हुये हों। केश श्वेत्य मृत्यु का परिचायक है, अतः यहाँ पर कहने से तात्पर्य है कि जिसकी मृत्यु अभी बहुत दूर है। यहाँ भी तात्पर्य कौशल्या जी से ही है।

इस प्रकार शब्दार्थ समझ लेने से मन्त्रार्थ बहुत सुगम हो गया।

(तत्त्वदर्शी ४।४।७०)

माता के गर्भ में कैसे प्रवेश किया ? तो इस पर श्रुति कहती है कि देव-ताओं ने प्रार्थना किया कि हे प्रभो !

कृष्णं त एम रूपतः पुरोभाश्चरिष्णुरर्चिर्वपुषामिदेकम्।

यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥ २६ ॥

ऋ० ४।७।६

ते पुरः यत्

कृष्णम्

भा

तत् ते एम्

एकं इत् अर्चिः

आपका प्रथम (नित्य धाम साकेत) वाला जो

श्याम स्वरूप सुभाय सुहावन सच्चिदानन्द मय

कान्तिमान् श्री विग्रह। (चिदानन्दमय देह तुम्हारी) है

उसे आपकी कृपा से हम सब प्राप्त (दर्शन) करें।

जो आपका ज्वालावत् एक अंश मात्र

वपुषाम्

चरिणुः

यत् कृष्णं भा

अ प्रवीता

गर्भं दधते

ह

चित् जातः

सद्यः इत् उ चित्

दूतः भवसि ।

समस्त ब्रह्माण्ड रूप आपके शरीर में

व्याप्त होकर भोक्ता रूप से धारण किया है । ‘सब कर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥’ जो श्याम रूप की सच्चिदानन्द कान्ति है उसे प्रकर्षरूपेण (गर्भभरालसत्वके कारण) गमन नहीं हो सकता ऐसी असूर्यम्पश्या महल निवासिनी (मन्दिर महाँ सब राजहि रानी) महारानी श्री कौशल्या जी ने अपने गर्भ में धारण किया “जा दिन ते हरि गर्भहि आये” “सो मम उर वासी यह उपहाँसी ।”

कौशल्याऽजनयद्रामंदिव्य विग्रह संयुतम् ॥ वा० रा०

ऐसा पूर्व से ही प्रसिद्ध है अतः

सच्चिदानन्द स्वरूप आप गर्भ से जन्म लेकर

शीघ्र ही निश्चय रूप से संसार के

खेद दूर करने वाले हों ॥२६॥

श्रुति बतला रही है कि ब्रह्म के चार रूप से तीन माताओं से अनायास प्रगट हो गये—

विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि गमन् ।

उरु क्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्निमर्द्दन्ति युवतयो जनित्री ॥ २७ ॥

ऋ० ३।५४।१४

स्तोमासः

अर्काः

यामनि

पुरुदस्मम्

विष्णुम्

भगस्य—

कारिणः इव

प्रार्थना करने वाले भगवदनन्य महान् लोग जो

सूर्य के समान तेजस्वी हैं वे

भक्तजनों को प्रेमामृत वितरण में तत्पर

बहुत से विघ्नों और दुष्टों को नाश करने में समर्थ

सर्वव्यापक श्री राम जी को

धन के निमित्त कार्यकर्ता—

कमाने वाले अर्थात् पुत्रों के समान

गमन् ।

यस्य क्रमः

उरु

(सः) ककुहः

युवतीवः जनायित्री

पूर्वी

न मर्द्धन्ति ।

प्राप्त किये । अर्थात् जहाँ कोई पुत्र भाव से, प्रेमा-
धिक्य के कारण वस्त्रालङ्कार आदि से भगवान् को
सजाता पूजता है, वहीं कोई दण्ड भय से शाशक के
समान भी । (आराधन का रूप एक है केवल भावना
में भेद है ।) जिसका पराक्रम-पाद विक्षेप

महान् है अर्थात् जिसने वामनावतार में त्रिलोकी का
आक्रमण किया—“जेहि किय जग तिहुँ पगहुँ ते
थोरा ।” वह सर्व दिग्व्यापी जब जन्म अवतार लेता है
तो उसकी युवती मातायें, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा
उसके जन्म लेने से पूर्व—

पीड़ा नहीं प्राप्त करतीं अर्थात् उन माताओं को गर्भ
धारण के नौ मास एवं प्रसव काल में किसी प्रकार
का कष्ट नहीं हुआ है ॥२७॥

(१३) स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारु विभृत ओषधीषु ।

चित्रः शिशुः परितमांस्यक्तून् प्रमातृभ्योऽधिकनिक्रदद्गाः ॥ २८ ॥

“अग्ने नयतीत्यग्निः” सर्व नियामक होने से ब्रह्म का नाम अग्नि है और
“यस्य अग्निः शरीरम्” इस श्रुति के अनुसार अग्नि ब्रह्म का शरीर है अतः इस
मन्त्र में अग्नि शब्द से ब्रह्म कहा गया है—

अग्ने !

हे परमात्मन् ! आप

रोदस्योः

पृथ्वी और आकाश के मध्य में अर्थात् आप से आप
हुये* न कि माता पिता के शोणित शुक्र रजवीर्य रूप
से परन्तु दिखाने के लिये

गर्भः जातः असि

कौशल्या के गर्भ से जायमान अर्थात् प्रकट हुये हो
अर्थात् अग्नि के दिये हुए चरुरूप ओषधि में

ओषधीषु

* ‘आपु प्रगट भये विधि न बनाये ।’

“इच्छामय नरबेष सँवारे । होइहौँ प्रगट निकेत तुम्हारे ॥”

विभृतः
कनिक्रदत् तमांस्यक्तून
प्र परि चारु
चित्रः शिशुः
मातृभ्यः
अधिगा ।

मन्त्र वेत्ताओं-बशिष्ठ ऋष्यशृङ्गादिकों से
आवाहन किये जाने पर तमो मोहमयी रात्रि को
प्रकर्ष रूप से नाश करने के लिये सुन्दर तथा
अनेक आश्चर्यमय अद्भुत बालक बनकर
कौशल्या, कैकेई एवं सुमित्रा ३ माताओं के गृह में चार
रूप से प्राप्त हुए । प्राप्त हुए ।

इस मन्त्र में दिखाया गया है कि यज्ञाग्निप्रदत्त चरु प्राशन मात्र से गर्भ
धारण करने से श्री रामादि चार रूप से परमात्मा का अवतार होना अलौकिक
जन्म हुआ ॥ २८ ॥

पूर्व मन्त्रोक्त चरु प्राशनानन्तर कार्य का स्पष्टीकरण इस मन्त्र में किया
जा रहा है—

(१४) विष्णुरित्था परमस्य विद्वान् जातो बृहन्नभियाति तृतीयम् ।

आसायदस्यपयोऽकृतं स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥ २९ ॥

(ऋ० १०।१।३)

इत्या विष्णुः
अस्य
परमम्
विद्वान् जातः
बृहन्
तृतीयम्

क्षीराब्धीश श्री मन्नारायण इस प्रकार
अग्नि प्रदत्त चरु रूप गर्भ से
मेघनादादि राक्षसों के वध रूप उत्कृष्ट कार्य को
जानकर (सुमित्रा के गर्भ से) जायमान हुए अर्थात्
विराट होते हुए भी
तीसरी माता सुमित्रा से प्रगट होकर तथा भाइयों में
तीसरे होकर अर्थात् राम और भरत से छोटे होकर
लक्ष्मण रूप से
शरीर धारण किये अर्थात् श्री लक्ष्मण जी अपने
इस विग्रह के भजन करने वालों को
अपने क्षीराब्धि वैकुण्ठ का वास
प्राप्त करा देते हैं । इसलिये बुद्धिमान लोग
इस लक्ष्मण रूप में भी श्रद्धापूर्वक

अभियाति
अस्य आसायत्
स्वम् पयः
अकृत । सचेतसः
अत्र

अभ्यर्चन्ति । नारायण (विष्णु) का पूजन करते हैं ।

इससे यह तात्पर्य निकला कि जितने भगवदवतार होते हैं उन सबका मुख्य प्रयोजन भक्तानुग्रहत्व ही है, दुष्ट निग्रह तो भक्तानुग्रह का शेष भूत होने से गौण है ॥ २६ ॥

शङ्का की जा सकती है कि मायिक संसार में जन्म लेने से वह परमात्मा भी संसार के दुःख सुख में लिप्त हो जाता होगा अर्थात् उसे भी माया अपने में फँसा लेती होगी, इसके समाधान में श्रुति बतलाती है कि—

य ई चकार न सो अस्य वेद य ई ददर्श हिरिगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३० ॥

(ऋ० १।१६।३२ अथर्व ६।१०।१० नि० २।८)

यः ईम्

चकार,

स अस्य

न वेद

यः ईम्

ददर्श

तस्मात्

नु हिरिक्

स मातुः योना-

अन्तः परिवीता

निर्ऋतिम् आ विवेश

बहु प्रजाः ।

जिस ब्रह्म ने इस सारे विश्व की रचना अपने मन से

(योग माया द्वारा) सङ्कल्प मात्र से किया है

वह परमात्मा इस संसार के वृद्धि विनाश जन्य दुःख

सुख की भावना को नहीं प्राप्त करता, और

जो परमात्मा इस सारे विश्व को सर्व प्रकारेण

देखता है अर्थात् सर्व साक्षी-सर्वद्रष्टा सर्वान्तर्यामी,

सर्वव्यापक है । तो भी वह उस सारे प्रपञ्च से

निश्चित रूपेण पृथक् है—निर्लिप्त है ।

वह परमात्मा माता के गर्भ के

मध्य में जरायु से वेष्टित होकर

पृथ्वी पर आया । वह यहाँ आकर कैसे रहा ! तो

बहुत बड़ी प्रजा—समस्त भूमण्डल का पालक होकर

रहा । “सप्त भूमि सागर मेखला एक भूप रघुपति

कौशला ।” ॥३०॥

(१५) अत उ त्वा पितु भृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।

ता ई प्रत्येषि पुनरन्य रूपा असि त्वं विदु मानुषीषु होता ॥३१॥

(ऋ. १०।१।४)

हे प्रभो आप जो चार रूप से अवतीर्ण हुए यह आपकी एक मात्र कृपा के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है—

अतः भूतः इसलिये सारे जगत के भरण करने वाले
पितु, जनित्री पिता और माता तथा
अन्नावृधम् त्वा पोषक रूप आपको सारे ज्ञानी लोग
अन्नैः प्रतिचरन्ति अन्नक्षीरादि पूजन सामग्रियों द्वारा* पूजते हैं ।
त्वम् आप माताओं के पूर्व जन्म के आराधन से प्रसन्न
होकर तीन माताओं से प्रगट होकर
पुनः पश्चात् उन्हीं माताओं को
अन्यरूपाः आराध्य मानकर पुत्र भाव से उनका
प्रत्येषि आराधन = सेवा करते हैं । क्योंकि
त्वम् मानुषीषु आप अपने चरित्रों द्वारा मनुष्य लोक की
विद्धु होता असि । प्रजाओं में यज्ञधर्मादि सदाचार के प्रवर्तक हैं

अन्य श्रुति भी कहती है कि—“धर्म मार्गं चरित्रेण०”

इस मन्त्र में यह बताया गया है कि भगवान् भी अवतार लेकर माता को देवतावत् मानते हैं अतः सबको “मातृदेवोभव” इस श्रुत्यनुसार माता को देवतावत् मानना चाहिये ॥ ३१ ॥

(१६) तिस्रोमातृस्त्रीन् पितृन् विभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेम वग्तापयन्ति ।
मंत्रयन्ते दिवो अमुष्यपृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥३२॥
(ऋ० १।६६४।१०, अथर्व ६।६।१०)

एकः तत्त्वतः एक होते हुए भी चार रूप से
तिस्रः कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा इन तीन नाम वाली
मातुः तीन माताओं से और

* हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यां उतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(शु० य० १३।४)

तृन्
पितृन्
विभ्रत्
ऊर्ध्वम्
तस्थौ
ईम्
न अवग्लापयन्ति
दिवः पृष्ठे
अमुष्य विश्व
विदम् वाचम्
मंत्रयन्ते
इन्वाम् अविश्वम् ।

जनयिता (दशरथ) उपनेता (बशिष्ठ) अध्येता
(विश्वामित्र) इन तीन पिताओं की आज्ञा
पालन करते हुये भी शोक आयासादि में लीन
न होकर अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप में
स्थित रहते हैं। चारों भाइयों के परमात्मा होने से ही
वे कौशल्यादि तीनों मातायें ।
प्रसववेदना से पीड़ित नहीं हुई ।
आकाश (अन्तरिक्ष) में स्थित होकर ब्रह्मादि देवगण
इस सर्वान्तर्यामी के
प्रतिपादन करने वाली वाणी (श्रौत मन्त्रों) का
विचार (मन्त्र द्वारा स्तुति) करते हैं । कि
आप विश्व से परे शक्ति वाले हैं ।

अर्थात् श्रौत मन्त्रों से उसकी प्रार्थना किया कि आप महाराज दशरथजी
की तीन रानियों के पुत्र रूप से अवतीर्ण हों । पुत्र शिष्य होने पर भी आपको
तृमातृकत्व एवं तृपितृकत्वादि बन्धनकारक नहीं हो सकता क्योंकि आप तो
विश्व के प्रपञ्च से अतीत हैं । (देखिये वा० रा० १।१६।१६-२६)

लक्ष्मण को शेष और भरत शत्रुघ्न को शंख चक्र किंवा तीनों भाइयों को
त्रिदेवों का अवतार माननेवालों को वेद मन्त्रों का विचार करना चाहिये ॥३२॥

(१७) चत्वारिते असुर्याणिनामाऽदाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।

त्वमंग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवन् चकर्थ ॥३३॥

(ऋ० १०।५४।४)

मघवन् !
ते महिषस्य
चत्वारि नामसन्ति

हे धनवान् ! लक्ष्मीपते-सीतानाथ श्री राम जी
आपके श्री रामावतार काल में परमबलशाली आपके
श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भेद से चार
नाम हैं । तथापि

अंग ! त्वम् येभिः

हे सर्वप्रिय प्रभो ! आपने भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न रूप में

असुर्याणि कर्माणि
चकर्थ

इन्द्र जिदूबध, लवणबधादि रूप जितने कर्म
किये अर्थात् उनके द्वारा जो गुण कर्मात्मक घन-
नादारि, लवणारि आदि नाम हुये

तानि अदाभ्यानि
विश्वानि त्वम्
वित्से ।

उन लोकोत्तर कर्म जन्य
सम्पूर्ण नामों को आप ही
प्राप्त करते हैं । अर्थात् भरतादि सब नाम आपही
के हैं ॥ ३३ ॥

जातः परेण धर्मणा यत्स वृद्धिः सहाभुवः ।

पितायत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धामाता मनुः कविः ॥ ३४ ॥

(साम० १।६।१०)

आ भुवः
अग्निः स
वृद्धिः सह
परेण धर्मणा
जातः । यत्
अग्नेः पिता
कश्यपः

अनेक जन्म लेने वाले
अग्नेनीयमान प्रथम पूज्य परमात्मा ने साथ रहनेवाले
श्री हनुमदादि दिव्य पार्षदों के साथ
पर-उत्कृष्ट धर्म के लिये ।
जन्म-अवतार लिया ।* जिस
अग्रणी पिता के पिता (दशरथ रूप में)
कश्यप हुये । [भाष्यकारों ने लिखा है कि यहाँ 'कश्य-
पस्यपिता अग्निः ।' में विभक्तिव्यत्यय है अतः "अग्नेः
पिताः कश्यपः ।" च्छेद करके अर्थ करना चाहिये ।]

*परम उत्कृष्ट = श्रेष्ठ धर्म शरणागत रक्षण ही परमात्मा श्री राम जी के
जन्म अवतार का मुख्य कारण है । जैसे कि वेदोपबृंहण रूप वाल्मीकीय
रामायण में श्री मुख की वाणी है कि—

“मित्र भावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।

दोषोयद्यपि तस्यस्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥”

“सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वं भूतेभ्यो ददाम्येतद्ब्रतं मम ॥”

तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे । धरौं देह नहिं आन निहोरे ॥

- मनुः जो स्वायम्भुवमनु थे, वही दूसरे जन्म में कश्यप और तीसरे जन्म में
- कविः सर्वशास्त्रज्ञ-बड़े शक्ति-शाली दशरथ हुये तब
- श्रद्धामाता । श्रद्धास्वरूपिणी शतरूपा, अदिति पुनः कौशल्या माता हुई । अर्थात् परमात्मा ने दशरथ कौशल्या से जन्म ग्रहण किया ॥ ३४ ॥

पुरान् भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्तावज्जी पुरुषुतः ॥३५॥

(साम० ४।१।८ = ६।६।७ ऋ० १।११।४)

- पुरान् भिन्दुः लंका आदि पुरियों के भेदन (नाश) करने वाले
- युवा नित्य एक रस तरुण “तरुणौरूप सम्पन्नौ चाप वाण धरौ युवा ।” (वा० रा०)
- कविः अमितौजाः सर्वज्ञ अत्यन्त बलशाली
- विश्वस्य कर्मणः धर्ता सम्पूर्ण कर्मों के पोषक-फल प्रदाता एवं
- वज्जी बज्रवत् तीक्ष्ण अमोघवज्रास्त्र नामक बाण तथा अनेक मणि धारण किये और
- पुरुषुतः देव ऋषि मनुष्यादि सबसे स्तूयमान होते हुए
- इन्द्रः परमैश्वर्य मान् श्री रामजी ने
- अजायत । जन्म ग्रहण किया और जन्म ग्रहण करते ही माता से अपने लिये कार्य पूछा (जैसा कि अगले मन्त्र से स्पष्ट है) ॥ ३५ ॥

आवुन्दं वृत्रहाददे जातः पृच्छद्वि मातरम् । क उग्राः के हाश्रृणिवरे ॥३६॥

(ऋ० ८।४५।४ साम २।११।३)

- वृत्रहा धर्म की मर्यादा धारण करने वाले राक्षसों के नाश-कर्ता श्रीराम जी ने जन्म लेते ही
- मातरम् आ पृच्छत् माता से अच्छी तरह पूछा कि

के उग्राः कौन बलवान राक्षस घोर उद्गड हो गया है ।
 के वि ह राक्षसों में किसके अत्याचार की विशेष प्रसिद्धि
 अश्रुण्वरे अधिक सुन पड़ती है । मैं उन दुष्टों को मारने के लिये
 बुन्दम् आददे । बुन्द नामक बाण धारण किये हूँ ।
 निज आयुध भुज धारी ॥ ३६ ॥

(२२) महौ ऋषिर्देवजो देवजूतो अस्तभ्रात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
 विश्वामित्रो यदवहत्सु दासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥ ३७ ॥

ऋ० ३।५३।६

देवजूतः इन्द्रादि देवताओं के प्रेरक (स्वामी)
 नृचक्षाः इन्द्रियों के प्रकाशक (स्वामी)
 देवजः सूर्य वंशोद्भव श्री राम जी
 सिन्धुः अर्णवम् उत्ताल तरङ्गों वाले समुद्र को
 अस्तभ्रात् स्तम्भित कर देंगे अर्थात् समुद्र पर पर्वतों से पुल
 बाँध देंगे, ऐसा जानकर

महान् ऋषिः विश्वामित्रः अत्यन्त तेजस्वी महर्षिविश्वामित्र जी ने

सुदासम् राजा सुदास के कुल में प्रगट हुये श्रीरामजी को अपनी
 यज्ञ रक्षा के लिये

अवहत् यज्ञ स्थान पर ले जाने के लिये दशरथ जी से
 याचना किया यह देखकर विश्वामित्र पर

इन्द्रः देवराज इन्द्र बहुत प्रसन्न हुये कि अब

कुशिकेभ्यः महर्षि विश्वामित्र जी की यज्ञ में

अप्रियायत् । निर्विघ्न रूप से सोमपान और यज्ञीयहवि भक्षण करने
 को मिलेगी ॥ ३७ ॥

यज्ञ रक्षार्थ श्री राम जी जब महर्षि श्री विश्वामित्र के साथ जाने के लिये
 तैयार होकर माता जी से विदा माँगने गये तब माता कौशल्या जी ने विदा
 देते हुये जो आशीर्वाद दिया उसी को श्रुति कहती है कि—

आदीं शवस्यब्रवीदौर्णावाभमहीशुवम् । ते पुत्र सन्तु निष्ठुरः ॥ ३८ ॥

ऋ० ८।७७।२

शवसि
महीशुवम्
आदीन्
अब्रवीत्
और्णावाभ !
पुत्र ! ते निष्ठुरः
सन्तु ।

श्री राम जी के बल, बुद्धि के लिये और
सर्वत्र पूजनीय-प्रशंशनीय होने के लिये
अत्यन्त हर्ष से पूरित हृदय होकर माता जी ने
कहा—आशीर्वाद दिया कि
मकड़ी के जाले की तरह अखिल ब्रह्माण्डोत्पादक
हे पुत्र तुम्हारा (बल, वीर्य, यश) चिरस्थायी
होवे । अथवा ताड़का, मारीच, सुबाहु आदि सम्पूर्ण
शत्रुओं के सामने तुम्हारा अङ्ग प्रत्यङ्ग निष्ठुर (कठोर)
अर्थात् अत्यन्त सुदृढ़-अचल रहे ॥ ३८ ॥

श्री रामजी दोनों भाइयों को साथ लेकर जब महर्षि विश्वामित्र जी अपने
आश्रम के समीप पहुँचे तो दूर से ताटिका को देखकर श्रीराम जी से बोले कि—

(२४) परादेहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।

कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशती पतिम् ॥ ३९ ॥

(ऋ० १०।८५।२६ अथर्व १४, १, २५।)

शामुल्यम्
परोदेहि
ब्रह्मभ्यः वसु
विभज ।

परम अमङ्गल रूपा इस ताटिका राक्षसी को शीघ्र ही
दूर से ही वाण से मार डालिये तथा इस स्त्री हत्या
जन्य पाप के प्रायश्चित्त स्वरूप पाप नाश के लिये
ब्राह्मणों को धन
दान दीजिये । इसको अवश्य मार डालिये क्योंकि
जिस तरह

जायाभूत्वा
पतिं विशती
एष कृत्या (पतिम्)
पद्वती (आयाति) ।

स्त्री, पत्नी (सहधर्मिणी) होकर निःशंक रूप से
पति के घर में जाती है । उसी तरह
यह (दुष्टा ताटिका) राक्षसी निशंक रूप से (सिद्धा-
श्रम के) कुलपति के यज्ञस्थल में
पैदल ही यज्ञ विध्वंस करने आती है ॥ ३९ ॥

(२५) उपप्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्रमुञ्चता सुदासः ।

राजा वृत्रं जङ्घनत् प्रागपागुदगथायजाते वर आ पृथिव्याः ॥४०॥

(ऋ० ३।५३।११, नि० ७।२)

सुदासः राजा

सुदास वंशी राजा श्री रामचन्द्र जी ने ताटिका को मार डालने के बाद

प्राग् अपाग्, उदक्
वृत्रम्

यज्ञ स्थान के सब दिशाओं में स्थित
विघ्न करनेवाले असुर गण सुबाहु आदि को

जङ्घनत् । अथ

मार डाला । इसके पश्चात्

पृथिव्याः वर

पृथ्वी के श्रेष्ठ स्थान उस यज्ञस्थल पर

आयजाते

जाकर ऋषियों से कहा कि

(भोः) कुशिकाः !

हे विश्वामित्र के आश्रमवासी ऋषियों ?

आ उपप्रेत

सब तरफ से एकत्र होकर आप सब कोई अब

चेतयध्वम् राये

सावधान हो जाइये और कर्म समृद्धि के लिये

अश्वम्

यज्ञ के विशेष (प्रधान कार्य को)

आ प्रमुञ्चत् ।

अञ्जो प्रकार (सब तरह से) सम्पन्न कीजिये ॥४०॥

(२३) पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परिपातो अध्वरम् ।

विश्वान्यन्येभुवनाभिचष्ट ऋतूरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥४१॥

(तै० ब्रा० ७, २, १२, २ । ऋ० १०, ८५, १८ । अथर्व ७, ८१, १

१२, २, ११। १४, १, १)

मायया एतौ

लीला से बालक रूप में प्राप्त, ये दोनों

शिशू

बालक राम लक्ष्मण जी ने

पूर्वापरम्

(विश्वामित्र जी के आश्रम पर जाकर) आगे पीछे

चरतः क्रीडन्तौ

चलते हुए खेलते खेलते

अध्वरम् परिपातः ।

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा किया उन दोनों में

अन्यः विश्वानि

एक (श्रीराम जी अंशी अथच अवतारी होने के

कारण) सम्पूर्ण

भुवनानि अभिचष्ट
अन्यः

संसार को = सारे ब्रह्माण्ड को निःशेष रूप से देखते
दूसरे (श्री लक्ष्मण जी प्रोढ़श कलात्मक शेषशायी
नारायण होने के कारण

ऋतून्
विदधत्
पुनः जायते ।

समय-सखण्डकाल का
विधान करके, ब्रह्माण्ड की रचना करके
शेषशायी रूप से बारम्बार अवतीर्ण होते हैं ॥४१॥

जब यज्ञ का सभी कार्य सम्पादन होकर अग्निदेव ऋषियों की दी हुई
आहुति से पूर्ण सन्तुष्ट हो गये तब श्रीराम जी की स्तुति करने लगे कि—

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टुवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥ ४२ ॥

(ऋ० ३।५३।१२)

अहम् इन्द्रम्
अतुष्टुवम् । यः
इमे उभे
रोदसी
यः विश्वामित्रस्य
ब्रह्म, इदम् भारतम्
जनम् रक्षति ।

मैं (अग्निदेव) परमैश्वर्यमान् श्रीराम जी की
स्तुति करता हूँ । जो श्रीराम जी
इन दोनों
अन्तरिक्षों (पृथ्वी, स्वर्ग) की सदा रक्षा करते हैं ।
जो श्रीराम जी विश्वामित्र जी के
यज्ञ की और इस यज्ञभूमि भारतवर्ष की तथा
अपने जन (भक्त) की नानावतार लेकर सदा ही
रक्षा करते हैं ।

पृथ्वी मण्डल पर परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् आविर्भाव भारतवर्ष में
ही होता है अन्यत्र नहीं, कारण कि ब्रह्म का एक नाम 'यज्ञ पुरुष' भी है
और भारतवर्ष में ही वैदिक विधि से यज्ञ होता आया है । भारतेतर देशों में
भी वैदिक विधि से यज्ञ होने लगे तो अन्य देशों में भी ब्रह्म का साक्षात् अव-
तार होने लगे ॥ ४२ ॥

निर्विघ्न यज्ञ समाप्त हो जाने पर कृपा करके—

(२६) विश्वामित्रा अदासत ब्रह्मेन्द्राय बज्रिणे ।

अकरदिन्नः सुराधसः ॥ ४३ ॥ (ऋ० ३।५३।१३)

विश्वामित्राः

बज्रिणे

इन्द्राय

ब्रह्म अदासत्

इत् नः

सुराधसः अकरत् ।

कौशिकादि महर्षियों ने

महामणि (बहुमूल्य हीरा रत्नादि) धारण करनेवाले
परमैश्वर्यशाली श्रीरामजी को

अत्यन्त महती (बला अतिबला) विद्या दिया और
कहा कि यही बला अतिबला विद्या हमलोगों को

सर्वोत्तम सिद्धि प्रदान करती है ॥ ४३ ॥

श्री राम लक्ष्मण को विश्वामित्र जी ने बला अतिबला विद्या देकर बला
विद्या के अधिष्ठातृ देव से प्रार्थना किया कि—

(२७) बलं धेहितनूषनो बलमिद्रानुलुत्सुनः ।

बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ ४४ ॥

ऋ० ३।५३।१८ ॥

नः तोकाय

तनयाय तनूषनः

बलम् धेहि

बलमन्द्र

बलम्

अनुलुत्सु ।

जीवसे

बलदा असि ।

हमारे, इस बालक

पुत्र (शिष्य) राम के लिये शारीरिक

बल (पुष्टि ओज कान्ति) दीजिये । जिससे कि

आप ऐसी बला विद्या रूप ऐश्वर्य को पा कर यह

शारीरिक और मानसिक बल पाकर

अपनी शरीर यात्रा सानन्द चला सकें ।

आप सब को ही जीवनदायक और

सब प्रकार बल दायक हैं ॥ ४४ ॥

इस मन्त्र में अतिबला विद्या के अधिष्ठातृ देव परमात्मा से मानसिक इष्ट
सिद्धि के लिये प्रार्थना की गई है कि—

(२८) इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मिषवन् शूर जिव्व ।

योनोद्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमुद्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ ४५ ॥

ऋ० ३।५३।२१

इन्द्र !

हे सर्वैश्वर्य परिपूर्ण परमात्मन् !

यात श्रेष्ठाभिः बहुलाभिः गमन करने वालों (ब्रह्मादिकों) की अनेक प्रकार की

ऊतीभिः नः अद्य
जिन्व ।

मघवन् ! शूर !

यः नः द्वेष्टि सः

अधरः पदीष्ठ

यम् उ द्विष्मः

तम् उ प्राणः

जहातु ।

विभूतियों (ऐश्वर्यों) से हमें आज (सदैव के लिये)
परिपूर्ण कर दीजिये ।

हे लक्ष्मीपते ! हे विश्वविजयिन् !

जो कोई हमसे द्वेष करता हो वह

नीचा देखता हुआ पतन को प्राप्त हो । और

जिस दुख देने वाले से निश्चय रूप से हम द्वेष करें

उसको भी निश्चय रूप से उसके प्राण

त्याग दें, अर्थात् उसका भी विनाश हो जाये ॥४५॥

इस प्रकार बला अतिबला विद्या प्राप्त करके श्रीराम जी ने गौतमाश्रम पर जाकर जब अहल्योद्धार किया तब गौतम महर्षि ने इस प्रकार से श्रीराम जी की स्तुति किया कि—

(२६) अरं दासो न मीढुषे कराण्यहं देवाय भूर्णये अनागाः ।

अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुताति ॥४६॥

(ऋ० ७।८६।७)

अहम् मीढुषे
भूर्णये देवाय
दासः न (इव)
अरम् (अलं)
कराणि ।

मैं (गौतम) भार्या प्रदान करने के कारण
बहुत प्रकार के मनोरथ-वर्षा करनेवाले श्रीराम जी का
दास हूँ अतएव दास के समान मैं श्रीराम जी को
दिव्य गन्ध पुष्पादि से अलंकृत
करता हूँ । (आप क्षत्रिय कुल में अवतीर्ण होने के
कारण जो मेरी पत्नी-ब्राह्मणी को चरण स्पर्श हो जाने
के कारण संकुचित हैं तो इसमें आपको संकुचित न
होना चाहिए क्योंकि)

अर्यः
देवः
अनागाः
अचितः

आप सर्वस्वामी एवं
द्योतमान होने के कारण
निर्दोष हैं । आपने तो कृपा करके
चेतना रहित पाषाण भूता मेरी पत्नी को

अचेतयत् । गृत्सम्

चेतन कर दिया, आपके चरण-रज स्पर्श से यह असती पवित्र हो गई अतः मैं पुनः इस जीवित हुई पत्नी को

कवितरः

क्रान्तिदर्शियों में श्रेष्ठ ऋषियों के उत्तम

राये

कर्म वृद्धयर्थ ग्रहण करता हूँ अब यह मेरा

जुनाति ।

अनुसरण कर (सक)ती है ॥ ४६ ॥

श्री राम जी चारो भाई जनक पुर में थे उस समय शिव धनुष से पराजित दुष्ट राजा लोग मिल कर श्री राम जी से लड़ने की दुर्मन्त्रणा करने लगे तब श्री राम जी के दिव्य रथ एवं दिव्य शास्त्रास्त्रों को उपस्थित देख कर जनक जी ने उन दुष्ट राजाओं से कहा कि मैंने शिव-धनुष चढ़ाने वाले को कन्या देने की प्रतिज्ञा की थी सो आप लोगों के—

(३०) बलं विज्ञायः स्थाविरः प्रवीरः सहस्वान वाजी सहमान उग्रः ।

अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥४७॥

तै० सं० ४।६।४०२ ऋ० १०। १०३।५, साम २१।१।५ शु० य० १७।३७, अथर्व १६।३।५

बलम् विज्ञायः

बल की परीक्षा तो हो चुकी, राजकुमार राम बालक होते हुये भी बल, विद्या, बुद्धि आदि में तुम सबसे वृद्ध हैं, शरीर से बड़े बली और फुर्तीले तो हैं ही इनका मानसिक बल भी बहुत बड़ा है । अतएव शत्रु सैन्य विमर्दित करने में सर्वथा समर्थ एवं परम प्रचण्ड वीर हैं और इस समय तो

स्थाविरः प्रवीरः वाजः

महावीर भरतादि भाइयों से परिवृत (घिरे) होने से (लौकिक दृष्टि से भी सर्व प्रकारेण बलवान् हैं और ये श्री राम जी

सहस्वान्

सहमानः

उग्रः

अभिवीरः

अभिसत्वा

सहोजाः

मन के सङ्कल्प मात्र से ही प्रगट हुये हैं अर्थात् कर्म जे जाय मान नहीं हैं इस प्रकार युद्धोद्यत राजाओं को समझा कर श्री राम जी से प्रार्थना करने लगे कि—

इन्द्र !

जैत्रं, रथं अतिष्ठ

गोवित ।

हे सर्वैश्वर्य सम्पन्न प्रभो ! अब आप अपने

विजयप्रापक दिव्यरथ पर बैठिये ।

आप तो इन रात्रों के भी राजा हैं ॥ ४७ ॥

जनकजी के समझाने पर भी वे लोग (दुष्ट राजागण) कुछ शान्त नहीं हुये तब देवताओं ने उन राजाओं से कहा कि—

(३५) गोत्राभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।

इमं स जाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥ ४७ ॥

(ऋ० १०।१०३।६)

गोत्र-भिदम्

पर्वत के समान कठोर एवं विशाल शिवधनुष के भेदन करने—तोड़ने वाले

गोविदं; वज्रबाहुम्

इन्द्रिय विजयी, वज्रवत् सुपुष्ट एवं विशाल बाहु वाले और

जयन्तम्

सर्व विजयी श्रीराम जी को तुम लोग किस तरह जीत सकते हो, जिन श्रीराम जी ने

ओजसा प्रमृणन्तम्

अपने बल पराक्रम से शिवधनुष को मर्दन-भंग करके प्रतिज्ञारूपी दाँव पर लगी हुई सीतारूपी धन को प्राप्त किया अब श्री सीता जी श्रीराम जी की स्वकीया सम्पत्ति हैं, अतएव

(भोः) सजाताः !

हे समान कुलशीलवाले राजाओं या भाइयो !

इमम्, अनु

इस बात को अच्छी तरह सोच समझकर तत्पश्चात् श्री रामजी के साथ पराक्रम करने—लोहा लेने का संकल्प करो क्योंकि तुम लोग किसी तरह भी श्रीराम जी को जीत नहीं सकते अतएव

वीरयध्वम्

सखायः, अनुसंरभध्वम् । मित्र भाव से श्रीराम जी का अनुगमन करो आदर करो यही तुम्हें उचित है ॥ ४८ ॥

एक बार रावण ने ऋषियों से राज्य कर के रूप में उनका रक्त लिया । रक्त घट देकर ऋषियों ने कहा कि इस घट का रक्त रावण का नाशक होगा ।

रावण ने उसे तीव्र विष कहकर घर में रख दिया। कुछ दिन के बाद रावण तो देवलोक जाकर अनेक सुर सुन्दरियों का अपहरण करके सुमेरु पर्वत पर विहार करने लगा, कई वर्ष तक लङ्का नहीं गया। जब मन्दोदरी से पति-विरह नहीं सहन हो सका तब विष खाने के निश्चय से ऋषि रक्त-घट को खोलकर देखा तो वह रक्त सूखकर घट के पेंदे में काला सा जम गया था। उसका विष समझकर मन्दोदरी ने खा लिया जिससे उसे गर्भ रह गया गर्भ जानकर मन्दोदरी ने पता लगाकर रावण के पास जाकर सब हाल कह दिया तब रावण ने बतलाया कि वह विष नहीं अपितु ऋषियों का श्रापित रक्त था। अस्तु—वहीं मन्दोदरी को कन्या पैदा हुई तब ज्योतिषियों ने बतलाया कि यह कन्या कुलोच्छेदिका होगी। तब रावण ने उसे अपने शत्रु विदेह जनक के राज्य में गुप्त रूप से भेजकर जमीन में गड़वा दिया। उसी कन्या में जनक के यज्ञ में लाङ्गल लगने से श्री सीता जी प्रगट हुई। (विस्तार के लिये देखिये भविष्य पुराण, अद्भुत रामायण। इसी कथा का संकेत श्रुति कर रही है कि—

(३२) पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन् दमयारेतः संजग्मानो निषिंचत्।

स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्मदेवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥४६॥

(ऋ० १०।६।७)

पिता	(मन्दोदरी के पति होने के कारण उस कन्या के)
यत् स्वाम् दुहितरम्	पिता रावण ने
अधिष्कन्	जिस समय अपनी उस कन्या को
दमया संजग्मानः	बहुत दूर छोड़वा दिया (कहाँ ? तो श्रुति बतलाती है)
रेतः निषिंचत्	पृथ्वी को खोदवाकर (सद्योजाता)
स्वाध्यः	अवीवीर्यजा कन्या को गड़वा दिया। तो भी
देवाः	सपरिवार रावण बध के द्वारा जगत के सु कल्याण का
ब्रह्म	ध्यान करने वाले अन्तरिक्ष निवासी तथा
	इन्द्रादि देवगण उस कन्या रूपी
	परब्रह्म को अर्थात् परब्रह्म के उस चिद्बनानन्दमय
	कन्या शरीर की पृथ्वी में गड़ी होने पर भी रक्षा की

वास्तोष्पतिम्

व्रतपाम्

निरतक्षन् ।

(वहीं पर) स्थानाधिष्ठाता गृहपति एवं

व्रत पति (व्रत परिपालक) यजमान् जनक के उद्देश्य से ऋषियों ने जब वह स्थान स्वर्ण-हल से

जोतवाया तब वह कन्या मिली ॥ ४६ ॥

इस प्रकार से अविर्भूत होने वाली उस कन्या (श्री सीताजी) की स्तुति देवता लोग करने लगे—

(३३) अर्वाची सुभगे ! भव सीते ! बन्दामहेत्वा ।

यथा नः सुभगाऽससि यथा नः सुफला अससि ॥ ५० ॥

(ऋ० ४।५७।६ अथर्व ३।१७।८ तै० आ० ६।६।२)

सुभगे ! सीते !

त्वाम्

बन्दामहे । नः

यथा

अर्वाची भव ।

सुभगा अससि

सुफला अससि ।

हे सब को कल्याण देनेवाली । श्री सीताजी !

सम्पूर्ण राक्षसों का अन्त करने वाली आपकी

हम लोग बन्दना करते हैं । हम लोगों का

जैसे (कल्याण हो वैसा करने के लिये)

अनुकूल हो जाइये । आप तो

अपने जनो को ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हैं और

भक्तों को दीप्तिमान् करने वाली हैं ॥ ५० ॥

लोकप होहिं विलोकत तोरे । तोहिं सेवहिं सब सिधि कर जोरे ॥

देवताओं के स्तुति, पूजन कर लेने के बाद मनुष्यों तथा ऋषियों ने प्रार्थना किया कि—

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वेदेवैरनुमता मरुद्भिः ।

सा नः सीते ! पयसाभ्यववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत्पिन्वमाना ॥ ५१ ॥

(अथर्व० ३।१७।६)

विश्वेदेवैः मरुद्भिः

सीता घृतेन मधुना

सम् अक्ता

अनुमता । सीते !

विश्वे देवताओं और मरुतों के द्वारा

श्री सीताजी धी और शहद से

भली प्रकार आक्त की गई अर्थात् पूजी गई । तथा स्तूयमान हुई । हे श्री सीता जी

सा वही (देवताओं से पूजित) आप
धृतवत् पितृमाना धी आदियज्ञीय उपकरणों से परिपुष्ट की गई ।
ऊर्जस्वती । नः अतः आप परम तेजवाली हैं । कृपा करके हमें
पयसा पय (लोक परलोक) के समस्त सुखों से ।
अभि, अववृत्स्व । सर्वथा परिपूर्ण कीजिये ॥ ५१ ॥

देवताओं तथा ऋषियों के इस प्रकार से स्तुति करने के बाद पुरोहितों ने
सीरध्वज जनक द्वारा श्री सीता जी का हस्त कमल श्री रामजी के कर कमलों
में समर्पित कराते हुए यह मन्त्र पढ़ा—

(३४) इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानुयच्छतु ।

सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समम् ॥५२॥

(ऋ० ४।५।७।७ अथर्व ३।१७।४)

*इन्द्रः सीताम्	परमैश्वर्य सम्पन्न पर ब्रह्म श्रीराम जी श्री सीता जी को
निगृह्णातु	ग्रहण करें । और सीता जी को पुत्री रूप से
पूषा	पोषण-पालन करने वाले पोषक जनक जी
ताम्	उन सीता जी को (श्री रामजी के कर कमल में)
अनुयच्छतु	कन्यादान रूप में देवें । किसी की कन्या न होते हुये
	भी जो अयोनिजा सीता जी कन्या-दान रूपमें दी गई
सा नः	वह सीता जी हम लोगों को
उत्तरामुत्तराम् समम्	दिनों-दिन प्रतिवर्ष
दुहाम्	कामधेनुवत् पृथ्वी को
पयस्वती ।	सर्व काम-प्रद करके बहुत अन्न देने वाली करें ॥५२॥

इस प्रकार ऋषियों के मन्त्र पढ़ने पश्चात् विवाह मण्डप में श्री रामजी के
हाथ में सीता जी को समर्पण करके जनक जी ने रामजी से कहा कि—

*इन्द्र पत्नीमुपह्वये सीतां, सा मे त्वन्नपायिनी भूयात् ।

(पारस्कर गृहसूत्र २।१७।६)

(३६) सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।

सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं विपरेतन ॥ ५३ ॥

(ऋ० १०।८५।३३ अथर्व १४।२।२८)

इयम्	यह मेरी कन्या
सुमङ्गलीः	सर्व मंगलमय कल्याण गुण युक्ता है ।
इमाम् वधूः	इसको पत्नी रूप से
पश्यत् ।	देखिये अर्थात् स्वीकार कीजिये ।
अस्यै सौभाग्यम्	इस मेरी कन्या को सब प्रकार का सुख
दत्वाय अथ	दीजियेगा । अब (मेरी कन्या का पाणिग्रहण) करके
अस्तं विपरेतन ।	अपने घर (अयोध्या) जाइये ॥ ५३ ॥

जनक जी के ऐसा कहने पर श्री राम जी ने श्री सीता जी का पाणिग्रहण करते हुये जो प्रतिज्ञा किया उसे श्रुति बता रही है । श्री राम जी ने कहा कि—

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता ते हस्तमग्रहीत् ।

पत्नीत्वमसिधर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५४ ॥ अथर्व १४।१।५१॥

भगः	समस्त कल्याण गुण गण विशिष्ट सर्वैश्वर्यशाली
ते हस्तम्	(ब्रह्म मैंने) तुम्हारा हाथ
अग्रहीत	पकड़ा (पाणिग्रहण किया)
सविता	सर्व चराचरोत्पादक जगत् के आदि करण ब्रह्म
हस्तमग्रहीत्	अर्थात् मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया ।
त्वम् पत्नी असि	तुम (लोक दृष्टि में) आज से मेरी धर्मपत्नी हो और
अहम् धर्मणा	मैं (लोक दृष्टि से) आज से धर्म पूर्वक
तव गृहपतिः ।	तुम्हारा पति भर्ता हूँ ॥ ५४ ॥

स्मरण रखना चाहिये कि श्री राम जी अपना ब्रह्मत्व-ऐश्वर्य सबसे छिपा सकते हैं परन्तु श्री सीता जी से नहीं छिपा सकते, कारण कि श्री सीता राम जी दोनों दो नहीं हैं, श्री सीता जी तो सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की चिदानन्दात्मिका परमात्मादिनी शक्ति ही हैं ! इसी से श्री राम जी ने अपने मुख से

अपने को 'भगः' और 'सविता' कहा है। 'भगः' का अर्थ सर्वकल्याण गुण गण विशिष्ट होता है। यथा—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।

ज्ञानबैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ वि० पु० ६, ५, ७४

भगैस्तु कल्याणगुणैः सर्वं सर्वत्र गच्छति ।

यश्चासौ स भगः प्रोक्तः षडर्णः सुखदायकः ॥

(भगवद्गुणदर्पणभाष्य निरु ४४

'सविता' का अर्थ सर्वोत्पादक-सर्वकारण होता है। यथा—

साक्षात् जनयिता योऽसौ सर्वस्य सवितास्मृतः ।

(भगवद्गुण दर्पण भाष्य निरु० ६६६)

और सर्व साधारण से अपना ऐश्वर्य छिपाने के लिये ही 'भगः अग्रहीत्' 'सविता अग्रहीत्' शब्द कहा है ॥ ५४ ॥

(३७) गृम्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मयापत्या जरदष्टिर्यथासः ।

भगोऽर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वाऽदुर्गार्हपत्यायदेवाः ॥ ५५ ॥

ऋ० १०।८५।३६, अथर्व १४।१।५०

गार्हपत्याय भगः	गृहस्थ धर्म पालन करने के लिये ऐश्वर्यशाली भग,
सविता पुरन्धिः	सर्वद्रष्टा सूर्य; दैत्यपुर पुर भेदक देवेन्द्रादि;
देवाः त्वा मह्यम्	देवताओं ने तुमको मेरे लिये
अदुः ते हस्तम्	दिया है। अतएव मैं तुम्हारा कर कमल
गृम्णामि	ग्रहण करता हूँ अर्थात् मैं तुम्हें सहधर्मिणी रूप से स्वीकार करता हूँ।

पाणि ग्रहण के बाद जनक ने कन्या को आशीर्वाद देते हुये कहा—

सौभगत्वाय	तुम्हारा अचल सौभाग्य हो इसलिये
मया अदुः	मेरे द्वारा श्री राम जी के हाथों में दी गई हो। तुम्हें मेरा आशीर्वाद है कि
पत्या जरदष्टिः	पति के साथ (सुख पूर्वक अनन्त काल तक) सुखैश्वर्य वृद्धि को प्राप्त करती हुई

यथा आसः

जैसे तुम्हारी दीप्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाय वैसा कर्म करती रहो ॥ ५५ ॥

जब श्री राम जी जनक पुर से बारात के सहित श्री अयोध्या जी लौटने लगे तब रास्ते में एक दिन जहाँ पड़ाव पड़ा, वहाँ देखा कि जिन्होंने—

अपिवत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्र बाह्वे । अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥५६॥

ऋ० ८।४५।२६ साम २।२।७

सहस्रबाह्वे

कद्रुवः सुतम्

अपिवत्

इन्द्रः

पौंस्यम्

आ अत्र देदिष्ट ।

हजार भुजा वाले हैहय नरेश अर्जुन के लिये

शरीर रूप कामना के ऊँचे वृक्ष से उत्पन्न क्रोध को धारण किया था अर्थात् जिन्होंने अत्यन्त क्रोध करके कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का नाश किया था, वे ही परमैश्वर्यमान्

पुरुषावतार विष्णु के अंशावतार परशुराम जी

इस समय यहाँ पर प्रकाशित हो रहे हैं आ गये हैं ॥

प्रोवाच रामो भार्गवेयो विश्वन्तराय ॥५७॥ (ऐ० ब्रा० ७।२७।३४)

विश्वन्तराय

भार्गवेयः

रामः

प्रोवाच !

विश्व में बाधा पहुँचाने के लिये

(तीव्र क्रोध में होकर) भृगुकुलोत्पन्न

परशुराम जी ने जब श्रीराम जी से

वाद विवाद किया कि शिव धनुष क्यों तोड़ा ? ५७

तब श्री राम जी ने बतलाया कि—

अहं रुद्राया धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उ ॥ ५८ ॥

(अथर्व ४, ३०, ५ । ऋ० १०, १२५, ६)

अहम्

ब्रह्मद्विषे शरवे

हन्त वा उ रुद्राया

धनुः आतनोमि ।

मैं साकेताधीश राम ही (प्रत्येक कल्प में)

ब्राह्मण, वेद, ईश्वर से द्वेष करने वाले राक्षसों के

विनाश के लिये (रामावतार धारण करके) शिवके

धनुष (पिनाक) को भंग करने वाला होता हूँ ॥५८॥

इसी तथ्य को दूसरी श्रुति बतलाती है कि—

धनुर्ज्यामच्छिनत्स्वयम् । आङ्गिरसा सामभिः स्तूयमानः ॥ ५६ ॥

(तै० ब्रा० १५।१)

स्वयम् ज्याम्
धनुः अच्छिनत्

प्रत्येक कल्प में स्वयं परब्रह्म श्री रामजी ही प्रत्यक्षा
सम्पन्न शिव धनुष पिनाक को तोड़ते हैं ।

परशुराम के हारकर श्रीराम जी की स्तुति करने पर श्रीराम जी—

आङ्गिरसम्

अङ्गिरा आदि ऋषियों के द्वारा

सामभिः स्तूयमानः ।

साम गायन से स्तुति किये गये ॥ ५६ ॥

जब परशुराम जी ने रामजी को परब्रह्म जान लिया तब वे श्रीराम भद्र
जू की स्तुति करने लगे । उस समय नरावतार की मर्यादा पालन करते हुए
श्री लक्ष्मण जी ने परशुराम जी से कहा कि—

रामोऽहं अचितीय तव धर्मपथायुषोऽपिममानः ।

तस्मादेनसो देवरीरिष ॥ ६० ॥ (ऐ० ब्रा०)

अहं रामः (च)

मैं (लक्ष्मण) ने और श्री रामजी ने

अपि अचितीय

भी आपके वीर वाने के धोखे से आपको वीर

तव धर्मपथायुषः

समझ, आपके धर्म मार्ग का यदि कोई कटुवचन से

ममानः; देव !

उल्लङ्घन कर दिया हो तो हे ब्रह्मर्षिवर हमें

तस्मात् एनसः रीरिषः ।

उस अपराध से बचाइये ॥ ६० ॥

परशुरामजी के हारकर बन लौट जाने पर अधर स्थित देवतालोग श्रीराम
जी की स्तुति करते हुए परस्पर कहने लगे कि—

(३८) अयं स्तुतो राजा बन्दि वेधा अपश्च विप्रं तरति स्वसेतुः ।

स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्चतो रघुद्रुः ॥ ६१ ॥

(ऋ० १०।६१।१६)

अयम् राजा

ये श्री रामभद्र जी सबके राजा स्वामी ।

स्तुतः बन्दि च

सबके स्तुत्य पूज्य और देवताओं से भी वन्दनीय हैं

वेधा स्व सेतुः

ये सारे जगत के रचयिता हैं और स्वयं पर्वतों से पुल

अपः तरति ।

बँधाकर समुद्र को अनायास पार कर जायेंगे ।

विप्रम्, तरति

ये ब्राह्मण परशुराम को जीतकर संग्राम सिन्धु से तो पार हो ही गये हैं। और ब्राह्मण की प्रतिद्वन्दिता में क्षत्रिय को शस्त्रास्त्र न लेना चाहिये

स्व सेतुः तरति

अपनी इस मर्यादा की भी, रक्षा कर लिये अर्थात् बिना शस्त्रास्त्र ग्रहण किये ही परशुराम जी को जीता

सः राजा

उन्हीं सर्व नियामक राजा श्रीराम जी ने ही जो कि मनुरूप में दशरथ जी को समुद्र विजयी पुत्र होने का वरदान दिया था। उन्हीं राजा श्री रामजी ने

कक्षीवन्तम् अग्निम्

उन दशरथ जी के पास अग्नि को चरुरूप से

रेजयत्, नेमिम्

प्रेरित किया था, जैसे कि उत्तमनेमि—पहिये की हाल

चक्रम् अर्वत् :

युक्त पहिया को और अच्छी सड़क पाकर अच्छे घोड़े

न (इव) रघुद्रुः ।

शीघ्रगामी होते हैं, वैसे ही आपको प्राप्त करके दश-

रथ आदि शीघ्र ही अनायासेन संसार यात्रा पूरी

करके आपके दिव्य धाम को प्राप्त करेंगे। ॥६१॥

(३६) स द्विबन्धुवैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।

स यन्मित्रावरुणावृंज उक्थैर्जष्टेभिर्यमरां बरूथैः ॥६२॥

(ऋ० १०।६१।१७)

सः राजा

वे राजा श्रीरामजी (बशिष्ठ और विश्वामित्र रूप)

द्वि बन्धुः

दो हितैषियों से युक्त हैं अर्थात् वे दोनों परस्पर

विरोधी होते हुए भी श्री रामजी के हितचिन्तक हैं।

उन दोनों में एक तो)

वैतरणः

दानी हैं (और दूसरे बशिष्ठ जी)

यष्टा

यज्ञ कर्ता हैं। उन दोनों के वैर का कारण यह

अ स्वम्

है कि बिना कभी प्रसव किये ही, तथा

सबर्धुम् धेनुम्

गर्भिणी दशा में भी प्रचुर दूध देने वाली

दुहध्यै

बशिष्ठजी की गाय के लिये ही (परस्पर वैर हुआ था)

यत् मित्रावरुणा

जिस गाय के लिये ही मित्रावरुणके पुत्र बशिष्ठजी ने

उक्तैः
सम्बृजे
जेष्ठेभिः

ब्रूयैः
अर्यमणम् ।

नाना प्रकार के कर्मों यम नियम तप आदिके बल से विश्वामित्र की सारी सैन्य को सर्वथा नष्ट कर दिया । जप तप एवं योग के प्रभाव से परम शक्ति प्राप्त विश्वामित्र जी ने अपने तपः प्रभाव से तथा बहुत सेना एवं सेनापतियों से सम्पन्न होने के कारण स्वयं को सर्वस्वामी एवं परमसमर्थ मानते थे ॥६२॥

(४०) तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियं धा नाभानेदिष्ठोरपति प्रवेनन् ।

सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चात्कतिथश्चिदास ॥ ६३ ॥

(ऋ० १०।६१।१८)

तद्बन्धुः सूरिः
नाभानेदिष्ठः
रपति
ते दिवि धियम्
धा
प्रवेनन्

उन श्रीराम जी के हितकारी, परमब्रह्मनिष्ठ विद्वान् मनुवंश के पुरोहित बशिष्ठ जी शिष्यों से स्पष्ट कर समझा रहे हैं कि श्रीराम जी तुम्हारे हृदयाकाश में बुद्धि के धारण करानेवाले हैं अर्थात् परविद्या के उपदेशक हैं ब्रह्मवित् होने से अत्यन्त कान्तिमान हैं ।

अस्य सा परमा
नः नाभिः
अस्य परमा
वा, घ, सा
तत्पश्चात् कतिथश्चित्
अहम् आस ।

इन श्रीराम जी की वह सर्वश्रेष्ठ दिव्य कान्ति हमलोगों के हृदयान्तर में प्रकाशित हो । इन श्रीरामजी की वह परमाविद्या जिसकी कि वा और घ संज्ञा है वह ब्रह्मा को हनुमानजी से मिली उसके बाद किसी प्रकार (बहुत तप-सेवादि करके) मैंने प्राप्त किया है ॥ ६३ ॥

हंसः शुचिसद् बसुरन्तरिक्षसद्भोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।

नृपद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जागोजा ऋतजा अद्रिजाऽऋतं बृहत् ॥६४॥

(शु० य० १०।२४)

हंसः
शुचिसत्

वे श्रीरामजी सूर्यवंश के सूर्य एवं गर्वहर हैं वे ही आदित्य रूप से दीप्ति में रहने वाले मनुष्यों के

वसुः अन्तरिक्षसत्
होता

वेदिसत् अतिथिः

दुरोण सत्

नृषत्

वरसत्

ऋतसत्

व्योमसत्

अब्जाः

गोजाः

ऋतजाः

अद्रिजाः

ऋतम्

बृहत् ।

प्रवर्तक तथा वायु रूप से आकाश में रहने वाले,
होता रूप से देवताओं का आह्वान कर्ता;
अग्नि रूप से वेदी में रहने वाले, अतिथि रूप में
सर्व पूज्य तथा आहवनीय रूप से यज्ञ के बैठने वाले,
रामकृष्णादि रूप से मनुष्यों में बैठने वाले,
उत्कृष्ट स्थान = क्षेत्र = तीर्थादि स्थानों में तीर्थाभि-
मानी देवरूप से रहने वाले,
यज्ञ एवं सत्य में स्थित होने वाले,
मण्डल रूप से आकाश में स्थित होने वाले,
मत्स्य कूर्मादि रूप से जल में अवतरित होने वाले,
ग्रामदेव रूप से पृथ्वी = ग्राम में रहने वाले एवं
बाराहरूप से पृथ्वी में अवतार लेने वाले
सत्य से प्रगट होने वाले; नृसिंहरूप से
पाषाण प्रतिमा में; आराध्य रूप से प्रगट होने वाले
और अग्नि, निदाघ, मेघ, जल, शीत एवं हिमादि
दृश्यादृश्य चराचर जगत में व्याप्त रहने वाले,
सच्चिदानन्द स्वरूप दशरथ नन्दन रूप से अवतीर्ण
महाराज श्रीरामचन्द्र जी ही सबसे महान् परब्रह्म हैं ॥

मीन कमठ सूकर नर हरी । वामन परशुरामवपुधरी ॥

जब २ नाथ सुरन दुख पायो । नाना तनु धरि तुमहि नशायो ॥६४॥

(४१) इयं मे नाभिरिह मे सधस्यमिमे देवा अयमस्मि सर्वः ।

द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना ॥६५॥

इयम् मे

नाभिः इमे

देवाः मे

अयम्

ये राजा श्री रामभद्र जी, मेरे

हृदयान्तर्यामी हैं, और ये इन्द्रियाधिष्ठातृ

देवगण मेरी इन्द्रियों के प्रेरक हैं परन्तु

ये इन्द्रियाँ और इन

(ऋ० १०।६१।१६)

सर्वः
अस्मि
सब इन्द्रियदेवताओं को शक्ति-प्रकाश देने वाला तो मैं (जीवात्मा) ही हूँ और जो परमात्मा सबका प्रकाशक है वह

प्रथमजाः
द्विजाः
सबका पूर्वज सबसे अनादि होते हुए भी दुबारा जन्म लेने वाला है अर्थात् प्रति कल्प में दाशरथी राम रूप से अवतार लेता है ।

जायमान
धेनुः
अह अदुहत् ।
भगवन्निः स्वास से प्रगट हुई वैदिकवाणी ने कृपा करके मेरे हृदय में ऐसा निश्चित् प्रकाश पूर्णरूप से प्रकाशित किया है ॥६५॥

विषय करणसुर जीवसमेता । सकल एक ते एक सचेता ॥

सबकर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ॥

(४२) अथासुमन्द्रो अरतिर्विभावाऽवस्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट् ।

ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्ष्स्थिरं शेवृधं सूतमाता ॥६६॥

(ऋ० १०।६१।२०)

अथ
आ सु मन्द्रः
इसके बाद अर्थात् अवतार धारण करके श्रीरामचन्द्र जी इस भव-प्रवाह-नदी से पार लगाने वाले होते हैं ।

अरतिः अव
स्यति
देशान्तर में जाकर भक्तोंकी रक्षा करते हुए राक्षसोंका संहार करते हैं । उस समय जब राक्षसों का संहार करने के लिये अयोध्या से देशान्तर को जाते हैं

वनेषाट्
द्विवर्तिनः
तब वन पर्वतादिक वर्षा-ताप शीतोष्णदि सहते हुए । दो मार्ग अर्थात् तपस्वी मार्ग और शूर मार्ग का अनुसरण करते हैं ।

यत् ऊर्ध्वा
जो श्री रामजी ऊर्ध्व स्थान-मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करने वालों के लिये

श्रेणीः न (इव)
सोपान के समान आलम्बीभूत होते हैं । [इस मन्त्र में तथा और भी कई मन्त्र में 'न' का प्रयोग 'इव' के अर्थ में हुआ है—ध्यान रहे ।]

शिशुः मनु
दन् शैवृधम्
स्थिरम्
माता सूत ।

शत्रुओं का भली प्रकार दमन करके
दमन करके भक्तों के सुख बढ़ाने वाले हैं ।
ऐसे एक रस स्वभाव वाले पुत्र को
माता कौशल्या जी ने उत्पन्न-प्रगट किया ॥ ६६ ॥

पूर्व मंत्र में जो 'वनेषाट्' कहा गया है उसका कारण बतलाते हैं कि जब यौवराज्याभिषेक करने का निश्चय हो गया तब दशरथ जी की प्रेरणा से महर्षि बशिष्ठ जी कनक भवन में जाकर श्री राम जी को साम्बत्सरिक नियम समझाने लगे कि—

संवत्सरं न मांसमश्नीयात् न रामामुपेयात् ।
नास्य राम ! उच्छिष्टं पिवेत् तेज एव तत्संश्रयति ॥ ६७ ॥

तैत्ति० आर० ५।८।१३

राम !

हे वत्स राम ! (युवराज को चाहिये कि युवराज पद मिलने के एक दिन पूर्व ही से)

सम्बत्सरं, मांसम्*

एक वर्ष तक मांस शब्द से अभिहित जो जो वस्तुयें

* प्राण्यङ्ग चूर्णं चर्माम्बुजम्बीरं बीजपूरकम् ।

अयज्ञशिष्टमाषादि यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥ १ ॥

दग्धमन्नं मसूरं च मांसं चेत्यष्टधाऽऽमिषम् ।

गोछागी महिषी क्षीरादन्यदुग्धं तु ह्यामिषम् ॥ २ ॥

धान्ये मसूरिका प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा ।

द्विज क्रीत रसा सर्वे लवणं भूमिजं तथा ॥ ३ ॥

ताम्र पात्र स्थितं गव्यं जलं पल्लव संस्थितम् ।

आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः ॥ ४ ॥

(सरोज सुन्दरः पद्म पुराण)

आकर्षणेऽपि पुंसि स्यादामिषं पुनपुंसकम् ।

भोग्य वस्तुनि संभोगेऽप्युत्कोचे पललेऽपि च ॥ (मेदिनी कोश)

न अश्नोयात् रामाम्
न उपेयात्
अस्य उच्छिष्टम्
न पिवेत

तत् तेजः

संशयति एव ।

हैं उनका (उनको आपत्ति काल में औषधि आदि के रूप में भी)

नहीं भक्षण करै और स्त्री (पत्नी) के साथ भोग न करे ब्रह्मचर्य से रहे । (और कोई अन्य व्यक्ति भी) इस व्रती युवराज का जूठा जल तक न पीवे अर्थात् किसी को अपना जूठा जल तक भी न देवे । तब ऐसा नियम साल भर तक पालन करनेसे उस व्रती युवराज का तेज प्रताप ऐश्वर्य दिनोदिन बढ़ता ही जाता है ॥ ६७ ॥

(राम धाम सिख देन पठाये ॥ गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ ॥ राम करहु सब संयम आजू)

उसी समय जब श्री राम जी को राज्याभिषेक दिया जाता हुआ जान कर महारानी कैकेयी ने 'राम को वन भरत को राज्य' दिये जाने के लिये हठ किया उसी सम्बन्ध में (कैकेयी चरित्र के उपलक्ष में) श्रुति कहती है कि—

(४३) मध्या यत्कर्त्वमभवद्भीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।

मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥ ६८ ॥

ऋ० १०।६१।६

अभीके,
यत् कर्त्वम्
मध्या
पितरि
युवत्याम्
कामम्
कृण्वाने । रेतः
जहतुः
वियन्ता

देवासुर संग्राम में दशरथ से मिले हुये कैकेयी के जिन दो वरदानों को लक्ष्य करके श्री राम जी के वनवास की मध्यस्था मंथरा ने श्री राम जी के पिता श्री दशरथ जी के प्रति युवती रानी कैकेयी जी को निमित्त बनाकर कैकेयी के यथेष्ट वरदान रूप कार्य का सम्पादन किया । इसी से पिता को त्याग कर (श्री सीता लक्ष्मण सहित श्री राम जी के) विदेश (वन) चले जाने पर पिता दशरथ जी

मनानक्

निर्मनस्क होकर मृतक हो गये । क्योंकि वे श्री राम जी को वन जाने देना नहीं चाहते थे । दशरथ जी

सुकृतस्य योनौ

पुण्य के फल स्वरूप प्राप्त होने वाले

निषिक्तम् सानौ ।

महान् उच्च स्थान (स्वर्ग) को प्रयाण कर गये ६८

श्रीराम जी के बन जाते समय पीछे-पीछे कुछ दूर तक महर्षि विश्वामित्रजी भी गये और गङ्गा तट पहुँचकर महर्षि ने गङ्गा जी से प्रार्थना किया । विश्वामित्र जी की बड़ी बहिन सत्यवती लोक कल्याण के लिये अपने पातिव्रत बल से कौशिकी नाम की नदी बनकर प्रवाहित हो रही हैं, इसी से विश्वामित्र जी सभी नदियों को बहिन तुल्य मानकर प्रार्थना करते हैं कि—

(४५) ओषु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।

निषू नमध्वं भवतासुपारा अधो अक्षाः सिंधवः स्रोत्याभिः ॥६६॥

(ऋ० ३।३।६)

स्वसारः सिन्धुः

हे बहिनों ! (बहिन के समान) समुद्र गामिनी नदियों !

ओषु शृणोतु

अत्यन्त सुन्दर मेरा वचन सुनो । इस समय श्रीरामजी

कारवे दूरात्

राक्षस वध रूप महान् कार्य के लिये नगर से दूर

अनसा रथेन वः

शीघ्रगामी रथपर चढ़कर तुम्हारे तट तक

ययौ । निषू

पहुँचे हैं । और निरन्तर अच्छे प्रकार से आप को

नमध्वम् । अधः

नमन-प्रणाम करते हैं । अतः आप कृपा करके नीचे

अक्षाः श्रोत्याभिः

बहनेवाली छोटी-छोटी नदियों से भी

अमुपारा भवत ।

सुगमता पूर्वक पार हो जाने वाली हो जाइये इस प्रकार श्री रामजी सुखपूर्वक गङ्गादि पार किये और चित्रकूट में जाकर रहने लगे ॥६६॥

श्रीराम जी के बन जाने पर जब मातामह के घर से अयोध्या में आकर भरतजी ने श्रीराम जी का बन गमन सुना तब—

(४४) दण्डा इवेद्गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।

अभवच्चपुर एता वशिष्ठ आदितृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ७० ॥

ऋ० ७।३।६

भरताः, गो
अजनासः दण्डाः इव
आसन् ।
तृत्सूनाम्
परिच्छिन्नाः
अर्भकासः
पुर एता
बशिष्ठः विशः
आदित अप्रथन्त
च अभवत् ।

श्री भरत शत्रुघ्नादि गाय
चराने वाले की छड़ियों के समान
हो गये अर्थात् कि कर्तव्यविमूढ़ होकर मूर्च्छित हो गये ।
और जब श्री राम जी के दर्शन से तृप्ति प्राप्त की
इच्छा के कारण, और
श्री राम जी से छोटे होने के कारण तथा श्री राम
जी के सामने बालक-रूप श्री भरत शत्रुघ्न के राज्य
पालन की राजप्रथा को न ग्रहण करने पर
इनके (सूर्य वंश-रघुवंश के) अग्रणी-पुरोहित
श्री बशिष्ठ जी ने ही राज काज की
व्यवस्था उत्तम प्रकार से किया
और (वे बशिष्ठ जी ही) प्रजा पालक भी हुये ॥७०॥

(४६) अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्रपिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणा पृणुध्वं यातशीभम् ॥७१॥
(ऋ० ३।३३।१२)

गव्यवः
भरताः नदीनाम्
अतारिषुः, विप्रः
सुमतिम् समभक्त
इषयन्तीः सुराधाः

न्यायतः प्राप्त राज्य को त्याग देनेवाले
भरतादि तमसा, गोमती; स्यंदिका गङ्गादि नदियोंको
पार करके प्रयाग पहुँचे तब ब्रह्मर्षि श्री भरद्वाज जी ने
सुन्दर बुद्धिवाले श्री भरत जी का अच्छी तरह
आतिथ्य किया । (कैसा आतिथ्य किया इसे श्रुति
स्पष्ट करती है कि श्री भरद्वाज जी ने समस्त ऋद्धियों
सिद्धियों को आज्ञा दिया कि)
इच्छा करने मात्र से प्रीतिपूर्वक बहुत प्रकार की
सम्पत्तियों को क्षणमात्र में प्रस्तुत कर देने वाली हे
प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, बशित्वादि सिद्धियो तुमलोग
श्री भरत जी के यहाँ जाकर

प्र पिन्वध्वम् आ

प्रकर्ष रूप से सब काम सिद्ध करो, और सभी तरफ
(भरत जी की सैन्य में)

वक्षणाः पृणध्वम्
शीभम् समभक्त
यात ।

घी, दूध, शहद आदि की नदी परिपूर्ण कर दो
ईश्वरावतार श्री भरतजी का भली प्रकार आतिथ्य
करके तब अपने अपने स्थान को जावो ॥ ७१ ॥

श्रीराम जी के पास जाकर भरत जी ने क्या किया । वह महर्षि विश्वामित्र
के वचन जाना जाता है कि—

(४७) यदंग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।

अर्षादह प्रसवः सर्गं तक्त आवो वृणे सुमतिं यज्ञिमानाम् ॥ ७२ ॥

(ऋ० ३।३३।११)

अंग ! भरताः
त्वा संतरेयुः

हे प्रिय ! आप महा नदीवत हैं क्योंकि श्री भरतादि
आपको तरना (तैरकर पार करना) अर्थात् निर्विघ्न
अवधि पूरी करना चाहते हैं । इसलिये उनकी पूजा
अर्थात् प्रार्थना स्वीकार कर लीजिये । ये
पूजन के योग्य सुन्दर शरणागति पूर्वक
प्रार्थना करते हैं और नन्दीग्राम में चौदह वर्ष तक
रहना चाहते हैं अतः

यज्ञीयानाम् सुमतिम्
आवृणे गव्यन्ग्राम
इषितः

इन्द्रजूतः

प्रसवः अह

वः अर्षात्

सर्गं तक्तः ।

इन्द्रादि देवताओं के प्रेरक सर्वस्वामी हे श्रीरामजी
आपकी आज्ञा प्राप्त कर निश्चित रूप से अप्रतिहत
गतिक होकर आपकी आज्ञा का पालन करें ।
तब श्रीराम जी की आज्ञा से श्री भरत जी ने नन्दि-
ग्राम पहुँचकर कृच्छादि व्रत करते हुए श्रीराम जी
की आज्ञा का पालन किया अर्थात् चौदह वर्ष तक
राज्य प्रबंध सुचारु रूप से किया ॥ ७२ ॥

मुनियों ने राक्षसों द्वारा खाये हुए महर्षियों की अस्थि समूह को दिखला-
कर श्रीराम जी से प्रार्थना किया कि—

(१०५) अयो दंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुपस्पृश जातवेदः समिद्धः ।

आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो बृक्त्व्यपिधत्स्वासन् ॥७३॥

(अथर्व ८।३।२)

जात वेदः समिद्ध
अयो दंष्ट्रः
अर्चिषा यातुधानान्
उपस्पृश
मूरदेवान्
जिह्वया
आ रभस्व
बृक्त्वी क्रव्यादः
आसन् अपिधत्स्व ।

हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! आप परम तेजस्वी हैं,
लोहे के तीक्ष्ण दाँत अर्थात् बाणवाले हैं, अतः आप
अपने उन बाणों को तीव्र ज्वाला से राक्षसों को
स्पर्श कीजिये अर्थात् नष्ट कीजिये
हिंसक राक्षसों को “मारक व्यापारा, राक्षसाः”
अपने प्रज्वलित बाणरूपी जीभ से
अच्छी तरह चाट जाइये—नाश कर दीजिये
अपने बाणों से काट २ कर उन मांसाहारी राक्षसों को
अपने कालरूपी मुख में रख लीजिये ॥ ७३ ॥

दण्डकारण्य में शूर्पणखा जब सुन्दरी बन कर श्री राम जी के पास गई
तब श्री राम जी ने उसे श्री लक्ष्मण जी के पास भेजा । जब श्री लक्ष्मण जी
ने भी वाक् चातुरी से उसे श्री राम जी के पास लौटा दिया तब शूर्पणखा ने
श्री राम जी से श्री लक्ष्मण जी की शिकायत किया कि—

(४८) न हिं सस्तव मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।

यो अस्मान् वीर आनयत् ॥ ७४ ॥ ऋ० ८।३३।१६

हि सः तव
शास्त्रे न रण्यति
न मम
न अन्यस्य

यह निश्चय है कि वह (लक्ष्मण) आपकी
आज्ञा में नहीं चलता तथा
न मेरी ही बात मानता है और
न किसी दूसरे की ही बात मान सकता है । तब श्री
राम जी ने कहा कि—
जो पुरुष वीर है वह किसी के आधीन नहीं रहता
परन्तु लक्ष्मण कुमार
मेरी आज्ञा मान लेगा । अतः तुम पुनः जाकर उसको
मेरी आज्ञा सुनाओ ॥ ७४ ॥

यः वीरः

अस्मान्; आनयत ।

(४६) इन्द्रश्चिद्या तदब्रवीत् स्त्रिया अशास्यं मनः ।

उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ ७५ ॥ (ऋ० ८।३३।१७)

चित् या श्रीरामजी के ऐसा कहने पर जब वह किसी तरह नहीं गई तब
अह उत् उसका वहाँ निश्चित रूप से रुकी रहना देखकर
इन्द्रः परमेश्वर्य शाली श्री राम जी ने
रघुम् तत् रघुवंशवीर श्री लक्ष्मण जी से ऐसा
अब्रवीत् स्त्रियाः मनः कहा कि सामान्य स्त्रियों का मन (इन्द्रियाँ)
अशास्यम् क्रतुम् । अजित होने से उदण्ड होता है । अतः इसका शासन करना चाहिये अर्थात् इसे दण्ड देना चाहिये ॥७५॥

(५०) सप्ती चिद्धा मदच्युता मिथुना वहतो रथम् ।

एवेद् धूर्वृष्ण उत्तरा ॥ ७६ ॥ (ऋ० ८।३३।१८)

सप्ती सात घोड़ों के रथवाले सूर्य का घोड़ा (उच्चै श्रवा)
मदच्युता यहाँ पर श्रवण अर्थात् कान से तात्पर्य है । और शरीर से प्रत्यक्ष मद बहता है जिस इन्द्रिय से अर्थात् नासिका
मिथुनौ नाक और कान दोनों इन्द्रियाँ
रथम् शरीर रूपी रथ को
वहता धारण करती हैं । इस तरह कि प्रथम तो शरीर की शोभा नाक और कान से है । दूसरे घोर अन्धकार में जहाँ का पता आँख, हाथ, पाँव आदि को नहीं लग सकता वहाँ के शब्द और गन्ध का पता अनायास ही दूर से ही पाकर श्रवण और नासिका शरीर रूपी रथ को धारण करते हैं संभालते हैं ।
चित् ह वृष्णः किन्तु इन दोनों में भी मद वर्षाने वाली नासिका का
धूः उत्तरा वंशनाल श्रेष्ठतर है अतः नाक और कान

वेदों में राम कथा

एव इत्

हाथ का भटका देकर बताया कि 'ऐसे' काट लो ।
"वेदों नाम गनि अमरिषाखण्ड अकाश । पडई
शूर्पणखाहिं लखन के पास ॥ (बरवैरामायण)

उपर्युक्त ७५ और इस ७६ दोनों में ब्रह्मज्ञान भाव यह है कि इसे जान से न मार कर इसका कान और नाक काट लेना ही उचित है ॥ ७६ ॥

शूर्पणखा के विरूप होकर चले जाने पर विघ्न की संभावना से श्री राम जी ने श्री सीता जी से कहा कि—

(५१) अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर ।

मा ते कशप्लकौ दशनस्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥७५॥ ऋ० ८।३३।१६

अधः हे सीते ! तुम नीचे की तरफ ही
पश्यस्व देखो । सामने अगल बगल और
उपरि मा ऊपर इस समय मत देखो ।
पादकौ सन्तरां हर चरणों को अत्यन्त विचार और नम्रतापूर्वक चलाओ
ते कशप्लकौ मा तुम्हारे पादगुल्फ नहीं
दशन हि दिखाई पड़ें । क्योंकि पूर्वकाल में
स्त्री स्त्रियाँ (अङ्गावयव, स्वभाव, सदाचारणादि का
सब तरह से रक्षण करके ही)

ब्रह्मा बभूविथ । ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने वाली हुई हैं । तात्पर्य यह है कि
दुरात्मा वंचक राक्षसों से अपनी रक्षा करो अर्थात्
कुछ काल के लिये जब तक कि रावणादि का नाश
न हो जाय तुम अपने इस दिव्य विग्रह को तिरोहित
कर लो । इस प्रकार कहने पर श्री सीता जी अपने
उस दिव्य विग्रह को अन्तर्हित करके एक मायिक
विग्रह से अवस्थित हो गई । जबहिं राम सब कहा
बखानी । प्रभु पद धरि हिय अनल समानी ॥७७॥

(५२) स इहासं तु वीरवं पतिर्दन् पडक्षं त्रिशिर्षाणं दमन्यत् ।

अस्य त्रितोन्वोजसा वृधानो विपा बराह मयो अग्रया हन् ॥७८॥

ऋ० १०।६६।६

इस मन्त्र में यह बतलाया गया है कि शूर्पणा को विरूपित देखकर श्री राम-लक्ष्मण को मार डालने के लिये त्रिशिरा, खर और दूषण सेना लेकर चढ़ आये तब श्री राम जी ने अकेले अनायास ही त्रिशिरादि को मार डाला—

सः एव	श्री राम जी ने अकेले ही
इहासम्	लोकों को दूषित करने वाले 'दूषण' का
वीरवम्	महा भयङ्कर स्वर करने वाले खर का और
दन् पतिः	(जो दण्डक वनस्थ) दनुजों-दुष्टों का पति-रक्षक था
षडक्षम् त्रिशीर्षाणं	छ आँख तथा तीन शिर वाला 'त्रिशिरा' उसका
दमन्यत् ।	दमन कर दिया—मार डाला ।

श्री राम जी ने जो त्रिशिरादि को मार डाला तो कौन सी बड़ी विचित्र बात हो गई अरे

अस्य अनु	इन श्री राम जी के अनुयायी कृपा पात्र ऋक्ष बानरों
ओजसा वृधानः; अयः	ने तो बल से बड़े हुये अपने लौह मय
त्रित अग्रया वि पा	अँगुली के अग्रभाग-नख से बिना प्रयास के ही
बराह	बाराहाकार विशाल एवं भयङ्कर राक्षसों को
अहन् ।	मार डाला । इसलिये सिद्ध हुआ कि अभय चाहने
	वालों को श्रीरामजी की ही शरण लेनी चाहिये ॥७८॥

“करि उपाय रिपु मारे छनमहँ कृपानिधान ।”

“खर दूषण सुनि लगे गोहारा । छन महँ सकल कटक उन मारा ॥ ३७।४

इस प्रकार जब ससैन्य खरदूषण त्रिशिरादि को मारकर श्रीराम जी स्थिर हुये तब देवतागण स्तुति करने लगे कि—

(५३) यदचरस्तन्वा वा वृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।

मायेत् सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥७९॥

(श० ब्रा० ११।१।६।१० ऋ० १०।५४।२)

इन्द्र !
जनेषु
तन्वा वा वृधानः
बलानि प्रबुवाणाः
यत्
अचरः

यानि
युद्धानि
मायेत् ननु
अद्य पुरा
शत्रुम् न
विवित्से ।

हे परमैश्वर्यशालिन् ! श्रीरामजी !
जनस्थान (पञ्चवटी नासिक) में जो राक्षस
शरीर से बहुत लम्बे चौड़े थे और जो
अपने अपने बल की प्रशंसा किया करते थे,
जिनके डर से जनस्थान में कोई जा नहीं सकता था
स्थान अगम्य था । उन राक्षसों को मारकर आपने
जनस्थान को सबके संचार-निर्भय घूमने फिरने योग्य
बना दिया । आपने इन राक्षसों से जो
‘घोर युद्ध किया’ ऐसा जो कहा जाता है वह तो
आपकी लीला मात्र थी क्योंकि निश्चय करके आपने तो
आज या पहले (पूर्व काल में) कभी किसी को
वैरी करके नहीं ही
जाना क्योंकि आप तो सर्वान्तर्यामी परमात्मा हैं ॥७६॥

शूर्पणखा के मुख से जनस्थान का वृत्तान्त सुनकर रावण ने जो किया
उसे श्रुति बतलाती है कि—

(५४) स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां मुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाह्णे अश्वान्ययुयुजे हि बभ्रून्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥८०॥

(ऋ० १०।३४।११)

स्त्रियं दृष्ट्वाय
कितवम्
पूर्वाह्णे हि बभ्रून्
अश्वान्
युयुजे
सः वृषलः
अग्नेः अन्ते

नाक कान कटी हुई स्त्री शूर्पणखाको देखकर रावण ने
कपट मृगवेष धारी मारीच को साथ लिया और कपट
भिन्नुक ब्राह्मण का वेष स्वयं धारण कर
दोषहर-मध्याह्न के पहिले ही, वर्ण शंकर
घोड़ों अर्थात् खच्चरों को रथ में
जोत लिया और उसी रथ पर बैठ कर धर्म द्रोही
वह नीच कर्मा रावण मारीच के सहित
श्रीराम जी की अग्नि शाला के पास

पपाद
अन्येषाम् च
सुकृतम् योनिम्
तताप ।

गया। वहाँ जाकर छलपूर्वक सीताजी का हरण करके
अन्य की पाणिगृहीता पत्नी श्री सीता जी को और
अग्नि होत्रादि शुभ कर्म करने वाले उनके वंश को
तापित किया। श्री सीता जी के हरण से श्री राम जी
श्री सीता जी और (श्री हनुमान् जी से सुनकर)
अयोध्या वासी गण तापित हुये ॥ ८० ॥

श्री सीता हरण का स्पष्टी करण करते हुए श्रुति कहती है कि—

आ जामिरत्के अव्यत् भुजेन पुत्र ओण्योः ।

सरज्जारो न योषणां वरो न योनि मासदम् ॥ ८१ ॥

(ऋ० ६।१०।१४)

जामिः
अत्के आ
अव्यत्
न पुत्रः ओण्योः
भुजेन
जारः योषणाम्
सरत्; वरः
योनि आसदम् ।

रावण की पुत्री रूप (देखिये मन्त्र ४६) श्रीसीताजी
पूर्ण कुटीमें अच्छी तरह (सुख पूर्वक) निश्चिन्त होकर
निवास करती हैं,
जैसे पुत्र; रक्षक (माता पिता) की
भुजा द्वारा संरक्षित रहकर निश्चिन्त रहता है ।
(उसी कालमें) कामी रावण श्री सीताजी को (हरण
करने की इच्छा से उनकी कुटिया के पास)
आता है और श्री सीतावर श्री राम जी
कारण रूप मारीच मृग को पकड़ने जाते हैं ॥ ८१ ॥

तत्पश्चात् माया मृग के 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनकर जब श्री सीता जी ने
लक्ष्मण जी को हठ करके भेजा तब—

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्चः पुरुषः पशुः ।

यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीव नायकम् ॥ ८२ ॥

(अथर्व० ८।२।२५)

यत्र (यथा)
परिधिः

जैसे यज्ञ में अग्नि के चारों तरफ
रेखा खींची जाती है उसी प्रकार

ब्रह्म

परिधि: क्रियते

जीव नायकम्

तत्र वै

गौः अश्वः पशुः

पुरुषः जीवति ।

रेखा खींचते समय श्री लक्ष्मण जी ने यह मन्त्र पढ़कर रेखा को अभि-
मन्त्रित किया ।—

परित्वा पातु सामनेभ्योऽभिचारात् सबंधुभ्यः ।

अमग्निभिर्वाऽमृतोऽति जीवो मा ते हासिपुरसवः शरीरम् ८३

अ० ८।१।२६

त्वा, परि

अमग्निभिः सबंधुभ्यः

सामनेभ्यः अभिचारात्

पातु । ते असवः

अति जीवः

वा अमृतः

शरीरम् मा

हासिपुः ।

आपको यह परिधि (लघु रेखा)

प्रबल मन्त्र शक्ति द्वारा सपरिवार

हमारे शत्रुओं के समस्त हानिकर प्रयोगों (उपायों) से

रक्षा करै । आपके प्राण

बहुत काल तक जीवित रहें ।

अथवा कभी मरें ही नहीं अर्थात्

शरीर को कभी भी न

छोड़ने वाले हों अर्थात् परिधि के भीतर किसी

प्रकार की भय न रहेगी ॥ ८३ ॥

सवीरो दक्ष साधनो वियस्तः स्तम्भ रोदसी ।

हरिः पवित्रे अव्यत् बेधा न योनिमासदम् ॥ ८४ ॥

साम० १२।२।६ ऋ० ६।१०।१५

सः वीरः

दक्षसाधनः

यः रोदसी

वे वीरवर श्री रामचन्द्र जी

कार्य साधन अर्थात् मारीच बध में समर्थ हुये, और

जिन श्री राम जी ने पृथ्वी अन्तरिक्ष और

वियस्तः स्तम्भ

न वेधा

हरिः

योनिम् आसदम्

पवित्रे अव्यत् ।

स्वर्ग तक को अपने तेज से व्याप्त किया है,

और अनन्त ब्रह्माण्ड विधायक

भक्त भयहारी वे श्री राम जी

स्वपत्नी श्री सीता जी के मिलने के लिये

कुश काश निर्मित पर्णशाला में पहुँचे ॥ ८४ ॥

मारीच के मारे जाने पर ऋषिगण श्री राम जी की स्तुति कर रहे हैं—

(५५) इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं बज्रिन् वीर्यम् ।

यद्धृत्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननुस्वराज्यम् ॥ ८५ ॥

ऋ० १।८०।७। साम० ४।७।४

इन्द्र ! इत् तुभ्यम्

वीर्यम् अनुत्तम्

बज्रिम् !

हे परमैश्वर्यमान् भगवन् ! यह आप ही का

पराक्रम है कि कहीं कभी भी किसी से हारते नहीं हैं ।

हे बज्रमणि-हीरा धारण करने वाले ! (अभी भी

श्री राम जी मणि-हीरा जाटित मुद्रिका हाथ में पहिने

हुये है इससे ऋषिगण बज्रधारी कह रहे हैं ।)

अद्रिवः

आप मेरुवत् शिव चाप के नाशक हैं तब परम प्रताप

शाली आपने जो

तम् ह उ

त्यम्

मायिनम्

मृगम्

त्वम् मायया

अवधीः । स्व राज्यम्

अनु, अर्चन् ।

उस परम प्रसिद्ध जो कि परोक्ष रूप में

राक्षस था और प्रत्यक्ष रूप में

अपनी राक्षसी माया (कपट) द्वारा

मृग बना था उस मायावी राक्षस-मृग मारीच को

आपने अपने मनुष्य देहानुरूप लीला करके

मार डाला । यह आपने अपने राज्य वंश की

पूर्व चली आई परम्परा को ही, पूजा-सत्कारमात्र

किया । अर्थात् राजा लोग मृगया करते आये

हैं इसीलिये आपने भी मृगया किया कुछ द्वेष बुद्धि

से उस माया मृग को नहीं मारा है, क्योंकि आप

सर्वान्तर्यामी सर्वात्मा हैं ॥ ८५ ॥

वेदों में राम कथा

मारीच के कारण जब राम-लक्ष्मण जी आश्रम से दूर चले गये और कोई अन्य श्री रामानुयायी भी वहाँ नहीं था तब रावण अकेली सीता जी के समीप गया तब सीता जी उसे रावण जानकर समझाकर कहने लगीं कि—

(५६) यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा ब्रातस्य प्रथमो बभूव ।
तस्मै कृणोमि न धना रुणधिम दशाहं प्राचीस्तद्वत् वदामि ॥ ८६ ॥

ऋ० १०।३४।१२

यः वः गणस्य
महतः सेनानी
ब्रातस्य प्रथमः
राजा बभूव, अहम्
तस्मै कृणोमि
धना न रुणधिम
दश प्राचीः
तत् ऋतम् वदामि ।

जो तू राक्षस गणों का
महान् सेनापति या नेता है और
सम्पूर्ण पतितों अधर्मियों का प्रधान
चक्रवर्ती राजा हुआ है; मैं
उसका शीघ्र ही समूल नाश कर दूँगी ।
तुम्हारे धन को मैं नहीं चाहती
पूर्वादि दश दिशा की साक्षी देकर
यह बात मैं सत्य सत्य ही कहती हूँ ॥ ८६ ॥

श्री सीता जी के ऐसा कहने पर भी जब रावण उनके हरने को उद्यत ही रहा तब यह देखकर अग्निदेव चिन्ता करते हुए मन ही मन श्री राम जी से प्रार्थना करने लगे कि—

(५७) इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमानदर्शि ।

चिकिद्विभाति भासा बृहताऽसक्नीमेति रुषतीमपाजन ॥ ८७ ॥

ऋ० १०।३।१ साम० १५।२।१

राजन् ! इनः
अरतिः समिद्धः
रौद्रः दक्षाय
सुषुमान् अदर्शि ।
चिकित्
विभाति
बृहती भासा असक्नीम्

हे महाराज श्री राम जी ! यह बलवान् राक्षसराज
काम सुख से अतृप्त अतः कामाग्नि से प्रदीप्त
भयङ्कर राक्षस रावण दुःसाहस करने में
सर्वथा समर्थ दिखाई पड़ रहा है । मुझ अग्नि को
आपका सामर्थ्य जानते हुये भी यह विपरीत रूप से
दीप्त जान पड़ता है । यद्यपि कि श्री जानकी जी
बहुत बड़ी-महान् दीप्ति से काल रात्रि के समान

रुषतीम् अपाजन् ।

जलाती हुई आती हैं परन्तु तब भी रावण इन्हें उठा
कर भाग ही जायेगा ॥ ८७ ॥

अग्निदेव पुनः विचार करते हैं कि—

(५८) कृष्णां यदेनीमभिवर्षसाऽभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।

ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्विभाति ॥ ८८ ॥

(ऋ० १०।३।२ साम १५।२।२)

यत् कृष्णाम्
एनीम्
पितुः जाम्
बृहत् वर्षसा
योषाम्
अभि अभूत् ।

जो काल रात्रि तुल्य विवर्णा
इन श्री सीताजी को रावण ले जा रहा है ये
जगत्पिता श्री रामजी की जाया-पत्नी हैं जिन्होंने
ब्रह्म श्रीराम जी के सङ्कल्प करते ही योग बल से
अन्य छाया—सीता को प्रगट कर अपने स्वरूप को
सर्वथा तिरोहित कर लिया है । ऐसी छाया सीता को
लेकर जाते हुए

अरतिः ऊर्ध्वम्
सूर्यस्य
दिवः
वसुभिः
भानुं स्तभायन्
विभाति ।

काम सुख से अतृप्त राक्षस रावण आकाश मार्ग से
सूर्य के समीप रहनेवाले देवतागण और
अन्तरिक्ष में रहनेवाले देवतागण
अष्ट वसु आदि देवगणों के सहित
सूर्य किरण को स्तम्भन करते हुए
प्रकाशित हो रहा है । अर्थात् श्री सीता जी को हरकर
आकाश मार्ग से ले जाते हुए रावण को रोकने में
कोई भी देवता समर्थ नहीं हुए ॥ ८८ ॥

(५९) स ई वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परापैत दभ्रचेताः ।

सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न तानु मे पृशन्त्यो जगृभे ॥ ८९ ॥

(ऋ० १०।६।८१)

दभ्रचेताः
स्मत् परा

स्थूल बुद्धिवाला साँड़ दूसरे साँड़ को यह जानकर कि
हमारे परोक्ष में यह हमारी चाही हुई गाय को

अपैत
आ न
फेनम्
वृषा न
सः
ईम् आजौ
अस्यत्
दक्षिणा
पदा
सरत्
तान्
पृशन्त्यः
मे उ
न जगृभे परावृक् ।

ग्रहण कर लेगा इसलिये
चारों तरफ देखते हुए नासिका से फूटकार करते हुए
मुँह से गाज गिराते हुए और हुंकार देते हुए अपने
प्रतिद्वन्दी साँड़ को जैसे खोजता है (वैसे)
पत्नी हरण कर ली गई है जिनकी ऐसे श्रीराम जी
श्री सीता जी के लिये राक्षसों के साथ युद्ध में
बाण चलाने को तैयार हुये और
दक्षिण दिशा में रथ की पहियों का चिह्न और
अश्व पद का चिह्न देखते हुए
श्री सीताजी के लिये इधर उधर घूमते हुए जब
उन शुभाशुभ शकुन सूचक
पशु पक्षियों को भी देखा कि ये भी
मुझे शुभ शकुन बताते हुये मेरा अनुसरण
नहीं करते तब शोक से व्याकुल हो गये ॥ ८६ ॥

(६०) विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सं तं पलितो जगार ।

देवस्य पश्य काव्यं महित्वाऽद्या ममार सह्यः समान ॥ ६० ॥

नि० १४।१८ ऋ० १०।५५।५ साम ३।१०।३ = २०।२।३ अथर्व ६।१०।६

तै० आ० ४।२०।१

समने बहूनाम्
विधुम्
दद्राणम्
युवानम् सम्
तम् पलितः जगार ।

युद्धभूमि में बहुत शूरों को
विधूनन नाश कर देने वाले
बहुत शूरों को युद्धभूमि से भगा देने वाले और
जवान बने रहने वाले सबको सन्तप्त करने वाले
उस लङ्काधीश को बहुत वृद्ध होते हुए भी जटायु ने
मूर्छित करके रोक लिया ।

जटायुराज के बुढ़ापा के शरीर में भी इतना बल था कि रावण को
बाँध लेते क्योंकि वर प्रभाव से रावण मरता नहीं परन्तु—

देवस्य काव्यम्

सब राज्ञसों का विनाश चाहनेवाले देवताओं का परिणामदर्शित्व विचार

पश्य

देखिये कि देवताओं ने सोचा कि अभी जटायु के हाथ से रावण यदि मर या बँध जायेगा तो श्री सीता जी को पा जाने से श्रीराम जी फिर रावण बध से उपरत हो जायेंगे, तब अन्य राज्ञसों का मरण न होगा इसलिये जो

ह्यः समानः

पहले युद्ध में रावण की बराबरी करते हुए युद्ध में

आ सः

अच्छी प्रकार रावण को मूर्च्छित कर दिया था वही

अद्य ममार ।

जटायु आज इस समय मर गया, फिर अब न उठेगा ।

भाव यह कि सम्पूर्ण राज्ञसों के बधार्थ जटायु की मृत्यु में देवताओं का विशेष हाथ था ॥ ६० ॥

(६१) शाक्मना शाको अरुणः सुपर्णः आयो महः शूरः स्यादनीडः ।

यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पर्हमुत जेतोत दाता ॥ ६१ ॥

(साम २०।२।४ ऋ० १०।५।६)

शाक्मनाः

शक्ति उत्साह से भरे हुए मन वाले

अरुणः

भगवान् श्रीराम जी में अनुराग रखनेवाले सूर्य के सारथी अरुण के पुत्र

महः शूरः सनात्

बड़े भारी बलवान् योद्धा सदैव

अनीडः

बिना घर के रहनेवाले अर्थात् परम वैराग्य शील

सुपर्णः आयः

महायोगी और सुन्दर बलिष्ठ पङ्क्तों से बहुत दूर तक उड़ने वाले जटायु राज ने

यत् चिकेत तत्

जो कुछ श्री सीताजी के सम्बन्ध में जानते थे वह सब

सत्यम् इत्

सत्य-सत्य कह दिया, और यह भी कह दिया कि मैं

चाहता था कि रावण को मारकर श्रीराम जी हाथ में

श्री सीता जी को अर्पित कर दूँ । जटायु राज की वह

रावण की मृत्यु रूप आकांक्षा सत्य हुई क्योंकि साधु पुरुषों का सत्य सङ्कल्प उनके पाँच भौतिक शरीर के त्याग देने पर भी

मोघम् न

व्यर्थ-निष्फल नहीं होता। इसी से श्रीराम जी ने जटायू के सामने प्रतिज्ञा किया कि मैं युद्ध में रावण को मारकर स्पृहणीय धन श्री सीता को प्राप्त करूँगा और लङ्का-विजय की सम्पत्ति का दान भी कर दूँगा ॥ ६१ ॥

स्वार्हम् वसु

उत दाता ।

श्रीराम जी ने जटायु के सत्सङ्कल्प को कैसे पूरा किया उसे श्रुति इस मन्त्र में बताती है कि—

(६२) येभिर्ददे वृष्ण्या पौस्यानि येभि रौक्षद् वृत्रहत्याय बज्री ।

ये कर्मणः कृयमाणस्य मह ऋते कर्ममुद जायन्त देवाः ॥६२॥

(साम २०।२।५ ऋ० १०।५५।७)

येभिः

देवताओं के द्वारा पशु चिह्न—लोम लाङ्गूल से युक्त और मनुष्य चिह्न कर पद नाक कान आदि से युक्त बानरों अर्थात् हनुमान् सुग्रीवादिकों से श्रीराम जी को मिला दिया (भेंट करा दिया) गया।

वृष्ण्या

पौस्यानि ददे

येभिः

बज्री वृत्र

हत्याय

रौक्षद्

पशु और मनुष्यों के चिह्न से युक्त होने पर भी इन्द्रांशोत्पन्न बाली ने बहुत बड़ा पाप जो कि मृत्यु दण्ड के योग्य था किया अर्थात् निर्दोष छोटे भाई से वैर किया और कन्यावत् छोटे भाई की स्त्री में बलात्कार पूर्वक वीर्य स्थापन किया। इसी से राम जी के हाथ से मारा गया

ये देवाः अहकर्मम् ऋते और जो देवतागण पाप कर्म के बिना ही

कियमाणस्य कर्मणः

उद जायन्त ।

किये जानेवाले सेतुबन्ध राक्षस बधादि कर्म के

प्रभाव को जानकर बानर रूप से महत्कर्म करने के

लिये ही आविर्भूत हुये थे, उनलोगों की सहायता से श्रीराम ने जटायु के सत्सङ्कल्प को पूरा किया ॥ ६२ ॥

जटायु की अन्येष्टि किया करके जब श्रीराम जी आगे चले तब रास्ते में—

(६३) नीचीनवारं वरुणः कबन्धं प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।

तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्युनत्ति भूम ॥६३॥

(ऋ० ५।८५।३ नि० १०।४)

विश्वस्य भुवनस्य
राजा, नीचीनवारम्
कबन्धम् वरुणः
रोदसी अन्तरिक्षम्
प्रससर्ज, तेन
भूम व्युनत्ति
न वृष्टिः यवम् ।

सारे भुवन लोक (ब्रह्माण्ड) के
एकमात्र शाशक श्रीराम जी ने वक्षस्थल में मुखवाले
'कबन्ध' नामक राक्षस को वरुण कर सद्गति देकर
स्वर्ग पृथ्वी, पृथ्वी और स्वर्ग के मध्य वाले स्थान को
सुखी बनाया और उस कबन्ध के शोणित से
वहाँ की पृथ्वी को आर्द्र कर दिया
इस तरह कि जैसे वर्षा ऋतु की जलवृष्टि अन्न को
आर्द्र कर देती है ॥ ६३ ॥

पौराणिक उपाख्यान है कि सत्य युग में ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न हुये ऋक्ष-राज जाम्बवान् ने अपनी जाति वालों से अलग कर दिये जाने पर अपने राज्य की प्राप्ति के लिये तपस्या किया, तब दो पुरुषों ने प्रगट होकर जाम्बवान् से कहा कि हम लोगों की सहायता से तुम अपने शत्रुओं को जीत लोगे । जाम्बवान् ने उन दोनों में बड़े पुरुष को अपनी कन्या देने के विचार से जैसे ही कुछ कहना चाहा । वैसे ही दोनों पुरुष अन्तर्धान हो गये । वैवस्वत मन्वन्तर के चौबीसवें त्रेता में सुग्रीव के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुये जाम्बवान् ने उन्हीं दोनों पुरुषों के रूप में श्री राम लक्ष्मण को जब देखा तब पहिचान कर सुग्रीव को सिखलाया कि इन दोनों के साथ मित्रता कर लीजिये ये दोनों पुरुष आपका कार्य सिद्ध कर देंगे । तब सुग्रीव ने जेष्ठ भाई बालि से अपहृत अपने राज्य और अपनी स्त्री की प्राप्ति की इच्छा से श्री हनूमान् जी की मध्यस्थता में श्री राम जी से मैत्री किया । वहाँ सुग्रीव अर्थार्थी भक्त, जाम्बवान् आर्त भक्त और श्री हनूमान् जी निष्काम भक्त बतलाये गये हैं ।

इस कथानक का संकेत श्रुति ने इस मन्त्र में किया है। जाम्बवान् ने श्री राम-लक्ष्मण को देख कर कहा कि—

(६४) भीताय नाधमनाय ऋषये सप्तवध्रये ।

मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथ ॥ ६४ ॥

सप्तवध्रये

नाधमानाय

भीताय

ऋषये

अश्विनौ

मायाभिः

युवाम् वृक्षम्

सं च वि चाचथ ।

ऋ० ५।७८।६

चाम की सात (बाधी) रस्ती अर्थात् त्वक् (ऊपर का चर्म) असृक् (रक्त) मांस, मज्जा (पीप), अस्थि (हड्डी) मेदा और शुक्र (वीर्य) रूप सात चर्म रज्जु से यह शरीर बँधा रहता है ऐसे सप्त बंधन युक्त पशु-ऋक्ष शरीर धारण किये जातिवालों से डरकर अत्यन्त उपतप्त हृदयवाले ऋषियों की तरह तप करनेवाले मेरे ऊपर कृपा करने के लिये अश्विनी कुमारों के समान सुन्दर माया (इच्छा) कर बीरवेष बनाये हुये आप दोनों मेरे तपस्थान पर गये थे और मेरे ऊपर कृपा कर वरदान देकर बहुत शीघ्र ही अन्तर्धान भी हो गये थे ।

इस मन्त्र से यह भी जाना गया कि सकाम भक्तों की गति विलम्ब से होती है। यद्यपि—“लोकतः परमार्थतोऽपि सकृद् विभातो ह्येषः ।”

इस श्रुति के अनुसार एक बार भी भगवद्दर्शन हो जाने से फिर वियोग नहीं होता तब भी भगवत्प्रीत्यर्थ जाम्बवान् से बहुत दिन तक वियोग रहा और श्री रामावतार में तो एक पत्नी व्रत होने से जाम्बवान् की कन्या अब भी स्वीकार नहीं की गयी। हाँ वैवस्वत मनु के अट्टाईसवें द्वापर के अन्त में श्री कृष्णावतार में जाम्बवती को पत्नी बनाकर भगवान् जाम्बवान् के जमाता के। देवयोनि होने से जाम्बवती सदैव युवती ही बनी रहीं ॥ ६४ ॥

स्वार्थ में तत्पर होने से सुग्रीव ने अपने भृत्य द्वारा श्री राम जी से कह-
लवाया कि आप—

(६५) देहि मे ददामिते नि मे धेहि नि ते दधे ।

निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥६५॥

(शु० य० ३।५०)

इन् ! मे देहि
ते ददामि
मे निधेहि
ते निदधे च मे
निहारं हरासि
ते निहारं निहराणि
स्वाहा ।

हे राजन् पहिले आप मुझे बचन दीजिये
तब मैं आपको बचन दूँगा
पहिले आप मेरे लिये लड़िये तब मैं
आप के लिये लड़ूँगा । और आप मेरी
वस्तु शत्रु के हाथ से वापस ला दीजिये
तब मैं आपकी वस्तु शत्रु के हाथसे लौटाकर ला दूँगा ।
आपको बारम्बार प्रणाम है ॥ ६५ ॥

इस प्रकार सकाम भक्त जाम्बवान् और सुग्रीव पर कृपा करने के बाद श्री राम जी ने जब निष्काम भक्त हनूमान जी पर कृपा करना चाहा तब श्री हनूमान जी ने प्रार्थना पूर्वक कहा कि—

(६६) एवाहि त्वामृतुथा यात यन्तं मघा विप्रेभ्यो ददत्तं शृणोमि ।

किं ते ब्राह्मणो गृहते सखायो ये त्वा या निदधुः कामामन्द्र ! ॥६६॥

(ऋ० ५।३।१२)

इन्द्र !
एवाहि त्वाम्
ऋतुथा
यात यन्तम्
विप्रेभ्यः मघा
ददत्
शृणोमि
किम् ते

हे परमैश्वर्य शालिन् प्रभो !
इस प्रकार शास्त्र रीति से निश्चित रूपेण आपको
समय समय पर प्रत्येक ऋतु में जो सकाम पुरुष
यज्ञादि में पूजन कर आपको प्रसन्न करने का यत्न
स्वयं करते हैं और दूसरों से कराते हैं तब उस
सत्प्रयत्न के फल स्वरूप सर्वान्तर्यामी आप
उन्हें श्रद्धावानों से धन
देते अर्थात् दिलवा देते हैं ।
ऐसा शास्त्रों और गुरुओं से सुनता हूँ । परन्तु
क्या मेरे समान् आपके अनन्य भक्त

ब्राह्मणः
ग्रहते
ये सखायः
या त्वा
कामम् निदधुः ।

ब्रह्म निष्ठ पुरुष उस धन को
ग्रहण करते हैं (प्रत्युत वे देने पर भी नहीं लेते) अतः
जो आपके निष्काम भक्त हैं वे
अपनी जितनी इच्छाये हैं सभी को आपके चरणों में
सर्वथा (अच्छी तरह) अर्पण कर देते हैं अर्थात् वे
चाहते हैं कि मैं ही प्रभु की सब सेवा किया करूँ और
कोई दूसरी वस्तु आपसे नहीं चाहते ॥६६॥

(६७) कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमंतु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृडाति कतमो नो मयस्करत् कतम ऊती अभ्याववर्तति ॥६७॥
(ऋ० १०।६४।१)

शृण्वताम्
देवानाम्
कथा कथमस्य
सुमन्तु मनामहे ।
यामनि कः
नः मृडाति कतम
मयस्करत्
ऊतीः अभ्यावर्तति ।

मेरी बात सुनने में चित्त लगाये हुए इन
देवताओं के अवतार स्वरूप बानरों को मैं
किस प्रकार से किन शब्दों से अपना मन्तव्य
सुन्दर तरह से समझा दूँ ।
प्राण प्रिया सीता को खोजकर कौन सुकृती
मुझे सुखी करेगा ? और कौन बीर
शत्रु के घर में पड़ी हुई
मेरी विभूति प्रिया सीता जी को लौटा लायेगा ? ।

जब बानर गण सुगीव की आज्ञा से आ गये तब उन्हें उत्साहित करने के
लिये श्री राम जी ने नरनाम्य पूर्यर्थ उपर्युक्त प्रकार से विलाप किया ॥६७॥

(६८) क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
नमर्हिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधिकामा अयंसत ॥६८॥
(ऋ० १०।६४।२)

क्रतवः
क्रतूयन्ति

साक्षात् सत्य संकल्प ही
मेरी सेवा करने की इच्छा करते हैं परन्तु सत्य
सङ्कल्प प्रथम

धीतयः, हृत्सु वेनाः
आ दिशः पतयन्ति
एभ्यः मर्डिता
न । मे अधिकांमाः
देवेषु अयंसत् ।

बुद्धिमानों के हृदय में ही शोभित होते हैं तत्पश्चात्
सम्पूर्ण दिशाओं में जाते हैं ।

इन बानरों के अतिरिक्त दूसरा कोई सुख देने वाला
इस समय नहीं है । मेरा अनेक मनोरथ
इन देवावतार बानरों से ही पूरा होगा ॥६८॥

इस प्रकार विचार कर श्रीराम जी ने बानरों से कहा कि—

(६९) तेनो अर्वन्तो हवन श्रुतो हवं विश्वे शण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसा ताविवत्सनामहो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥६९॥
(ऋ० १०।६४।६ शु० य० ६।१७, तै० आ० १।७।८२)

ये बाजिनः अर्वन्ति
मितद्रवः हवनश्रुतः
त्मना
सहस्रसा
मेधसा
तौ इव
समिथेषु महः
वनम् जभ्रिरे

जो बानर गण बहुत शीघ्रगामी हैं और
जो कम दौड़ने वाले हैं, जो बहुत सुनने वाले हैं,
जो अपने परिवार एवं प्रेमियों को
हजारों प्रकार के सुख देने वाले हैं और
यज्ञ में जैसे खुले हाथों धन लुटाया जाता है
वैसे दानशील उन्मुक्त दोनों हाथों की तरह
संग्राममें शत्रुओंको समूल विनाश करके उनकी महती
सम्पत्ति को हरण कर लेने वाले अर्थात् युद्ध की सभी
कलाओं में निपुण अति प्रवीण हैं ।

ते विश्वे नः
हवम् शण्वन्तु ।

वे सब बानर वीर गण हमारे
आवाहन को दत्तचित्त होकर सुनै ॥६९॥

(७०) प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥१००॥

ऋ० १०।६४।७ ॥

प्र वः पुरन्धिम्
रथयुजम्
वायुम्

ऐ बानर वीरो ! तुम लोगों के सामने
जो देह धारण किये (बानर बने हुये)
ये पवनदेव हनूमान् जी के रूप में विराजमान हैं,

सख्याय
पूषणम्
स्तोमैः कृणुध्वम्; हि
सवितुः देवस्य
ते सचितः सचेतसः
सवोमनि, क्रतुम्
सचन्ते ।

तुम लोग और बानर राज सुग्रीव का मित्र जो मैं
उस मेरे कार्य की सिद्धि के लिये इन्हीं वायु पुत्र को
स्तुति-प्रार्थना द्वारा तैयार करो, क्योंकि
सूर्य भगवान् की तथा अन्य देवगणों की स्तुति करने
से ही वे देवगण सहृदय, चेतन पुरुषों के
लौकिक कार्य के, सङ्कल्प को
पूरा कर देते हैं अर्थात् की गई स्तुति ही सज्जनों को
सत्कार्य में प्रेरित करती है ॥ १०० ॥

(७१) त्रिःसप्त सखा नद्योमहीरपो वनस्पतीन् पर्वताँ अग्निमूतये ।

कृशानुमस्तून् तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ १०१ ॥

ऋ० १०।६।८ ॥

त्रिः सप्त सखा
नद्यः महीः अपः
वनस्पतीन्, पर्वतान्,
अग्निम्
कृशानुम्, अस्तून्
तिष्यम्
सधस्थे
आ
रुद्रम्

तीनों लोक, सातों द्वीप में बहती धार वाली
नदियाँ, पृथ्वी, समुद्र
वृक्षगण, पहाड़ समूह,
बड़वानल और
प्रलयानल इन सबको नाश करने वाले
नक्षत्र मण्डल के सहित स्थित सर्व लोकों के
आवास स्थान ब्रह्माण्ड में
सब ओर से स्थित अनेक वस्तु समूह के प्रति
शब्द करते हुये जो चलता है अर्थात् गर्जते हुये
समस्त ब्रह्माण्ड पिण्ड को अक्रान्त करने में परम
समर्थ-महाशक्तिशाली

रुद्रेषु रुद्रः
रुद्रियम्
ऊतये रुद्रम्
हवामहे ।

सम्पूर्ण रुद्रों में महारुद्रावतार श्री हनूमान् जी ही
रौद्र कर्म अर्थात् शत्रु संहार में परम समर्थ हैं अतः
अपने कार्य के लिये रुद्र-हनूमान् जी को ही प्रधान
रूप से आवाहन मैं करता हूँ अर्थात् चुनता हूँ ।

‘महावीर विनवौ हनुमाना । राम जासु यश आपु बखाना ॥’

महावीर विदित बरायो रघुबीर को’ ॥ १०१ ॥

इस प्रकार प्रशंसा किये गये हनुमान जी का वर्णन करते हुए श्रुति कहती है कि—

(७२) अपस्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विन्तु ।

नाना हनू विभृते सम्भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥१०२॥

(ऋ० १०। ७६।१, नि० ६।४)

अस्य महतो:

इन श्री हनुमान जी के बहुत बड़े

महित्वम्

माहात्म्य को अनेक प्रकार से

अपश्यम्

अनेकों बार अनेकों कल्पों में मैं = श्रुति ने देखा है ।

अस्य मर्त्यासु

इनके मर्त्यलोक के समुद्र को उल्लंघन करते हुए

विन्तु । अस्य हनू

रूप को देखा है । तथा इनकी चिबुक में शत्रुओं को

नाना

अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का अलग अलग

विभृते

प्रहार करते देखा परन्तु इनके फैले हुये मुख पर

बज्रादि महान् अस्त्रों को भी निष्फल होते देखा है ।

असिन्वती

बिना किसी प्रकार का स्पर्श किये ही इनकी

प्सती

जिह्वा लपलपाकर अर्थात् प्रश्नाँस के वेग से ही

भूरि अत्तः

सारे ब्रह्माण्ड को भक्षण करते हुये

संभरेते ।

सम्पूर्णाविश्व का संहार महाप्रलय कर देती है ॥१०२॥

(७३) गुहा शिरो निहित मृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।

अत्राण्यस्मै षड्भिः संभरंत्युत्तान हस्ता नमसाऽधिविन्तु ॥१०३॥

(ऋ० १०। ७६।२)

शिरः गुहा

श्री हनुमान् जी का शीश गुहा (गुफा में)

निहितम् ।

छिपा है अर्थात् बानर रूप होने से शिर छोटा दिख-

लाई देता है । वास्तविक शिर तो बहुत बड़ा है ।

अक्षी ऋधक्

दोनों आँखें गम्भीर नेत्रगोलक में निहित हैं ।

असिन्वन् जिहया
वनानि
अति । अस्मै
अत्राणि षड्भिः
सन्भरन्ति

केवल मुँह फैलाकर जिह्वा लम्बी करके ही
जल समूह अथवा जङ्गल से जायमान फलों का
भक्षण कर डालते हैं । इनके भोजन पात्र को निरन्तर
अन्नादि भोजन पदार्थों से छू दूत समूह
नित्य पूरा किये (भरे) रहते हैं । (श्री सीताजी की
आज्ञा से छू यत्नों के छू समूह-भुण्ड अर्थात् छत्तीस
यत्न नित्य श्री हनुमान जी की सेवा में रहते हैं, ऐसा
भारत में देखा जाता है ।)

अधि विन्तु

नमसा, उत्तान हस्ताः । नमस्कार के लिये हरदम, हाथ जोड़े रहते हैं अर्थात्
प्रणाम कर श्री हनुमान जी को प्रसन्न करते हैं ॥१०३॥

(८२) सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत् ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे बाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥१०४॥
(ऋ० ६।६६।७)

सिन्धोः प्रवणे

इव

वृष च्युताः

आशवः

निम्ने

वृष च्युताः

सोम ! नः

निवेशे शम्

बड़ी नदी के प्रवाह और भरने के प्रपात में
पड़ा हुआ काष्ठादि जिस प्रकार अपने स्थान से भ्रष्ट
हो जाता है वैसे ही, और
उदण्ड पुरुष जैसे धर्म से भ्रष्ट हो जाता है वैसे ही
शीघ्रगामी बानर गण भी
नीचे अर्थात् स्वयं प्रभा की मायामय भू-गर्भ में स्थित
गुफा (तलगृह = तिलस्म) में जाने से
महीना भर में श्री सीता जी की सुधि लेकर लौटने
की अपनी प्रतिज्ञा बद्ध सेवा से भ्रष्ट हो जाने से सभी
दुःखी थे तत्पश्चात् उन लोगोंने भगवत्स्तुतिकी कि-
हे मौक्षामृतसाविन् प्रभो । हम लोगों के परम संबंधी
श्रीरामजी की गृहणी श्रीसीताजी का कल्याण हो तथा

नः द्विपदे

हम लोगों के संबंधी दो पाँव वाले श्री राम जी,
श्री लक्ष्मण जी और

चतुष्पदे शम्

चार पाँव वाले बानर भालुओं में सदैव तरह तरह
का कल्याण

तिष्ठन्तु अस्मे बाजाः

स्थिर रहे । हम लोगों में संग्राम भूमि में

कृष्टयः

शत्रुओं के कर्षण (विदीर्ण) करने की शक्तियाँ

तिष्ठन्तु

बनी रहे । इस प्रकार प्रार्थना करने पर उस विवर से
बानर गण सब प्रकार से

मदासः गातुम्

भगवत्कृपा प्राप्त होने पर पृथ्वी के ऊपर (खुले मैदान
में) आ गये ॥ १०४ ॥

उस बिल (तलगृह) से निकलने पर—

(८३) शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि ।

जुष्टो मित्राय वरुणाय बायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः॥१०५॥

(ऋ० ६।७।८)

शुचिः

स्वाभाविक शुद्ध और निष्पाप होने पर भी

अरेपसम्

बिबशता से आज्ञा भङ्गरूपी अपराध हो जाने से

तन्वम् पुनानः

शरीर को व्रत उपवास से शुद्ध करते हुये

हरिः सानवि अव्ये

बानरगण सुमेरु शिखर के सङ्गम पर स्थित

नि

ब्रह्मलोक की प्राप्ति के निमित्त

अधाविष्ट

दौड़ने लगे । तात्पर्य यह कि प्रतिज्ञा भंग के भय से
भयभीत हुये बानरगण अनशन द्वारा अभय स्थान
ब्रह्मलोक जाने की जल्दी करने लगे उसी समय सुना
और देखा (वाल्मीकीय रामायण में सम्पाती और
जटायु की माता का नाम श्येनी लिखा है । इसीसे
सम्पाती और जटायु श्येन भी कहे जा सकते हैं और
आथर्वणीय श्रुति का कहना है कि “श्येनाविव

सुकर्मभिः
त्रिधातुः
मधु, क्रियते

त्रिधातुः मित्राय
वरुणाय वायवे
जुष्टः ।

सम्पातिनाविषयत् ।” श्येन = गृद्ध पक्षी की आकृति
जैसे बड़े भारी सम्पाती को बानरों ने देखा ।) कि
पुण्यशाली गृद्धराज सम्पाती ने
बात-पित्त-कफात्मक बानर शरीर को
अपना भोजन, निश्चित किया अर्थात् उपवास से
अत्यन्त क्षणिक इन बानरों में जो जो मरता जावेगा
उसे खाता जाऊँगा ।

बानर शरीर से अग्निदेव (जठराग्नि)
वरुण = अन्नमय कोश और वायु = प्राणमय कोश भी
अच्छी तरह तृप्त होंगे ऐसा वह गृद्ध कह रहा है ।

अर्थात् सुपक्व आहार मिलने से जठर में स्थित अग्नि देव तृप्त होंगे,
सुन्दर रस खाने से रस के देवता वरुण देव प्रसन्न होकर अन्नमय कोश को
परिपुष्ट करेंगे और सुन्दर स्पर्श और गन्ध से वायु देवता तृप्त होकर प्राणमय
कोश को परिपुष्ट करेंगे । इस प्रकार बानरों को खाने से मैं भी शुद्ध एवं परि-
पुष्ट हो जाऊँगा । यही सम्पाती का आशय है । स्मरण रहे कि जङ्गम प्राणी
का मांस गोध के लिये ही विहित है, मनुष्यों के लिये नहीं ।

बाहर होइ देखि बहु कीशा । मोहिं अहार दीन जगदीशा ॥

आज सबनि कहँ भक्षण करऊँ ॥ १०५ ॥

तब बानरगण सम्पाती को मारने की इच्छा से आते हुये जानकर पुनः
स्तुति ईश्वर की करने लगे कि—

(८४) पवस्व सोम देववीतये बृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमाविश ।

पुरा नो बाधाद्दुरिताति पारय क्षेत्रीविद्धि दिश आहा विपृच्छते ॥ १०६

ऋ० ६।७।६

सोम !
वृषा देववीतये
पवस्व इन्द्रस्य

हे चन्द्रवत् प्रिय दर्शिन प्रभो ! आप अभिमत फल
वर्षने = देने वाले एवं देवतों के रक्षक हैं । अतः
हम लोगों की रक्षा कीजिये और परमेश्वर्यमान्

हार्दि सोमधानम्

राम जी के हृदय में स्थित और श्री रामजी को सोम यज्ञ में अधिकार प्राप्त कराने वाली उनकी पत्नी श्री सीता जी को प्राप्त करा दीजिये ।

पुरा नः

पहले हमलोगों को

बाधात्

प्राण बाधा स्वरूप इस पक्षी-गृद्ध से और

दुरित

अकाल मृत्यु रूप पाप आदि सङ्कटों से

अति पारय ।

पार कर दीजिये । इस प्रकार भगवत्प्रार्थना करके जटायु की प्रशंसा करने लगे कि

हि

प्रसिद्ध तीक्ष्ण दृष्टि वाला जटायु नामक गृद्ध

क्षेत्रीवित्

श्री सीता जी का पता जानता था । उसने ही

वि पृच्छते

सीता जी का समाचार पूँछने पर राम जी को

दिशः आह ।

इस दक्षिण दिशा को बतलाया था ।

अहा एक तो वह श्री राम जी के लिये ही मरा पुनः मरते मरते भी श्री राम जी का कुछ कार्य कर ही गया । हम लोग तो व्यर्थ ही मर रहे हैं । “धन्य जटायु सरिस कोउ नहीं ।”

राम काज कारण तनु त्यागी । हरिपुर गथउ परम बड़ भागी ॥१०६॥

(८५) हितो न सप्तिरभिवाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमापवस्व ।

नावा न सिन्धुमतिपर्षि विद्राञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः ॥१०७॥

(ऋ० ६।७०।१०)

इन्दो

हे अमृतानन्द दायक श्री रामचन्द्र जी !

हितः सप्तिः न

स्वामिहितकारी, चतुर अश्व जैसे

वाजम् अभि

संग्राम में जाता है वैसे आप भी संग्रामाभिमुख होकर

अर्ष

स्त्री-हारी शत्रु को मारकर पत्नी के सहित

इन्द्रस्य

अपने हविर्भोक्ता रूप से अपने ऐश्वर्यमान रूप के

जठरम् आपवस्व ।

उदर को तृप्त कीजिये अर्थात् सोमयागादि कीजिये ।

नावा न सिन्धुम्

नाविक नौका से जैसे नदी को पार करता है

अतिपर्वि ।

विद्वान्

शूरः न युध्यन्

नः निदः

स्थः अत्र ।

वैसे आप हमलोगों को संकटों से पार कीजिये ।

आप तो हमलोगों के चित्त को जानते हैं कि हमलोग महान् वीरों के समान लड़ने वाले हैं । परन्तु कार्य सिद्धि से निराश होकर ही 'कार्य साधयामि वा शरीरं पातयामि वा ।' हमलोग अनशन व्रत ले चुके हैं इसलिये अनुष्ठान् की सिद्धि के पूर्व लड़ना अनुचित समझकर इस गृद्ध सम्पाती से लड़ेंगे नहीं । अतः ये बेचारे बानरगण व्यर्थ मर गये, ऐसी

हमारी निन्दा करने वाले जो राक्षसगण हमारे शत्रु हैं उनका विनाश कीजिये और व्यर्थ की निन्दा से हमारी रक्षा कीजिये ॥ १०७ ॥

इसके बाद जब सम्पाती ने उन बानरों का परिचय पूँछा तो जाम्बवान् ने संक्षिप्त रूप से कुछ प्रधान प्रधान बानरों का परिचय बताया कि —

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी, बभ्रुः सौम्यः पौष्णः, श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः, शिल्पो वैश्वदेवः, ऐन्द्रोऽरुणो, मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः, संहितोऽधो रामः सावित्रो, वारुणः कृष्णः, एकशितिपात्पेतवः ॥१०८॥ शु० य० २६।५८

सारस्वती कृष्णग्रीवः महाविद्वान्, श्यामकण्ठ वाले, सघन पुष्ट और सुन्दर मेषी भेड़ के बालों के समान बालों वाले ये आग्नेयः । अग्नि के पुत्र नील हैं । 'पावकस्य सुतः श्री मान्नी-

लोऽग्निसदृशः प्रभः । (वाल्मी० १।१७।१३)

बभ्रुः सौम्यः पौष्णः पिंगलवर्ण और सौम्य स्वभाव वाले ये कुबेर के पुत्र गन्धमादन हैं । 'धनदस्य सुतः श्रीमान् बानरो गन्धमादनः ॥ १२ ॥

श्यामः शितिपृष्ठः सर्वांगश्याम परन्तु पीठ पर धवल धारी वाले ये बृहस्पति के पुत्र तार हैं । 'बृहस्पतिस्त्वजनयत्तारं नाम महाकपिम् ॥ ११ ॥

बार्हस्पत्यः ।

शिल्पः वैश्वेदेवः ।

शिल्प कर्म में परम प्रवीण ये विश्वकर्मा के पुत्र नल हैं । 'विश्वकर्मात्वजनयन्नलं नाम महाकपिम् ॥१५॥

ऐन्द्रः अरुणः ।

इन्द्रके पौत्र; बालिके पुत्र ये लालरङ्गवाले अङ्गद हैं ।

ऐन्द्राग्नः ।

इन्द्र और अग्नि दोनों के समान कान्तिवाले

कल्माषः मारुतः ।

कपिश-गेरू के रङ्ग वाले ये पवन पुत्र हनुमान हैं और

कृष्णः बारुणः ।

अत्यन्त काले रङ्ग वाले ये बरुण के पुत्र सुषेण हैं ।

बरुणो जनयामास सुषेणं नाम बानरम् ॥ १५ ॥

एकशितिपात् पेतवः ।

ये वीर सब एक एक छलांग में बड़ी दूर जानेवाले अर्थात् बड़े वेग वाले हैं 'अप्रमेयवला वीरा विक्रान्ता कामरूपिणः ॥१७॥

संहितः; सावित्र्यः रामः
अधः ।

ये बानर वीर मिलकर; सूर्यवंशोद्भव श्री राम जी के नीचे अर्थात् आधीन हैं ॥१०८॥

तब बानरगणों को परम स्वामिभक्त जानकर सम्पाति ने भी उनपर क्रुपा किया और कहा कि—

(८६) आ दक्षिणाऽऽसृज्यते शुष्म्या सदंवेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः ।

हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्बोर्ब्रह्म निर्णिजे ॥१०९॥

(ऋ० ६।७।११)

शुष्मी, हरिः

जो बलवान्, बानर हो वह यहाँ से

आ दक्षिणा

एकदम सीधे, दक्षिणा दिशा (लङ्का) में जाकर

आ सृज्यते

अच्छी तरह श्री सीताजी का अन्वेषण करे । ऐसा

सदंवेति

करने से वह अच्छी तरह (सुगमता पूर्वक)

श्रीराम जी की गृहरूप पत्नी को प्राप्त करेगा ।

सीताजी को प्राप्त करके

जागृविः द्रुहः

सावधानी से रहकर द्रोह करनेवाले

रक्षसः पाति ।

राक्षस रावण से अपनी रक्षा करे । पुनः

ओपशम्

सबको धारण करने वाली (अपनी इच्छा से)

वेदों में राम कथा

नमः, हरिः
पयः कृणुते ।

क्षत्रोः
उपस्तिरे
ब्रह्म
निर्णिजे ।

नर शरीरधारी मायामयी सीताजी को, वह बानर अपने ऊपर स्निग्ध (दयालु) करे । अर्थात् जैसे गाय अपने बच्चे को देखकर द्रवित हो जाती है वैसे ही उसको देखकर सीता जी दया से द्रवित हो जायँ जिससे कि “विषस्यविषमौषधम् ।” कण्टकेनैव कण्टकं निष्कासयति । न्यायानुसार

बानरी और राक्षसी दोनों सैन्यों का संग्राम अग्नि में होम हो जाय । इसका प्रयोजन यह है कि ब्रह्माण्डान्तर्गत समस्त सज्जनों का इसीमें कल्याण है । इससे वह ध्वनित हुआ कि सत्व प्रधान होने से बानरगण युद्ध में मर जाने से भी जीवित हो जायेंगे और ऐसा ही हुआ भी ॥ १०६ ॥

(८७) प्रकृष्टि हेव शूष एति रोरुवदसूर्यं वर्णं निरिणीते अस्य तम् ।

जहाति बत्रिं पितुरेति निष्कृतिमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥११०॥

(ऋ० ६।७।१२)

शूषः
प्रकृष्टि
हा इव
एति । अस्य
वर्णम् असूर्यम्
तम्, निरिणीते
रोरुवत् ।
पितुः निष्कृतिम्
एति । तना
निर्णिजम्
उप प्रुतम् कृणुते

श्री सीतान्वेषण में नियुक्त किये गये हनुमान जी ने लोकों को पीड़ा देनेवाले राक्षसों को प्रकर्ष रूप से मारने के लिये उनके प्रचण्ड काल के समान गमन किया । इन लोकोत्पीडक रावणादि राक्षसों के शरीर का रंग काला आकृति अत्यन्त क्रूर थी । उस प्रसिद्ध राक्षस रावण को, जाते-जाते ही हनुमान् जी ने अपने गर्जना मात्र से दीन = त्रसित-रुला दिया और अपने पिता वायु का निश्चित किया हुआ वेग प्राप्त किया । तब विस्तार—बड़े विकराल रूप से तथा बाह्याभ्यन्तर शुद्ध होकर श्री सीताजी के पास जाने के लिये समुद्रका उलङ्घन किया और लङ्का विजय के बाद

विव्रम् ।

आवरणस्वरूप अल्प तुच्छ बानर रूप त्यागकर
सुन्दर उत्तम रूप बना लिया ॥ ११० ॥

हनुमदादि सब बानर बीरा । धरे मनोहर मनुज शरीरा ॥

(८८) अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्बृषायते नभसा वेपते मती ।

स मोदते नसते साधते गिरा नेनित्ते अप्सु यजते परीमणि ॥ १११ ॥

(ऋ० ६।७।१३)

सः अद्रिभिः

सुतः

गभस्तिभिः, पवते*

बृषायते

नभसा वेपते

मती

मोदते । नसते

साधते अप्सु

ये हनुमान जी समुद्र से निकले मैनाक पर्वत द्वारा
पुत्र सम्बोधन पूर्वक विश्राम करने के लिये कहे जाने
पर उसे हाथ की अँगुलियों से स्पर्श कर चले गये
उसके शिखर पर बैठकर विश्राम नहीं किया क्योंकि
महारुद्रावतार होने से अपने ही तेज से प्रकाशित
होते हैं अतः आकाश मार्ग से ही जाते हैं,
परम मेधावी श्री हनुमान जी मैनाक से
बड़े प्रसन्न हुए । वचन मात्र से
सत्कार-प्रणाम इसलिये किया कि एक तो हमारे
काम में सहायता देता है, दूसरे सर्व नद नदी पति
परम तीर्थरूप समुद्र के जल में रहकर
अपने को पवित्र करता रहता है, तथा महात्मा लोग
सर्व देहों में अन्तर्यामी रूप अपने प्रभु ही को देखकर
सबका सत्कार करते हैं ॥ १११ ॥

नेनित्ते

परीमणि यजते ।

(८९) परिद्युक्तं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिंचन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।

आ यस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि मूर्द्धञ्छ्रीणंत्यग्रियं वरीमभिः ॥ ११२ ॥

(ऋ० ६।७।१४)

सहस्य

श्री हनुमान् जी ने अपने वेग से खूब बढ़ते हुये

* तै मैनाक होहि श्रमहारी । हनुमान तेहि परसा पुनि तेहि कीन्ह प्रणाम ।”

परिचुक्षम् आवृधम्

पर्वत

मध्वः

परिचिचति । यस्मिन्

आ सुहुतादः

ऊर्ध्वनि अग्नियम्

सूक्ष्मनि वरीम्

अग्नि

श्रीणाति

हर्यस्य सक्षणिम्

सम्पूर्णा अन्तरिक्ष को अत्यल्प कर दिया अर्थात्
सम्पूर्णा अन्तरिक्ष लवन करने को परिपूर्ण नहीं हुआ ।
गिरिवर मैनाक के सत्कार करने पर हनुमान् जी को
सामान्य लोगों को मत्त कर देने वाले पुष्पों की वृष्टिसे
देवताओं ने सींच दिया । राक्षसों के जिन घरों में
सभी तरह अच्छी तरह पालित होकर गायें
दूध घृतादि से अत्यन्त श्रेष्ठ और
उच्चस्थान प्राप्त्यर्थ श्रेष्ठ यागादि का साधन होकर
यज्ञादि प्रवर्तित करती हैं, और दुग्ध नहीं देने योग्य
हो जाने पर राक्षस गण

उन गायों को मारकर खा जाते हैं । ऐसे गोभक्षक
राक्षसों के घरों को श्रीहनुमानजी नष्ट कर देना चाहते
हैं, अथवा राक्षसों को नष्ट करके उन घरों को किसी
सज्जन के हाथ में देकर उस घर का अभिभावक बना
देना चाहते हैं ॥ ११२ ॥

(६०) समीं रथं न भुजयोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ ।

जिगादुप अयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥११३॥

(ऋ० ६।७।५)

सः अदितेः

उपस्थे आ

जिगात्

गोः अपीच्य अस्य

पदम्, यत्

मनुथा

वे श्री हनुमान् जी पृथ्वी के एक

निकृष्ट किंवा श्रेष्ठ स्थान लंका में कुशलता पूर्वक

पहुँच गये अर्थात् सभी विघ्न बाधाओं से अनायास

ही उन्मुक्त होकर समुद्र पार लंका में पहुँच गये ।

पृथ्वी के अत्यन्त रमणीय क्षेत्र राक्षसेन्द्र रावण के

स्थान जिस लंका को

माननीय चित्र वाले प्रशंसनीय मनस्वी विश्वकर्मा

किंवा दानव श्रेष्ठ मय ने

अजीजनन् उपजयति । बनाया सँवारा उस लंका के पास जाकर उसे शिथिल कर दिया ।

रथम् न वह इस तरह कि रथ में जुते हुये घोड़े के समान
अहेषत ईम् हिनहिनाती (गर्जती) हुई उस लंका पुरी की
अधिष्ठातृ देवी के

सम् भुजयोः पास जाकर उसको अपने दोनों हाथों की
दशो अँगुलियों से एक साथ ही दोनों हाथों से
ज्रियति । दो थप्पड़ गाल पर मारकर मूर्च्छित कर दिया ११३

(७४) प्रमातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन् कुमारो न वीरुधः प्रसर्पदुर्वीः ।

ससं न पक्वमविदच्छुचं तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अंतः ॥११४॥

(नि० ५।३ ऋ० १०।७६।३)

कुमारः बालक, पुष्पान्वेषण में तत्पर होकर
न वीरुधम् जैसे पुष्पों की क्यारियों में
अपसर्पति घूमता है इसी तरह श्री हनुमान् जी ने
प्र मातुः अखिल ब्रह्माण्ड की जननी श्री सीता जी के पास
प्रतरम्, गुह्यम् अत्यन्त श्रेष्ठ, और गोपनीय संदेश प्राप्त करने की
इच्छन् उर्वीः इच्छा करते हुए पृथ्वी के अनेक देशों में
प्रसर्पत् भ्रमण किया । लंका में जाकर नगर ढूँढ़ने के बाद
श्री सीता जी का दर्शन न पाने पर
शोक करते हुए अन्न धानगेहूँ आदि के
पक्वमाने से पांडुर वर्ण हो गये खेत के
समान स्वर्णमय पांडुर वर्ण वाली लंका पुरी को
रावण के सहित ग्रसन करने अर्थात् सर्वथा नष्ट कर
देने की इच्छा से
पृथ्वी के (लंका की पृथ्वी के) अत्यन्त गुप्त स्थान
पर बैठकर विचार करना आरम्भ किया ॥ ११४ ॥

शुचन्तम् ससम्
पक्वम्
न
रिरिह्वांसम्

अन्ते उपस्थे
रिपः ।

(७५) इषुर्न धन्वन्प्रतिधीयते मतिर्बत्सो न मातुरुपसर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य ब्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥११५॥
(ऋ० ६।६६।१)

न धन्वनि इषुः
प्रतिधीयते* मतिः
जैसे धनुष पर रखकर बाण
छोड़ा जाता है वैसे अत्यन्त मेधावी हनुमान जी भी
रामजी के द्वारा सीता जी का पता लगाने को आकाश
मार्ग से भेजे गये और जैसे श्रीरामबाण की गति
अप्रतिहत है ऐसे हनुमान जी की गति आकाशमार्ग
में भी अप्रतिहत है और
जैसे गाय का बच्चा बन्धन छूटते ही गाय के पास
स्तन पान करने की आशा से दौड़ा जाता है
और गाय बच्चे के आगे होकर बच्चे को
दूध की स्थूल धारा से परिपूर्ण कर देती है जैसे
वैसे ही माता सीता जी के पास स्तन पायी बालक
के समान सरल एवं निर्भय होकर हनुमानजी श्री
रामजी द्वारा भेजने से गये ।

माता श्री जानकी जी ने हनुमान जी को उनकी अभिलषित वाणी
(मनोवाञ्छित आशीर्वाद) से सन्तुष्ट किया । यदि कोई शङ्का करे कि
अत्यन्त सुन्दरी श्री सीता जी को देखकर श्री हनुमान जी के चित्त में विकार
क्यों नहीं हुआ ? तब इसका समाधान यह है कि एक तो दर्शन के पूर्व से ही
मातृभाव होना और दूसरा भाव श्रुति बतलाती है कि—

सोमः इष्यते
ब्रतेषु
सोमयागादि करके लोग जिस चित्त शुद्धि को चाहते हैं
वह साधन व्रतादि के द्वारा प्राप्त होने वाली
चित्त शुद्धि तो
इन श्री हनुमान जी की स्वाभाविक सम्पत्ति है ॥११५॥
अस्य मतिः ।

*जिमि अमोघ रघुपति कर बाना । ताहि भाँति चला हनुमाना ॥

(७६) उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मंद्राजनी चोदते अंतरासनि ।
 पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परिवारमर्षति ॥११६॥
 (साम १०।२।२, ऋ० ६।६।२)

मतिः परममेधावी हनुमान जी रावण की बाटिका में
 सीता जी के
 उपः पृच्यते समीप स्थित हो गये और वहीं से सीताजी के कानों में
 मधु सिच्यते* श्रीराम कथा रूपी अमृत ढालने सुनाने लगे । उस
 रामकथा का वर्णन अगले मन्त्र में है । हनुमान जी
 के प्रति माता को विश्वास हो गया
 अन्तरासनि मन्द्राजनि तब सीताजी के हृदय में स्थित बाग्देवी ने बोलने को
 चोदते प्रेरित किया, बाग्देवी से प्रेरित होने पर पूँछा कि
 पवमानः पाप नष्टकर पवित्रकारक श्री रामजी एक होते हुये भी
 प्रघ्नताम् संहार-प्रलय करनेवाले काल-आग्नि रुद्र आदि के
 संतनिः इव बहुत समुदाय सरीखे मालूम पड़ने लगते हैं वे
 मधुमान् मेरे प्रति परम प्रीति रखते तो हैं । यदि रखते हैं तो
 द्रप्सः प्रीति रखते हुये भी उद्दण्ड अधर्मी रावण के
 परिवारम् समस्त परिवार के पास उन्हीं कालाग्नि रुद्रादि रूप से
 अर्षति । क्या आयेंगे ? अर्थात् सपरिवार रावण को भस्म
 करने के लिये क्या श्री रामजा लङ्का आयेंगे ॥११६॥

श्री हनुमान जी ने जो अमृत कथा श्री जानकी जी को सुनाया था श्रुति
 उसका संकेत करती है कि—

(७७) सम्राजो ये सुवृद्धो यज्ञमाययुरपरिहृता दधिरे दिविक्षयम् ।
 ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥११७॥
 (ऋ० १०।६३।५)

ये सम्राजः जो रामजी चक्रवर्ती श्री दशरथ जी के

* 'रामचन्द्र गुण वरणै लागा ।' 'श्रवणामृत जे कथा सुनाई ॥'

वेदों में राम कथा

सुबृद्धः
यज्ञम्
आययुः
अपरिहृता,
दिवि क्षयंदधिरे
तान् आदित्यान्
आ नमसा
विवास* महो
सुवृक्तिभिः अदितिम्
स्वस्तये ।

बड़े हुये प्रेम के आधार भूत थे, उन्होंने
ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और राजर्षि जनेक के यज्ञ में
आकर उनके यज्ञों को निर्विघ्न समाप्त कराया
पुनः जिन्होंने शुद्ध सरल पुण्य तप से निमित्त
परशुरामजी के स्वर्ग को नाश कर दिया है ।
उन आदित्य वंशीय श्रीराम लक्ष्मणादि के
अत्यन्त समीप में नमस्कार पूर्वक सेवा करते हुये
मैं दासभाव से रहता हूँ । अत्यन्त संकटों को जो आप
सह रही हैं इसलिये पृथ्वी एवं पृथ्वी पुत्री आपके
कल्याण के लिये अर्थात् आप अब श्रीराम जी पास
पहुँच चले इसलिये मैं आया हूँ ॥ ११७ ॥

(६१) श्येनो न योनिं सदनं धियाकृतं हिरण्ययमासदं देव एषति ।

एरिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराऽश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥११८॥

(ऋ० ६।७।१।६)

न श्येनः योनिम्
एषति । देवः
धियाकृतम्
सदनम्
यज्ञियः अश्वः
देवान् अप्येति
न हिरण्ययम्
आसदम्, बर्हिषि
प्रियम् गिरा

जैसे पक्षी आकाश में उड़कर घोंसले में
जाता है । उसी तरह महारुद्र श्रहनुमान् जी
ब्रह्म सङ्कल्प मात्र से निर्मित
श्री राम गृहणी सीता जी के पास आये ।
जैसे अश्वमेध यज्ञ का अभिमन्त्रित घाड़ा
देवताओं को प्राप्त हाकर उन्हें प्रसन्न कर देता है
वैसे ही राम जी की भेजो हुई स्वर्ण मुद्रिका ने भी
सीता जी को प्रसन्न कर दिया । यज्ञ पूर्ण हो जाने
पर जैसे देवताओं की आशीर्वादात्मक प्रिय वाणी
यजमान् को हर्षित करती है उसी प्रकार अभिज्ञानांगु-

* रामदूत मैं मातु जानकी । सत्य शपथ करणानिधान की ॥

लीयक से सीता जी को हर्षित कर हनुमान् जी ने बोलने के लिये—जानकी जी को

एरिणन्ति ।

स्वाभिमुख किया । जब सीताजी हनुमान्जी की ओर मुँह करके बैठीं तब हनुमान् जी कहने लगे ॥११६॥

(६२) परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।

सहस्राणीतिर्यतिः परायतीरेभो न पूर्वीरुषसो विराजति ॥११६॥

(ऋ० ६।७।७)

दिवः परः

जो द्युलोक से भी सर्वथा परे हैं 'परोदिवो ज्योतिर्दीप्यते ।' (छा० उ० ३।१३।७)

आ, व्यक्तः

जो अक्षय लाभ मोक्ष को देने वाले हैं,

अरुषः

पर स्वरूप होने से परम शान्त हैं और

कविः

सर्वज्ञ हैं परन्तु माया-मनुष्य होने के कारण स्त्री हरण हो जाने से गृहस्थधर्म रूप

त्रिपृष्ठः

अर्थ, धर्म, काम किंवा यज्ञ, राज, रति तीनों उनके पीछे पड़ गये हैं अर्थात् बिना धर्मपत्नी के तीनों का पालन नहीं हो रहा है, इसलिये आपके शोक में पृथ्वी के चारों ओर दूँदते हुये आपके बिना

गाः अभि

सब दिशाओं को शून्य देख हा ! हा ! शब्द करते हैं।

अर्पति ।

मन्त्र ११६ के उत्तरार्ध में सीता जी ने पूँछा था कि 'राम जी' मेरे प्रति प्रीति रखते हैं क्या ? इस ११६ वें मन्त्र का पूर्वार्द्ध उसी प्रश्न का उत्तर है । और उसी ११६ वें मन्त्र में ही श्री सीता जी का यह भी प्रश्न था कि 'क्या सपरिवार रावण वधार्थ लंका में 'श्री राम जी' आयेंगे ? उसका ही उत्तर इस ११६ वें मन्त्र का उत्तरार्द्ध है कि—

यतिः

आपकी प्राप्ति के लिये श्री राम जी

सहस्राणि ईतिः

सहस्रों बानर बीरों को एकत्र करके

परा यति

शत्रुओं के साथ पराक्रम करने का उद्योग कर रहे हैं

रेभः न

शब्द करते हुये गरजते हुए मत्त सोंड़ की तरह

पूर्वीः
उषसः
विराजति ।

आपके वियोग काल से हम लोगों से मिलने पर भी राक्षसों पर क्रोधित हुये किष्किन्धा में विराजमान हैं अर्थात् अग्नि सरीखी तीक्ष्ण सेना लाकर समूल शत्रुओं को जला देने में समर्थ हैं केवल आपके निश्चित पता लगने भर की देरी है ।

कल्लुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन सहित अइहैं रघुबीरा ।
निशिचर मारि तुमहि लै जइहैं ॥११६॥

(६३) त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्निधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुतो नसते सङ्गो अग्रया ॥१२०॥
(ऋ ६।७।८)

अस्य वर्णः
त्वेषम् रूपम् कृणुते
सः यत्र समृता
सङ्गः स्निधः
सेधति अशयत्
स्वधया दैव्यम् जनम्
अप्सा याति
सुष्टुतो अग्रया
सम् नसते ।

इन रामजी का जैसा क्षत्रिय वर्ण है उसी के अनुरूप अपना प्रदीत रूप-वीरदर्प युद्ध में प्रकाशित करेंगे वे श्री रामभद्र जी जिस किसी युद्ध क्षेत्र में प्रवृत्त हो जायेंगे उसमें शत्रुओं को सदा के लिये मृत्यु शय्या पर सुला देंगे अर्थात् अवश्य ही सपरिवार रावण को मारेंगे । पितृकार्य एवं देवकार्य सम्पन्न करने के लिये जल का विभाग करते हैं अर्थात् सम्पूर्ण देवपितृ कार्य केवल जलमात्र से करते हुए भी आपकी प्राप्ति के लिये केवल जलमात्र पानकर व्रतानुष्ठान में तत्पर रहते हैं । अपने पास कुछ कन्द मूल फल ही रखने से सुन्दर एवं सुसंस्कृत वाणी युक्त स्तुति मात्र से ही देवता पितरों एवं आगत ऋषियों अतिथियों का आतिथ्य करते हैं ॥ १२० ॥

तुम्हें यहाँ का पता बताकर लङ्का में किसने भेजा है ? श्री सीता जी के ऐसा पूँछने पर श्री हनुमान् जी कहने लगे कि—

(६४) उक्षेव यूथाः परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।

दिव्यः सुपर्णोऽवचक्षत दमां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥१२१॥

ऋ० ६।७।१६॥

उक्षा यूथाः
परियन

अरावीत् ।

सुपर्णः दमाम्
अवचक्षत् ।

सूर्यस्य त्विषीः
अधित

सोमः परि
अधिक्रतुना दिव्यः
जाः पश्येत ।

जैसे रेतः सिंचन की इच्छा से मत्त सांड गायों में घूमता हुआ आवे, उसी तरह सम्पाति नामक गृध्र पक्षी ने बानरों में आकर वचनमृत सेचन करते हुये यह शब्द कहा कि तुम लङ्का में जाओ वहीं अशोक वाटिका में शोकमग्ना सीता जी बैठी हैं । उस सम्पाती का परिचय यह है कि सम्पाती और जटायु दोनों अरुण के पुत्र गृध्र पक्षी के रूप में प्रगट हुये । सुन्दर पङ्ख वाला सम्पाती उड़ते उड़ते सारी पृथ्वी को देखता था । एक बार दोनों भाई सूर्यस्पर्श की इच्छा करके बहुत ऊपर तक उड़ गये तब सम्पाती ने सूर्य नारायण की प्रचण्ड किरणों का स्पर्श किया अर्थात् जटायु को अपने पङ्खों के नीचे कर लेने के कारण वह अधिक जल गया जिससे एक पर्वत पर गिर पड़ा तब उसके पूर्व परिचित अत्रिनांदन चन्द्रमा ऋषि ने भगवद्भक्ति का उपदेश दिया उसी भक्ति के प्रभाव से दिव्य दृष्टि वाला हो गया । जिससे अपने इष्ट देव श्री राम जी की पत्नी आपको देखा (और हम लोगों को बताया) ॥१२१॥

इस प्रकार अपने ऊपर श्री राम जी का परम अनुग्रह सुन कर श्री सीता जी अपनी मनोव्यथा श्री हनुमान् जी को बतलाने लगीं कि—

(६५) अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते ।

उताऽहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२२॥

नि० ६।३१ अथर्व २०।१२६।६ सू० १०।८६।६

अयम् शरारुः
माम् अवीराम्
इव अभिमन्यवे
उत अहं वीरिणी
इन्द्र पत्नी
मरुत्सखा अस्मि

यह दुष्टरावण मुमूर्षु मृत्युमुख में पड़ा हुआ है ।
इसीसे मुझको अबला, अनाथा के
समान समझ कर राजसियों द्वारा दुःख देता है
परन्तु मैं वीरपत्नी हूँ ।
परमैश्वर्यवान् कौशलेन्द्र श्री रामजी की पत्नी हूँ ।
मरुपुत्र तुमको सहायक पा गई हूँ; और इस
सारे संसार से श्रेष्ठ सर्वैश्वर्य सम्पन्न तो मेरे पति श्री
राम जी ही हैं अतः हमें दुःख देने वाला यह रावण
अवश्य मरेगा ॥१२२॥

(६६) सं होत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।

बेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२१॥

ऋ० १०।८६।१०

सं होत्रं वा समनं
नारी पुरा अवगच्छति
ऋतस्य बेधाः
वीरिणी
इन्द्रस्य पत्नी
महीयते स्म
विश्वस्मात् उत्तरः
इन्द्रः ।

अग्नि होत्रादि यज्ञ में अथवा संग्राम में
जो स्त्री पति के पहिले ही जाती है वह
उस कर्म के फल स्वरूप ब्रह्मा जी के द्वारा
वीर पत्नी एवं वीर पुत्र वाली होकर
परमात्मा की स्त्री । “श्रीश्चतेलक्ष्मी च पत्न्यौ” यजु०
श्री और लक्ष्मी के समान् शोभित एवं सम्मानित
होती हैं । इस सारे संसार भर में सबसे श्रेष्ठ
सर्वैश्वर्य सम्पन्न मेरे पति श्री राम जी ही हैं । अर्थात्
अग्नि एवं जटायु से रक्षित मुझे श्री राम जी ही
प्राप्त कर सकते हैं ॥१२३॥

श्री सीताजी के इस प्रकार कहने पर श्री हनुमान जी ने कहा कि गृहस्थ
धर्म का पालन दम्पति (पति-पत्नी दोनों के) द्वारा होता है । दोनों आधा-आधा
अङ्ग हैं अतः दाम्पत्य के आधे अङ्ग स्वरूप—

(६७) इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व ।

संवेशने तन्वश्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ १२४ ॥

ऋ० १०।५६।१, साम १।७।३, अथर्व १८।३।७, तै० ब्रा० ३।७।१३, तै०

आ० ६।३।१।४२

ते इदम् एकम्
एकम् परे
ऊ त

ज्योतिषा
तृतीयेन
संविशस्व

संवेशने तन्वः
चारुः । देवान्
प्रियः
परमे जनित्रे एधि ।

आप का यह विग्रह एक अर्द्धाङ्ग है
एक-दूसरा अर्द्धाङ्ग श्री रामरूप में समुद्र पार है
दोनों अर्द्धाङ्गों को मिलाने के लिये एक तीसरा मैं आ
गया हूँ । अतः आप की ही कृपा से

अत्यन्त कान्तिमान् प्रभावशाली, मुझ
तीसरे की सहायता से आप दोनों अर्द्धाङ्ग
एक स्थान पर हो जाइये अर्थात् आपकी आज्ञा पाते
ही मैं आप को श्रीराम जी के पास पहुँचा दूँ ।

संयोग हो जाने पर अर्द्धाङ्ग पूर्ण होने से दाम्पत्य
परम शोभायमान होगा क्योंकि देवताओं के
अत्यन्त प्रिय एवं यज्ञ करने योग्य श्रीराम जी ही हैं ।
अतः आप अत्यन्त श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के
लिये, रामजी के साथ स्थिर हो जाइये । अर्थात् आप
मेरे कन्धेपर बैठ जाइये मैं आपको ले जाकर रामजी
के साथ स्थिर कर दूँ ॥ १२४ ॥

उपर्युक्त ११६ मन्त्र के उत्तरार्द्ध में श्री सीता जी ने श्री राम जी की कृपा
के सम्बन्ध में पूँछा था अब अपनी शुद्धता दिखलाती हैं ।

(७८) अन्ये बधूयुः पवते परि त्वचि श्रथनीते नम्रीरदिते ऋतंयते ।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥ १२५ ॥
(ऋ० ६।६६।३)

अन्ये
बधूयुः

त्वचि परि

मुझे अपनी पत्नी रूप में प्राप्त करने के लिये
अनेकों भार्या एवं पुत्रों के होते हुए भी दुष्ट कामुक
रावण ने अनेक उपाय किया, जब नहीं पाया तब
उसकी त्वचा = शरीर को पवनदेव खूब अच्छी तरह

पवते	शुद्ध कर रहे हैं अर्थात् रावण सूखकर पीला होता जा रहा है (ऐसा ये राक्षसियाँ कहती हैं) और जब से मुझे लाया है तबसे (ये राक्षसियाँ कहती हैं कि)
अदितेः ऋतंयते	“भूकन्या सीताकी प्राप्ति के लिये रावणने अब मानो ब्रह्मचर्य धारण किया है ; ऐसा इस तरह मालूम पड़ता है कि रावण के परिजनों द्वारा स्वर्ग से चुन चुन कर लाई गई रंभा-उर्वशी आदि सुन्दरी स्त्रियाँ रावण के पास जबरदस्ती
नत्तीः	शिथिल (विवस्त्रा) कर दी जाती हैं तब भी वे स्वर्ग की सुन्दरियाँ रावण को नही रुचतीं ।” यदि कहा जाय कि ऐसी दशा में रावण सीता जी के साथ बलात्कार क्यों नहीं करता तो इसका कारण यह है कि—मन के अधिष्ठाता देवता सोम (चन्द्रमा) अथवा चित्त के देवता विष्णु
श्रथनीते	रावण के अन्तःकरण को बलात्कार करने से आक्रान्त किये = रोके रहते हैं अतः पूर्वकाल में अनेक यज्ञ करने वाले रावण का मद (वेग) दबा रहता है इससे रावण बलात्कार नहीं कर सकता । काम से दीप्यमान् अर्थात् कामाग्नि में जलता हुआ भैसे के समान महान् कामी क्रोधी रावण शोभित नहीं होता दुबला एवं पीला होता जाता है ॥१२५॥
हरिः	(७६) उक्षामिमाति प्रतियन्ति धेनवो देवस्य देवीरुपयन्ति निष्कृतम् । अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं ननित्तं परिसोमो अव्यत ॥१२६॥ (साम ६।३।३ ऋ० ६।६६।४)
अक्रान्	उक्षाः मिमाति

मतवाले साँड़ के समान रावण स्वपत्नी से अन्यत्र रमण करके अपनी आत्मा का नाश करना चाहता है ।

धेनवः

प्रतियन्ति

देवस्य

निष्कृतिम्

ननिक्तम्

देवीः उपयन्ति

अर्जुनम्

अव्ययम्

अति वारम्

अति अक्रमीत्

अत्कम्

गोमः

परि अव्यत ।

गायों के मालिक गायों को साड़ों के पास स्वयं ही जैसे ले जायें वैसे ही रावण के भय से स्वयं देवगण ही देवलोक से बारांगनाओं को रावण के पास लाते हैं परन्तु उर्वशी आदि अप्सरायें रावण के पास से लौट जाती हैं और रावण को अप्सरायें अर्पण करके देवताओं को भी बेगार से

छुट्टी हो जाती है अर्थात् देवगण तो रावण की आज्ञा पालन कर देते हैं और रावण अपने दोष के से देवदत्ता अप्सराओं को भोग नहीं सकता । इससे देवाप्सरायें भी लौट जाती हैं । तात्पर्य जिसका अधर्म बढ़ जाता है उसका देवप्रदत्त सुख भी नष्ट हो जाता है । नारद श्राप से अर्जुन वृक्ष हो जाने वाले नलकूलवर तथा मणिकण्ठ के पास जाती हुई

सतत तरुण रहने वाली अप्सरा रम्भा को बलात् पकड़ कर रावण ने पुत्रवत् भतीजे का अति क्रमण किया अर्थात् उस काल में जो उसके लिये पुत्रवधू तुल्य थी उसके साथ बलात् रमण किया इसलिये कुबेर के पुत्रों ने श्राप दे दिया कि आज से रावण यदि किसी भी पर स्त्री के साथ बलात्कार करेगा तो उसी समय मर जायेगा । इसी श्राप के कारण मरणभय से सीता जी के साथ बलात्कार नहीं करना चाहता । यदि कोई शङ्का करे कि पाण्डु की तरह अत्यन्त कामुकता में मृत्युभय क्यों नहीं छोड़ देता ? तब इसका कारण श्रुति बतलाती है कि सम्पूर्ण राक्षसों के बध की इच्छा वाले मन के अधिष्ठाता देवता चन्द्रमा, रावण की सब तरफ के चित्त के भाव काम से रक्षा करते हैं ।

इसी से रावण श्री सीता जी की प्राप्ति कामना से परिव्राजक-विरक्त के समान ब्रह्मचर्य धारण करता है, इसी से मुक्त-सीता का संस्पर्श नहीं करता यदि बलात् करना चाहे तब नलकूबर-मणिकण्ठ के श्राप से तुरन्त मर जाये । इस प्रकार इन दोनों मन्त्रों में श्री सीता जी ने अपनी शुद्धता निर्वाह का कारण बतलाया ॥१२६॥

बिना देखे मुझे कैसे पहिचान लिया ? श्री सीता जी के इस प्रश्न पर श्री हनुमान् जी कहने लगे कि—

(८०) अमृक्तेनरुषता बाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परिव्यत ।

दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्बोर्नभस्मयम् ॥१२७॥

ऋ० ६।६६।५॥

अमर्त्यः हरिः	मरणधर्म रहित; अमर = अप्राकृत बानर मैंने
निर्णिजानः	अन्वेषण करते हुये यहाँ आने पर आपके इस
अमृक्तेन	बहुत दिनों से धोये न जाने से मलिन होते हुये भी
रुषता	अत्यन्त महीन स्वर्ण तन्तुमय होनेके कारण देदीप्यमान्
बाससा	वस्त्रों से और वियोगिनी लक्ष्णों से आपको
परिव्यत । दिवः	अनुमान करके जान लिया । स्वर्गीय आनन्द से भी
पृष्ठम्	उच्च स्थान वाले ब्रह्मानन्दात्मक राम जी की
नभस्मयम्	अव्याकृत परमाह्लाददायिनी शक्ति आपको
निर्णिजे	सारे ब्रह्माण्ड में खोजवा कर परमेश्वर श्री राम जी ने
चम्बोः बर्हणा	बानर एवं राक्षस सैन्य से घोर युद्ध कराने की
उपस्तरणम् कृतः ।	निश्चित तैयारी किया है ॥१२७॥

१२२ वें मन्त्र में जो श्री सीता जी ने 'उत अहमस्मिवीरिणीन्द्र पत्नी ।' कहा था उसी पर श्री हनुमान् जी यहाँ कह रहे हैं कि—

(८१) सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्त्वो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते ।

तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो तेन्द्रादृते पवते धाम किंचन ॥१२८॥

साम० ६।३।१, ऋ० ६।६६।६, नि० ७।२

सूर्यस्य रश्मयः इव,

साकं द्रावयित्स्वः

आशवः

मत्सरासः

प्रसुपः

ईरते ।

तन्तुम्

ततम्

परि सर्गासः

इन्द्रादृते

किंचन धाम

पवते न ।

जैसे सूर्य की बहुत सी किरणें

एक साथ ही गमन करने वाली एवं

शीघ्र गामिनी हैं वैसे ही मेरे समान एवं

मेरी जाति वाले बानरगण एक बारगी ही

सदैव से रहने वाले स्थावर अर्थात् बनों-पहाड़ों में

आपको ढूँढ़ते हैं । क्योंकि स्वामी श्री राम जी ने

महान् तन्तु-वंशसूत्र-परम्परा के चलाने अर्थात्

विस्तार करनेवाली अपनी पत्नी = आपके चारों ओर

अच्छी तरह से ढूँढ़ने के लिये बानरों को भेजा है ।

परमैश्वर्यमान् राम जी की कृपा बिना उन बानरों में

कोई किसी प्रकार भी “गृहणीगृहमुच्यते” के अनुसार

रामजी की गृहणी = धाम आपके स्थान शोधमें समर्थ

नहीं हो सकता । भाव यह कि राम जी के अनुग्रह

से ही मुझे आपका दर्शन हो गया है ॥१२८॥

१२४ वें मन्त्र में जो हनुमान् जी ने “तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व ।” कहा था । उस पर श्री सीता जी ने कहा कि—

(६८) तनूष्टे वाजिन् तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम् ।

अहृतो महो धरुणाय देवान् दिवीव ज्योतिः स्वमामिमीयाः ॥१२९॥

ऋ० १०।५६।२॥

वाजिन् ते

तनूष्टे तन्वम्

नयन्ति तुभ्यम्

धातु स्मभ्यम्

शर्म

वामम्

हे वेगवान् बानरेन्द्र ! यदि मैं तुम्हारे

अङ्ग । पीठ, कन्धे पर अपने अङ्ग को स्थापित = बैठ

श्री राम जी के पास जाऊँगी तब तुम्हारे द्वारा

धारण किये जाने पर मुझको शीघ्र ही राम दर्शन जन्य

परमानन्द तो प्राप्त हो जायेगा परन्तु

स्वेच्छा से परपुरुष स्पर्श जन्य कुटिलता प्राप्त होगी

अर्थात् पाप एवं अकीर्ति होगी और रावण का स्पर्श

तो अनिच्छा एवं निर्वलता से होने के कारण उसमें मेरा कोई दोष नहीं है । अतः

अहुतः महः
देवान् धरुणाय
दिवि
ज्योतिः इव
स्वम्
आमिमीया ।

किसी से कभी नहीं हारने वाले महान् तेजस्वी श्री राम जी ही देवताओं को यज्ञादि के द्वारा पोषण करने के लिये हैं और मैं स्वर्ग की ज्योति के समान् श्री राम जी की ही हूँ एतदर्थ श्री राम जी की अपनी सम्पत्ति मैं उन्हीं से प्राप्त करने योग्य हूँ । अर्थात् स्वयं श्री रामचन्द्र जी ही यहाँ आकर शत्रु नाशकर मुझे प्राप्त करें ॥१२६

तब श्री हनुमान जी ने प्रार्थना किया कि यदि ऐसा है तो श्री राम जी के लिये विश्वास योग्य कुछ अभिज्ञान रूप से कहिये तब श्री सीता जी ने कहा कि जो बातें मैं तुमसे कह रही हूँ—

(६६) दूरेतन्नामगुह्यं पराचैर्यत्त्वाभोते अह्वयेतां वयोधै ।

उदस्तम्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान् मघवन् तित्विषाणः ॥१३०॥

ऋ० १०।५५।१

तत् गुह्यम्
पराचैः दूरे
नाम
यत् भीते
त्वा अह्वयेताम्
वयोधै

वह बात बहुत ही गुप्त एवं कई वर्ष अर्थात् बहुत दिन पहिले की और बहुत दूर चित्रकूट की है । इस बात को निश्चय जानो । श्रीरामजी से कहना कि जिसके कारण भयभीत होकर द्यावा; पृथ्वी ने आपको पुकारा था कि इस पीड़ा देने वाले पक्षी से सीता की रक्षा कीजिये । तब उनके इस प्रकार की पुकारने पर आपने

अभीके पृथिवीम्
द्याम् उदस्तम्नाः
मघवन्
भ्रातुः पुत्रान्
तित्विषाणः ।

उस पक्षी के कारण समस्त पृथ्वीमण्डल और अन्तरिक्ष-आकाश-स्वर्गादि को स्तब्ध करा दिया था । हे अखिल विद्येश्वर्य पते ! (बमनावतार के कारण) अपने बड़े भाई इन्द्र के पुत्र काक रूपधारी जयन्तको इषीकास्त्र मात्र से जलाते हुये से व्याकुल दिया था ।

उस समय आपके अस्त्र से व्याकुल काक की रक्षा करने में तीनों लोकों में कोई भी समर्थ नहीं हुआ। इस चरित्र के स्मरण दिलाने का कारण यह है कि उस काक से बढ़कर दुखदायी रावण को मार कर मुझे ले चलिये। 'तात शक्र सुत कथा सुनायेहु। वाण प्रताप प्रभुहिं समभायेहु ॥१३०॥

श्रीराम जी के लिये श्री सीता जी का सन्देश लेकर श्री हनुमान जी रावण के अशोक बन को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे और रखवालों के रोकने पर उन्हें इस तरह मार पीट कर व्याकुल कर दिया कि जो मरने से बचे उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई जिससे उन्होंने समझा कि बहुत से देवता लोग आकर उपद्रव कर रहे हैं अतः बचे हुए घायल रक्षक जाकर रावण से कहने लगे कि—

(१००) देवास आयान् परशूरविभ्रन् वना वृश्चन्तो अभि विडिभरायन्।
नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तदहन्ति ॥ १३१ ॥

(ऋ० १०।२८।८)

देवासः आयन्
परशून्
अविभ्रत् विडिभः
वना वृश्चन्तः
अभि आयन्
सुद्रवम् वक्षणासु
दधतः अनुयत्रा
कृपीटम् दहन्ति
तत् आ नि ।

देवतागण अशोक वाटिका में आ गये हैं और ये हमलोगों के ही परशु आदि शस्त्रों को छीनकर धारण किये हैं और हमलागों के पारवार सहित अशोक बन को एकदम उजाड़ते और इधर-उधर चारों तरफ खूब दौड़ते हैं। अत्यन्त शीघ्रगामी अग्नि की लपटें जैसे घरों को जलाती हुयी पीछे—अर्थात् अलग पड़े हुए काष्ठादि को भी जला डालती हैं। इसी तरह वे सब देवतागण चारों तरफ से एक-एक कुञ्ज आदि नष्ट करते हैं तब पास के वृक्षादि भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १३१ ॥

ऐसा सुनकर रावण विचारने लगा कि—

(१०१) शशः शुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेद मारात् ।

बृहन्तं चिदहते रंधयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥ १३२ ॥

(ऋ० १०।२८।९)

शशः
प्रत्यञ्चम् क्षुरम्
जगार
आरात् लोगेन् अद्रिम्
व्यभेदम् ।

तुच्छ पशु शशक = खरगोश जैसे
तीक्ष्ण धार वाली तलवार को
निगलने की चेष्टा कर अपना ही अनन्त करता है,
या कोई दूर से ही मिट्टी का ढेला मारकर पर्वत को
चूर्ण करना चाहे । वही हाल मेरा है । (इससे ज्ञात
होता है कि अपने मरण के लिये ही रावण ने श्री
सीता जी का हरण किया था ।)

वयत् वत्सः
शूशुवानः वृषभम्
बृहन्तम् चित्
ऋहते
रन्धयानि ।

तुरन्त का जन्मा हुआ बछड़ा समय पर बढ़कर
बहुत बड़ा पराक्रमी साँड़ हो जाता है । वैसे ही
अत्यन्त महान् एवं चैतन्य निश्चित् आत्मा को
त्यागकर तुच्छ सुखके लिये लोगोंको मैं पीड़ा देता हूँ ।
पीड़ा देते २ मेरा पाप बहुत बढ़ गया है ॥ १३२ ॥

यद्यपि रावण को ऐसा ज्ञानोदय हुआ तथापि उसके तमः प्रधान प्राणी-
राक्षस होने के कारण क्षणभर में ही वह ज्ञान तिरोहित हो गया । इससे—
(१०२) सुपर्णा इत्था नखमासिषायाऽवरुद्धः परिपदं न सिंहः ।

निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान् गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥ १३३ ॥

(ऋ० १०।२८।१०)

सुपर्णाः
इत्था
नखम्*
आसिषाय
रुद्धः
सिंहः न
परिपदम्, तर्ष्यावान्
महिषः

पक्षी के समान आकाश में विचरनेवाले रावण ने
इस प्रकार अनेक यत्न कर
छेदनभेदनादि से दुखी न होनेवाले हनुमानजी को
बँधवाने के लिये ब्रह्मपाश का प्रयोग करवाया
परन्तु श्री हनुमान जी ब्रह्मपाश से घिरे होने पर भी
महाबली मत्त मृगेन्द्र के समान
चारों ओर घूमते ही थे, और जैसे प्यास से व्याकुल
भैंसा जलकी ओर जाता है और महान् योगियोंकी

* “नखिद्यते च्छेदन भेदनादिना” इतिनखम् ।

चित् निरुद्धः

कर्षत्

एतत् तस्मै अयथं

गोधा कर्षत् ।

मनोवृत्ति रोके जाने पर भी रोकनेवालों को वह मन खींचकर ले ही जाता है । वैसे ही वे राक्षसगण हनुमान् जी को रोक रखने में असमर्थ थे तो भी पाश में बाँधकर खींचने लगे ॥ १३३ ॥

इस प्रकार ब्रह्मपाश में बँधे होने पर भी श्री हनुमान जी ने जब कुछ परवाह नहीं किया तब ब्रह्मपाश का अपमान न हो इसलिये देवतागण श्री हनुमानजी की प्रार्थना करने लगे—

(१०३) अक्षानहो नह्यत नोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।
अष्टाबन्धुरं बहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥१३४॥
(ऋ० १०।५३।७)

सोम्याः !

नह्यत अक्षः

आ नहः

रशनाः इष्कृणुध्वम्

न उत आ

पिंशत

अष्टा

बन्धुरम् रथम्

अभितः बहत

येन

देवासः प्रियम् अभि

अनयत् ।

हे भगद्भक्त परमवैष्णव श्री हनुमान जी !

आपको बाँधते हुए रावणकुमार अक्ष

स्वयं ही सब प्रकार से मृत्यु पाश में बँध गया ।

कृपा करके ब्रह्मपाश को अभी स्वीकार कर लीजिये

बाद में चाहे इस ब्रह्मपाश को सब तरह से

खण्ड-खण्ड ही कर डालियेगा तो कोई हर्ज न होगा

दो हाथ दो पैर दो कन्धा और दो उरु ऐसे आठ

जगह बँध हुए अपने शरीरस्वरूप रथ को

इस लङ्का नगरी में ले जाइये ।

जिससे = आपके लङ्का नगरी में जाने से ।

देवतागण अपना अभीष्ट मनोरथ अच्छी तरह

प्राप्त करें । आपके लंका चले जाने से देवताओं को

सुख होगा ॥ १३४ ॥

देवताओं की इस प्रार्थना को स्वीकार करके श्री हनुमान जी बँधकर लङ्का को गये । वहाँ जब रावण ने उनकी पूँछ में अग्नि लगवा दिया तब इसे दूर से देखकर श्री सीता जी अग्नि से प्रार्थना करने लगीं कि—

रत्नोद्धारम्
 वाजिनम्
 आ जिघर्षि
 मित्रम्
 प्रथिष्ठम्
 शर्म उपयामि
 शिशानः क्रतुभिः
 समिद्धः अग्निः
 सः नः
 दिवानक्तं सरिषः पातु ।

अथाद्रुष्टुः अर्चिषा
यातुधानान् उपस्पृशः
जातवेदः समिद्ध
जिह्वा मूर देवान्
हे लौहमय दाढ़ वाले अग्ने ! प्रज्वलित लपट से
इन राक्षसों को चाट जाइये—जला दीजिये
हे सब कुछ जाननेवाले अग्निदेव ! प्रज्वलित होकर
अपनी जिह्वा की लपट से देवतों के मूर = अग्रज
असुरों को

(१०६) यत्रोदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्त मग्न उत वा चरन्तम् ।
यद्वाऽन्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥१३७॥
(ऋ० १०।८७।६ अथर्व ८।३।५१)

जातवेदः इदानीम्
यत्र उत तिष्ठन्
वा मग्नः यद्वा
अन्तरिक्षं चरन्तम्
पथिभिः पतन्तम्
शर्वा अस्तम्
शिशानः, विध्य ।

(१०७) परि त्वाऽग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।

धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भंगुरावताम् ॥ १३८ ॥

(ऋ० १०।८७।२२, अथर्व ७।७।१, = ८।३।३ शु० य० ११।२६, तै०
सं० १।५।६।४, = ४।१।२।२५)

अग्ने ! त्वा
विप्रं सहस्य पुरं
परि

हे अग्नि देव ! हे परमतेजस्विन् ! आपको
व्यापक कहा गया है आप शत्रु के नगर के
चारों तरफ अपना तेज स्थापित कीजिये अर्थात् सारा
नगर घेर कर स्थित हो जाइये, जिससे कोई बाहर
न जा सके

धृषद्वर्णम्
दिवोदिवे भङ्गुरावतां
हन्तारं वयं
धीमहि ।

जो दूसरों को तो धर्षित करता है दबा देता है परन्तु
जिसे कोई धर्षण नहीं कर सकता ऐसे अग्नि देव !
नित्य प्रति विनाश शील माया करने वाले राक्षसों का
नाश करने वाले आपकी मैं
प्रार्थना करती हूँ कि आप हनूमान् जी की रक्षा कर
दीजिये ॥ १३८ ॥

लङ्का जला कर जब श्री हनुमान जी बानरों सहित श्री राम जी के पास
पहुँचे तब—

(१०८) हरिं मृजंत्यरूपो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमार्यति हिन्वते मती पुरुषदुतस्य कतिचित् परिप्रियः ॥ १३९ ॥
(ऋ० ६।७।१)

* अरुणः

† हरिं मृजन्ति

धेनुभिः कलशे

सोमः सं अज्यते

वाचम्

युज्यते ।

मतिः हिन्वते

पुरुषं तस्य

ईरयति वाचं

परि प्रियः न उत

कतिचित् ।

रोष रहित परमशान्त स्वरूप श्री राम जी बारम्बार
हरि = श्रीहनुमान्जी के ऊपर प्रेम पूर्वक हाथ फेरते हैं
जैसे गाय से उत्पन्न पंचगव्य से युक्त घट में
सोमवल्ली लता का परिष्कृतरस विधिवत् मिलाया
जाता है उसी तरह हनुमान् जी ने सीता जी के प्रेम-
सन्देश रूप वाणी को सुनाकर
श्रीरामजीके प्रेमपूरित हृदयकलशको पूर्णकर दिया ।
और कहा कि जिनकी बुद्धि सदैव सद्भिचार में तत्पर
रहती है उन श्रीराम जी की जब
श्रेष्ठ शब्दों में बहुत काल तक स्तुति करनेवाले
ब्रह्मा शिवादि के द्वारा स्तुति की जाती हुई वाणी भी
सर्वथा प्रसन्न करने में समर्थ नहीं होती, तब भला
मेरी वाणी किस गणना में है अर्थात् मैं जितनी भी
स्तुति कर सकूंगा वह सब आपकी महिमा के सामने
अत्यल्प ही रहेगी ॥ १३६ ॥

श्री हनुमान् जी के सन्देशा सुना चुकने पर—

(१०६) साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः ।

यदीं मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीडाभिः दशभिः काम्यं मधु ॥१४०॥

(ऋ० ६।७२।२)

बहवः मनीषिणः साकं

वदन्ति इन्द्रस्य

जठरे सोमम्

बहुत से बुद्धिमान् बानर गण एक साथ ही
बोलने लगे क्योंकि वे सब परमेश्वर्य मान् रामजी के
हृदय में सीता जी की चर्चा रूपी सोमवल्ली को

* शिशु पनते पितु मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ ।

कहत राम विधु बदन रिसौहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ ॥ विन० प०

† हरिश्चन्द्रार्क वाताश्च शुकभेक यमाहिषु ।

कपौ सिंहे हरेऽजेंऽशौ शक्रे लोकान्तरे पुमान् ॥ मेदिनी कोश ।

आदुहुः । यत्
सुगमस्तयः नरः

दशभिः सनीडाभिः
ईम् काम्यम्
मधुम् ऋजन्ति ।

निचोड़ते हुये उसे भरने लगे । क्योंकि
ज्ञान भक्ति सम्पन्न उत्तम पुरुष पाँच ज्ञान वृत्ति,
पाँच धी वृत्ति,
इन दश समानशील कर्म अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान द्वारा
इन श्रीराम स्वरूपी कमनीय एवं सर्व वाञ्छनीय
अमृत को ही खोजते हैं । अर्थात् रामजी के साथ
संभाषण भी भगवत्कृपा रूप महत्पुण्य का फल है ।
अतः 'को न च है जग जीवन लाहू ।' इससे बहुत से
बुद्धिमान् बानर एक साथ ही कहने लगे क्योंकि
अलग २ संभाषण के लिये इतना पर्याप्त समय नहीं
मिल सकता ॥ १४० ॥

श्री सीता जी की दशा वर्णन करते हुये श्री हनुमान् जी ने एवं बहुत से
बुद्धिमान् बानरों ने कहा कि—

(११०) अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनं गृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥१४१॥

(ऋ० ६।७।३)

सूर्यस्य दुहितुः
प्रियम्
रवं तिरः, गाः
अभि, अत्येति

विनं गृसः अस्मै
योषं अनुअभरत
स्वसृभिः जामिभिः
द्वयीभिः संक्षेति
अरममाणः ।

सूर्य वंश की कन्या सीता जी का समाचार यह है कि
रावण के चादुकारिता युक्त प्रलोभन देने वाले प्रिय
बचनोंका तिरस्कार करदेती हैं और पृथ्वी में समाकर
इस लोक से अतिक्रमण कर जाना चाहती हैं परन्तु
केवल आपके दर्शन रूपी आशा से रुकी हैं । यद्यपि
हर ले जाने वाला रावण सीताजी को देने के लिये
अनेक सुन्दर २ वस्तुयें सामने ले जाता है तो भी
सीताजी बहिन एवं सहचरीके समान देह और देहबल
इन दोनों से अत्यन्त क्षीण होती जा रही हैं । अतः
बिना किञ्चित् मात्र भी विश्राम किये शीघ्र ही चलकर
श्री सीता जी को प्राप्त कीजिये ।

‘वेगि चलिय प्रभु आनिये भुजबल खलदल जीति ।’ ॥१४१॥

(१११) नृधूतो अद्रिसुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुऋत्वियः ।

पुरंधिवान् मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१४२॥

(ऋ० ६।७२।४)

अद्रिसुतः

बड़े २ पत्थर शिरपर लेकर राक्षसियां कहती हैं कि

नृधूतः बर्हिषि

इन्हीं पत्थरों से चूर-चूर कर दी जावोगी । ऐसे नित्य

प्रियः गवाम्

राक्षसियोंसे डरवाई जाती सीताजी तृणपर बैठी रहती हैं ।

पतिः

सीता जी एवं समस्त सज्जनों के प्रिय आप, इन्द्रियों के

प्रदिवः इन्दुः

तथा पृथ्वी के अधीश इन्द्रीजित एवं पृथ्वी के

ऋत्वियः पुरन्धिवान्

पालन कर्ता अनादि पुरुष स्व रक्षण में समर्थ ईश्वर

मनुषः सोम !

श्रुति शास्त्र से व्याख्यात ज्ञेय और बहुत बुद्धि युक्त हैं

इन्द्रः ! ते यज्ञ साधनः

परन्तु लीलार्थ मनुष्य बने हैं । हे सोमवत् प्रियदर्शन !

शुचिः धिया पवते ।

हे सर्वैश्वर्यमान् प्रभो ! आपकी सहधर्मचरी सीता जी

अपनी पवित्र बुद्धि से लंका में अपनी रक्षा करती

हुई अपने को पवित्र कर रही हैं ॥ १४२ ॥

(११२) नृ बाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।

आ प्राः क्रतून् समजैरध्वरे मतीर्वेन दुषञ्चम्बोरासदद्भरिः ॥१४३॥

(ऋ० ६।७२।५)

इन्द्र !

हे परमैश्वर्य शालिन् प्रभो शीघ्र ही ऐसा कीजिये कि

नृ बाहुभ्यां चोदितः

नर रूपी आपकी भुजाओं से छूटे बाण जाकर

सोमः ते

यज्ञ साधन स्वरूपा आपकी पत्नी सीता जी के

अनुष्वधम् पवते

शरीर प्राण की रक्षा करें । आप

धारया सुतः

अविच्छिन्नप्रवाह रूप से शत्रुओं पर बाण छोड़ कर

क्रतून्

अपने श्रीसीता जी के हमसब बानरों के सङ्कल्पों

रूपी यज्ञों को

आ प्राः

अच्छी तरह पूरा कर लेंगे अर्थात् कार्य अवश्य

अध्वरे चम्योः
मतीः समजैः,

वेः न (इव)
द्रुषत् हरिः
आसदत् ।

सिद्ध होगा । युद्ध भूमि में सम्पूर्ण बानरों एवं राक्षसों की सेनाके मध्यमें बुद्धिके धर्म शौर्यादिकों को अच्छी तरह से जानने वाले एक आप ही हैं अर्थात् आप शत्रुओं के जीतने में सर्वथा समर्थ हैं । यदि कहिये कि हम लोगों ने सीता जी को कैसे देखा है ? तो बृक्षारूढ़ पक्षी के समान एक छलाँग में ही समुद्र का उल्लंघन करके श्री हनुमान् जी लंका जाकर पुनः लौटे आये हैं इन्हीं से सब समाचार हम सभी ने जाना है ॥ १४३ ॥

(११३) अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कपयोऽपसो मनीषिणः ।
समीप्रावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भवः ॥१४४॥

(ऋ० ६।७।१६)

जब सभी बानरों से प्रोत्साहित किये जाने पर श्री राम जी ने सब ऋक्षों बानरों आदि को साथ लेकर प्रस्थान किया तब—

मतयः मनीषिणः
कपयः स्तनयन्तं अंशुं
अपसः दुहन्ति

अक्षितं कविम्

संयतः ऋतस्य

योना सदनेः

मन, इन्द्रियों के निग्रह में परम समर्थ परम बुद्धिमान बानरों ने गर्जते हुए अति विख्यात अग्नि सूर्य वायुके कर्मों को = सबके सार को अपने में परिपूर्ण किया अर्थात् वे बानर गण अग्नि के सार तत्व दाहकत्व, सूर्य के सारतत्व सर्वविषयप्रकाशकत्व और वायु के सार तत्व शीघ्रगामित्व में परिपूर्ण हो गये । अतः अक्षीण बल वेग वाले उन बानरों ने क्रान्ति दर्शा होकर गर्जते हुए गमन किया और जाकर जो एकत्र होकर चले और एकत्र होकर अचल हो जाये ऐसे स्वभाव वाले जल के आधार समुद्र के पास कुछ काल तक ठहरने के लिये पड़ाव डाल दिया तत्पश्चात् कुछ काल तक

पुनर्भवम्

जो पूर्व काल में अनेक बालू धातु आदि के संयोग से पत्थर के ढेर (पर्वत) हो गये थे उन्हें पुनः दक्ष शिल्पी नल नील ने लम्बा, चौड़ा त्रिकोण चिकना आदि आवश्यकतानुसार बनाया ।

ग्रावा ईम्

ऐसे पर्वतों = बिना गढ़े सँवारे पत्थरों को गढ़ सँवार कर लोक प्रसिद्ध पुल के समान

सम्यन्ति ।

अच्छी प्रकार से एक में एक पर्वत मिलाकर पुल बाँध दिया । इस प्रकार समुद्र के जल को स्तब्ध कर देने से बानरों द्वारा समुद्र का भी सार दुहना सिद्ध हो जाता है ॥ १४४ ॥

(११४) नाभा पृथिव्या धरुणो महोदिवोऽपामूर्मौ सिधुष्वंतरुक्षितः ।

इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥१४५॥

(ऋ० ६।७२।७)

दिवः महः

द्युलोक में भी अत्यन्त महती

अपां ऊर्मौ अन्तः

जलराशि समुद्र के उत्ताल तरङ्गों के मध्य में

पृथिव्याः नाभा

पृथ्वी की नाभि से उत्पन्न उन पर्वतों को

धरुणः, सिन्धुषु

नौका के समान स्थापित करके सेतु बाँध दिया ।

उक्षितः

जिन पर्वतों से सदा ही, बड़ी २ नदियाँ निकलकर

पृथ्वी को सिंचित करती रहती थीं वे पर्वत तक सेतु

बन्धनार्थ लाये गये थे । यदि कोई कहे कि पानी

पर पत्थर कैसे तिरे ? तो इसका उत्तर श्रुति देती है

परमेश्वर श्रीराम जी की बज्रवत् अव्याहत गति है ।

श्रीराम जी का धर्म व्यापक फल वाला है और जैसे

देवताओं के हृदय को आनन्द मत्त बना देनेवाले

सोमयज्ञ के फल स्वरूप प्राप्त चन्द्र कान्त मणि

अग्निकुण्डको शीतल करनेके लिये लाई जाती है उस

सोमोद्भव चन्द्रकान्त मणि के प्रभाव से—

इन्द्रस्य वज्रः

वृषभः विभूवसुः

चारु मत्सरः

सोमः

हृदे

पवते ।

अपना दाहकत्व गुण छोड़कर अग्नि शीतल हो जाता है उसी तरह श्रीराम जी के धर्म बल से समुद्र ने भी उतने स्थल पर अपना भिगाने और डुबाने वाला गुण छोड़कर घनत्व एवं काठिन्य धारण कर लिया इसी से पर्वत न डूबे न बहे । “बाँधा सेतु नील नल नागर ।” “श्री रघुवीर प्रतापते सिंधु तरे पाषाण ।” ॥१४५॥

श्रुति लङ्का का वृत्तान्त कह रही है कि—

(११५) जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्स्वित् ।

ऋणावा विभ्यद्भनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुपनक्तमेति ॥१४६॥

(ऋ० १०।३४।१०)

कितवस्य जाया
तप्यते, क्स्वित्
चरतः पुत्रस्य
माता
हीना
ऋणावा

अन्येषाम् विभ्यत्
अस्तम् धनम्
इच्छमानः
उपनक्तं एति ।

धूर्तरावण की, स्त्री मंदोदरी = धान्यमालिनी का हृदय अत्यन्त तपता रहता है, क्योंकि वह स्वकर्मानुसार परलोक में चले जानेवाले, पुत्र वीरसेनानी अक्ष की माता थी, हनुमान् जीने अक्ष को मार डाला था अतः हतपुत्रा होने से तप्त हो रही थी, और रावण भी लंका ऐसी दुर्गम भूमि और समुद्र ऐसे जलाशय के रहते हुये भी हनुमानजी के प्रताप को देखकर श्रीराम-सुग्रीवादि से, भय करने लगा अतः गृह और धन-लक्ष्मी-सीता जी तथा राज्य की इच्छा करते हुये दिन भर अनेक उपाय विचार करके प्रदोष काल—सन्ध्या में घर जाता है ।

उहाँ निशाचर रहिं सशङ्का । जब ते जारि गए कपि लङ्का ॥ १४६ ॥
सन्ध्या समय घर पहुँचकर रावण विचारने लगता है कि—

(११६) न मा मिमेथ न जिहीड़ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेक परस्यहेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ॥१४७॥
(ऋ० १०।३४।१२)

एषा

यह मन्दोदरी मेरी पाणिगृहीता भार्या है इसने कभी

मा, न मिमेथ
महं, सखीभ्यः
शिवा आसीत्
अनुव्रताम् जायाम्
अहं, एकपरस्य
हेतोः, अक्षस्य
अरोधम् ।

मेरा किसी प्रकार का, अप्रिय नहीं किया प्रत्युत
मेरे लिये और मेरे मित्रों के लिये भी
सदैव कल्याण रूपिणी ही रहा करती है ।
ऐसी अनुगामिनी पतिव्रता सहचारी पत्नी को
मैं दुख देने का कारण हुआ कि, एकशत्रु बन्दर के
कारण, अक्ष को भेजकर अक्ष के मारे जाने से मैं
अवरुद्ध निश्चेष्ट हो गया हूँ । मुझे धिक्कार है । ॥१४७॥

रावण के किसी हितकारी की उक्ति है कि इस समय राक्षसेन्द्र रावण का
स्वभाव ऐसा हो गया है कि—

(११७) द्वेष्टि अश्वरूप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विंदामि कितवस्य भोगम् ॥१४८॥
(ऋ० १०।३४।३)

अश्वः
द्वेष्टि* जाया
अपरुणत् हि
नाथितः
मर्डितारम्
न विन्दते जरतः
अश्वस्य वस्नि
इव अस्य भोगं
न विन्दते ।

राजा रावण उपदेश करती हुई अपनी सासु से
द्वेष करता है और पत्नी धान्यमालिनी = मन्दोदरी
को भी सुख नहीं देता । क्योंकि निरन्तर रावण का
हृदय उपतप्त रहता है अर्थात् दग्ध रहता है और
जिससे उसे सुख होने को है वह सुखदाई पर स्त्री सङ्ग
नहीं पा रहा है अतः जैसे अत्यन्त बूढ़े
घोड़े का देह अधिक समय तक नहीं रहता ।
वैसे ही इस रावण का शरीर अब रहते दिखलाई
नहीं पड़ता । कामवेदना से अवश्य मर जायेगा १४८

* सम्भवतः जैसे रावण का नाना समय-समय पर रावण को सदुपदेश
दिया करता था वैसे ही रावण की सासु भी उपदेश करती रही है और रावण
सासु का भी वैसे ही अपमान करता रहता था जैसा कि माल्यवान का । यथा
मानसे—

“बूढ़ भयसि नतु मरतेऽतु तोहीं । अब जनि नयन दिखावसि मोहीं ।”
“रिपु उत्कर्ष कहत शठ दोऊ । दूर न करहु इहाँ है कोऊ ॥”

श्री हनुमान् जी के लङ्का जलाकर चले आने पर लङ्का में एक दिन
(११८) सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्ठ्यामीति तन्वा शूशुजानः ।
अज्ञासो अस्य वितिरन्ति कामं प्रतिदीप्ते दधत् आकृतानि ॥१४२॥

ऋ० १०।३४।६

कितवः, पृच्छमानः	धूर्त रावण, सलाह पूँछने की इच्छा से
सभां एति	सभा भवन में गया तथा सबको बुलवाया और
जेष्ठ्यामि इति तन्वा	मैं रामदल को जीत लूँगा ऐसे अभिमान से शरीरको
शूशुजानः	फुलाकर अकड़कर बैठा । 'बैठा जाइ सिंहासन फूली'
अज्ञासः अस्य	परन्तु उस सभा में पुत्र अक्ष के समानपुत्र प्रहस्त
	एवं वात्सल्य भाजन विभीषणादिकोंने इस रावण के
कामं वितिरन्ति	कुत्सित मनोरथ का अधिक तिरस्कार किया और
प्रतिदीप्ते	जिन राम जी को रावण जीतना चाहता है उनके
कृतानि आदधत् ।	लिये सीता जी के लौटा देने में ही विभीषणादिकों
	ने कृतार्थता कल्याण बताया ॥१४६॥

इसके बाद भी वे सजन लोग रावण से प्रार्थना करते हैं कि—

(२२१) उदीर्ष्यातः पतिवतीं ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीडे ।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥१५०॥
ऋ० १०।८५।२१

अतः	इस काम से अर्थात् इन सीता जी की प्राप्ति की
	इच्छा से
उदीर्ष्व हि एषा	विरत हो जाइये । क्योंकि ये सीता जी पर पत्नी हैं
पतिवती	इनका पति वर्तमान है ये अपने पति को ही चाहती हैं
विश्वावसुन्	सम्पूर्ण संसार की सम्पत्ति प्राप्त करने वाले आपको
नमसा ईडे	हम लोग नमस्कारपूर्वक नम्र-उत्तम शब्दों से स्तुति
	करते हैं कि
अन्याम् पितृषदम्	अन्य किसी पिता के घर स्थित अर्थात् कुमारी एवं

वेदों में राम कथा

स्पष्ट हो स्त्री लक्षण जिसका ऐसी युवती कन्या की
इच्छा कीजिये अर्थात् व्यवहार में लाइये । विवाह
लीजिये

वह स्त्री रूपी धन आपका न्यायतः भाग है वह
आपकी पत्नी होगी ।

जन्म से ही उसके ऊपर अपना अधिकार समझिये ।

सः ते भागः

जनुषा तस्य विद्धि ।

(१२०) उदीर्ष्वतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।

अन्यामिच्छ प्रफर्व्य सं जायां पत्या सृज ॥१५१॥

ऋ० १०।८५।२२

विश्वावसो !

हे सम्पूर्ण संसार की सम्पत्ति प्राप्त करने वाले ।

रावण ! आप

अतः उदीर्ष्व

इन सीता जी की प्राप्ति की चेष्टा से विरत हो जाइये
और

जायाम् सम्

राम की पत्नी को सम्यक् = आदर से ले जाकर उनके

पत्या सृज

पति श्री राम चन्द्र जी को दे दीजिये । हम लोग

त्वा तमसा इडामहे

आपकी नमस्कार पूर्वक स्तुति करते हैं कि

अन्यां प्रफर्व्याम्

अन्य किसी सुस्तनी युवती कन्या की

इच्छा ।

इच्छा कीजिये । अर्थात् उससे विवाह कीजिये १५१

इस प्रकार सजनों के समझाने पर सभासदों में—

(१२१) उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृणवन्न शृणोत्येनाम् ।

उतो त्वस्मै तन्वं विसस्त्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥१५२॥

ऋ० १०।७१।४ ति० १।८।१६

उत त्वः

कोई तो रावण की ओर सेनापतियों आदि की ओर
देखते हुये और कोई हनुमान जी के किये गये नगर
दाह राक्षस बध आदि की ओर देखते हुये भी मदा-
न्ध होने से

पश्यन्

वाचं न ददर्श
उत त्वः शृण्वन्
एनाम् न शृणोति
उत तु अस्मै
तन्वम् विसस्त्रे
उशती जाया
पत्ये सुवासाः
विसस्त्रे ।

विभीषण आदि की वाणी को तथ्यपूर्ण नहीं देखा किसी ने अर्थात् रावण ने सुनते हुये भी हित की इस वाणी को अनसूनी कर दिया ध्यान नहीं दिया अपितु विभीषणादि समझाने वालों के सामने अपना स्वरूप-वाक् स्वार्थ प्रकट करने लगे । जैसे काम से अभिभूता स्त्री ऋतुमती नहीं होने पर भी अनिच्छुक पति के सामने वस्त्र हटाकर अपना स्वार्थ प्रगट करने लगती है । तात्पर्य यह कि दूसरों के नहीं देखने पर भी विभीषणादि ने रावण के भविष्य को देख लिया, इसीसे रावण की कामुकता-स्वार्थ की बातें सुनने के अनिच्छुक रहे ॥१५२॥

जब रावण ने विभीषणादि का सत्परामर्श नहीं ग्रहण किया उलटे मन्त्रियों सहित विभीषण ही को निकाल दिया तब—

(१२२) परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।

अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥१५३॥

पूर्वेषां परा
सख्या वृणक्ति
वितर्तुराणः अपरेभिः

पूर्वज-बड़े भाई रावण कुम्भकर्णादि के अत्यन्त उत्कृष्ट सख्य स्नेह को त्याग कर, संसार समुद्र के तरने-मुक्ति की इच्छा से निश्चरों से अपर श्री रामादि के पास

एति, अनानुभूतीः

जाकर विश्राम किया और रामादि शत्रुओं को अवश्य जीत लूंगा रावणादिकों के इस भ्रान्त ज्ञान का अनादर करते हुये भावी विनाश को देखने वाले विभीषण ने

अवधून्वानः इन्द्रः

मृत्यु काल का अतिक्रमण कर अमरत्व प्राप्त कर तरने (मुक्ति) का निश्चित अधिकार प्राप्त किया ॥१५३॥

पूर्वीशरदः तर्तरीति ।

यहाँ इस मन्त्र में 'तमिदं द्रः सन्तमिद्र इत्याचक्षते ।' इस श्रुति के अनुसार 'इन्द्र' शब्द का निर्वचन जानना चाहिये ।

वेदों में राम कथा

श्री रामजी के पास आकर श्री रामजी से मैत्री हो जाने पर ऋषियों ने विभीषण का स्वस्तयन किया कि—

(१२३) अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
समर्यमा संभगो नोनिनीयात् सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥१५४॥
(ऋ० १०।८५।२३, अथर्व १४, १, ३४)

अनृक्षराः

ऋक्—वेद मार्ग से जिनका क्षरण-पतन हो जाता है = जो वेद मार्ग से व्युत हो जाते हैं वे राक्षसादि 'ऋक्षर' हैं तुम उन 'ऋक्षर' राक्षसादि कण्टकों से रहित हो जाओ

पन्थाः ऋजवः सन्तु

तुम्हारे मार्ग सरल एवं सीधे हो जायें तुम्हें जगद्-व्यवहार में कोई कठिनता न होवे ।

येभिः नः

जिन मार्गों से हमारा—मोक्षमार्ग के पथिकों का

सखायः वरेयम्

हित होता है उसी श्रेष्ठ स्थान को तुम्हें श्रीराम जी

यन्ति

प्राप्त करावें अर्थात् श्रीराम जी तुम्हें अपना दिव्य धाम दें और

सं अर्यमा संभगः

पितृपति अर्यमा तथा भग आदि देवतागण

संनिनीयात्

हमलोगों को श्रीराम जी की सन्निकटता प्राप्त करावें ।

देवाः ! जास्पत्यं

हे देवताओं श्रीराम जी का दाम्पत्य धर्म

सु यमं अस्तु ।

सु संयत हो ॥१५४॥

नकी रेवंतं सख्याय विन्दसे पीयन्ति तेऽसुराश्च ।

यदाकृणोषि नदतुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥१५५॥

(ऋ० ८।२१।१४ साम० १२।२।८ अथर्व० २०।१४।२)

की* ! रेवन्तम्

हे श्री सीताराम जी ! आप धनवान रावण को

सख्याय न विन्दसे

मित्र भाव के लिये नहीं पाते हैं और

असुराः

सुरापान से मत्त असुरगण मतवाले

* कं वै प्रजापतिः शत० ब्रा० २।४।२।१३ कं ब्रह्म = उपनिषत् ई = लक्ष्मी ।

अश्वः, ते
पीयन्ति ।
नदतुम्
कृणोषि आदित्
पिता इव हूयसे ।

घोड़ों के समान होकर आपके भक्तों को
मारते हैं। और आप हैं कि रावण के भाई-
त्राहि-त्राहि शब्द चिल्लाने विभीषण को जब
राज्य से संस्कृत करते हैं। तब उस भक्त विभीषण से
पिताके समान स्तुति द्वारा आह्वान किये जाते हैं १५५

लङ्का से चलते समय विभीषण ने श्री सीता जी को आश्वासन दिया
था कि—

(१२४) प्र त्वा मुंचामि वरुणस्यपाशाद्येन त्वा बध्नात् सविता सुशेवः ।
ऋतस्ययोनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्ठां त्वा सहपत्यादधामि ॥१५६॥

ऋ० १०।८५।२४ अथर्व १४।१।१६

वरुणस्यपाशात्
त्वा प्र मुञ्चामि
येन त्वा
सविता
सुशेवः योनौ
सुकृतस्य लोके
अबध्नात् त्वाम्
अरिष्ठां पत्या
सह दधामि ।

प्राणी मात्र को दुख देने वाले वरुणपाशरूप रावणसे
आपको मैं सर्वथा छुड़ा दूँगा
अवश्य ही जिस दुख के छूटने पर आपको
सर्व कर्माराध्य, आपके पूर्वज भगवान् सूर्य ही
उत्तम सुखदायी कर्म फल के भोगस्थान,
परम पुण्य फल—भक्ति के स्थान रामजी के पास
पहुँचा देंगे, और मैं भी यत्न करके आपको
दुःख रहित करके आपके पति श्री राम जी के
साथ स्थापित कर दूँगा चिन्ता न कीजिये ॥१५६॥

(१२५) आसूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतवृष्टाः ।

उद्भान नावमनयन्तधीरा आश्रयवतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१५७॥

(ऋ० ५।४५।१०)

आ सूर्यः
शुक्रं अर्णः
अरुहत् ! हरितः

सूर्यवंशावतंस श्री रामभद्र जी ने
शुद्ध निर्मल जल वाले समुद्र को
बाँध लिया। बह इस तरह कि हरे हरे वृक्षादि के
कारण हरे दिखलाई पड़ने वाले पर्वतों को

अयुक्तयत्
वीतपृष्ठाः ताः
धीराः उद्भान
नावम्, अनयन्त

सेतु रूप से संयोजित किया। वह सेतु अत्यन्त बराबर
ऊँचाई-नीचाई रहित समतल था उन पर्वतों को
श्री हनुमानादि बानर वीरों ने पानी में चलने वाली
नाव चलाने के समान अनायास ही, यत्र तत्र से
उखाड़ कर लाया था और अगाध जल में भी पर्वतों
के न डूबने का कारण यह है कि

अपः आशृण्वतीः
अर्वाक् अतिष्ठन्

समुद्र स्वयं ही श्री रामजी का आज्ञाकारी दास बनकर
पर्वताक्षेपण से पूर्व ही सेवामें आ गया था ॥१५७॥

समुद्र पर पुत्र तैयार हो जाने पर सेनापति ने सुग्रीव की आज्ञा पाकर
बानर एवं ऋक्षों से कहा था कि—

(१२६) अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।

अत्राजहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥१५८॥

(ऋ० १०।५३।८ अथर्व १२।२।२६ शु० प० ३५।१० तै० आ० ६।३।२

सखायः ।
अश्मन्वती रीयते
संरभध्वम्
प्रतरता अत्र
ये अशेवाः असन्
आ जहाम
शिवान् अभि
वाजान् वयम्
उत्तरेम।

ऐ मित्रो ! पार जाने के लिये
पाषाणमय सेतु तैयार हो गया है अतः अब
बहुत जल्दी करो उठो और
समुद्र को पारकर चलो । इस सामने स्थित लंका में
जितने विश्वदुखदाई राक्षस प्रदीप्त हो रहे हैं
मौज कर रहे हैं उनको चलकर सर्वथा मार डालें
कल्याण देनेवाले सम्मुख
संग्राम समुद्र को भी इसी समुद्र के समान हमलोग
पार कर लेंगे—जीतकर कृत्य-कृत्य हो जायेंगे ॥१५८॥

दहीआदि में अत्यन्त खट्टापन के कारण जो भाग ऊपर बुदबुदाकर आ
जाते हैं उसे द्रप्स कहते हैं । उस (मैल) द्रप्सके शुद्ध दूध में पड़ने से दूध फट
जाता है । इसी तरह पृथ्वीपर द्रप्सरूप रावण था अतः श्रुति कहती हैं कि—

(१५०) खके द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योनौ समरंत नाभयः ।

त्रीन्समूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥१५६॥

(ऋ० ६।७३।१)

धमतः द्रप्सस्य
स्रक्के
समस्वरन्
ऋतस्य योनौ
नाभयः समरन्त
सः त्रीन्समूर्ध्नः
असुरः चक्रे

आरभे

सभी लोकों के ताप देने वाले द्रप्स रूप रावण के प्रति जातेहुये रामादलने श्रीराम लक्ष्मण सुग्रीवादिके जय जयकार का अच्छे प्रकार शब्द किया, तब यज्ञ के कारण भूत जल अर्थात् समुद्र में पृथ्वी के नाभि-स्तनरूप पर्वत गण तैरने लगे और वह त्रिशिरा नामवाला भयंकर राक्षस काटा गया अर्थात् रावण के प्रधान सेनापति त्रिशिरा को प्रथम मार-काट श्रीराम ने राक्षसों का बध प्रारम्भ किया था और गर्जते हुये बानरों को लेकर समुद्र तट पर आये और बानरों ने समुद्र में पुल बाँध दिया। पर्वत क्यों उतराया ? इसका समुचित समाधान यह है कि अग्नि के पास चन्द्रकान्त मणिको रख देने से उस मणि के प्रभाव से जैसे अग्नि शीतल हो जाता है वैसे ही श्री सीता जी के सत्य पातिव्रत प्रभाव से शिला भी रावण बधार्थ नाव का काम देने लगी एतदर्थ शिला को 'सत्यस्य नावः' सत्य की नाव कहा—

सत्यस्य नावः सुकृतं,
अपीपरन् ।

सत्य-धर्म की नाव-शिलाओं ने पुण्य कर्म के करनेवाले श्री रामजी को सेनासहित पार कर दिया ॥

(१५१) सम्यक्सम्यंचो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधिवेना अवीविपन् ।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥१६०॥

(ऋ० ६।७३।२)

सम्यंचः
महिषाः

सुन्दर तरह अनायास ही सर्वत्र जाने की शक्तिवाले भैंसे के समान विशाल काय बानरगणों ने

सम्यक् अहेषत
सिन्धोः ऊर्मौ
वेनाः
अधि अवीविपन्
मधोः
धाराभिः
अर्कं जनयन्तः इत्
इन्द्रस्य प्रियाम्
तत्त्वं अवीबृधन् ।

खूब बृद्धि प्राप्त करके गर्जना किया । उन बानरों ने
अगाध समुद्र की उत्ताल तरङ्गों पर एक जगह
सुन्दर सुन्दर अर्थात् गढ़ सँवार कर शिलायें
जलके ऊपर छोड़ा और उन बानरों ने
सूर्य की 'असौ वा आदित्यो यदेतन्मधुः ।' छा० उ०
धारासे अर्थात् सूर्यवंशोद्भव श्रीरामजीकी उपासना से
सूर्य के समान तेज उत्पन्न करते हुये ही
परमैश्वर्यमान् श्री रामजी की प्रिया सीता जी के
शरीर के रोमों को आनन्द से खूब बढ़ाया अर्थात् श्री
रामजी के जय जयकार के नारों से = शब्दों के घोष
से रावण के कारागार में बन्दिनी श्री सीताजी को
आह्लादित किया ॥१६०॥

(१५२) पवित्रवन्तः परिवाचमासते पितृषां प्रत्नोऽभिरक्षति व्रतम् ।

महः समुद्रं वरुणस्तिरोदधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥१६१॥

ऋ० ६।७३।३ तै० आ० १।११।१ नि० १२।३२

पवित्रवन्तः वाचम्
परि आसते
एषां पिता

व्रतम् प्रत्नः
अभिरक्षन्ति

महः वरुणः
समुद्रम् तिरोदधे

अध्वर्युगण जैसे वाणी की सिद्धि के लिये
पूर्ण विधानसे यज्ञपुरुष श्रीहरिका अनुष्ठान करते हैं ।
इन ऋत्विजोंके पोषण कर्ता-पिता = यजमान । "वृत्ति
या वेतन देकर पालन करने के कारण यजमान को
पिता कहा गया है" । यज्ञ और यज्ञ के फल को
स्वीकार करके स्थिर रहता है । उसी प्रकार श्री राम
जी के नियुक्त किये हुये बानरगण यत्र तत्र से पर्वत
लाये और तब

महान् एवं वरणीय श्री रामजी ने उन पर्वतों से
समुद्र को आच्छादित करा दिया अर्थात् वहाँ पर
पर्वत तिरा कर सेतु बँधवा दिया, क्योंकि

धीराः धरुणेषु
आरभितुम् शेकुः ।

वीर बानरगण तो भूधरों = पर्वतों को
स्पर्श करने में ही समर्थ थे ढोने, तैराने में नहीं ।
मन्त्र रामायण भाष्य में कहा भी है कि—

येमज्जन्ति निमज्जयन्ति च पराँस्ते प्रस्तरा दुस्तरे,
बाधौ नीस्तरन्ति बानरभटान् सन्तारयन्ते च वै ।
नैव ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो बानराणांगुणाः,
श्रीमद्दाशरथेः प्रताप महिमारम्भः समुज्जृम्भते ॥

महिमा यह न जलधि कै बरनी । पाहन गुण न कपिन कै करनी ॥
श्री रघुवीर प्रताप ते सिन्धु तरे पाषान ॥१६१॥

लङ्का में बानर राक्षसों में घोर युद्ध होते समय आकाश मार्ग से महर्षियों
ने श्रीराम-लक्ष्मण से कहा कि—

(१२०) उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्य मुषासमग्निम् ।
दासस्य चिद् वृष शिप्रस्य माया जघ्नथुनैरा पृतनाज्येषु ॥१६२॥
(ऋ० ७।६६।४)

नराः ! पृतना
आज्येषु उ
यज्ञाय, उरुं लोकं
चक्रथुः । सूर्यम्
उषासं, अग्निम्
जनयन्ता; वृष शिप्रस्य
दासस्य
माया जघ्नथुः ।
हे मनुष्य रूपधारी श्रीराम लक्ष्मण जी । आप की
सेना इस युद्ध में निश्चित रूप से विजयी होगी । आप
दोनों भाई राक्षस रूपी अन्धकार का नाश कर
देवताओं के हित के लिये, महान प्रकाश
करेंगे । आप तो सर्व प्रकाशक सूर्य,
अमृतस्त्रावी चन्द्रमा और सर्वदाहक अग्नि के
उत्पन्न करने वाले हैं और साँड़ जैसी देह वाले
दास भूत भानुप्रताप या जय विजय रूप रावण की
नाग पाशादि माया के नाश करने वाले हैं ॥१६२॥

(१२८) हरयोधूमकेतवो वातजूता उपद्यवि । यतन्ते पृथगग्नयः ॥१६४॥
(ऋ० ८।४३।४)

धूमकेतवः

धूमिल पूँछ को केतु के समान उठाये दुस्तर वेगवाले

हरयः
उपद्यवि यतन्ते

बानर गण, माया से अन्तरिक्ष चारी राक्षसों को मार डालने के लिये उपाय कर रहे हैं। यद्यपि कि ये बानरगण स्वतन्त्र रूप से

पृथक् अग्रयः ।

एक एक बानर अलग अलग ही अग्निवत् प्रचण्ड होने से सम्पूर्ण राक्षसों को जला देने अर्थात् नाश कर देने में समर्थ हैं ॥१६४॥

(१२६) रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।

इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शतादश ॥१६५॥

(ऋ० ६।४७।१८)

तत् अस्य

जब राक्षसगण माया करके एक से अनेक दिखलाई पड़ने लगे तब इन श्रीराम जी का रूप

प्रतिचक्षणाय

राक्षसों की माया का प्रत्युत्तर देने के लिये राक्षसों के

रूपं रूपम् प्रतिरूपः

जितने रूप थे उतने ही उन राक्षसों के प्रतिकूल रूप

बभूव ।

हो गया। अर्थात् श्रीराम जी ने उतने रूप एक साथ

बना लिया ।

इन्द्रः मायाभिः

परमैश्वर्यमान् श्रीरामजी अपनी इच्छा = योगमाया से

पुरुरूपः ईयते ।

एक काल में अनेकों रूप बना लेते हैं। यद्यपि कि

अस्य दश

इन श्रीराम के अनन्त अवतार हैं तथापि दश अव-

तार परम विख्यात हैं और

शताः हरयः युक्तः ।

इस समय तो ये श्रीराम सैकड़ों “शतं सहस्रमयुतं

सर्वेह्यानन्त वाचकः । मा० भा० द्रो०” अनन्त बानरों

से युक्त हैं ।

अन्य श्रुति में भी बानरों की असंख्यता बताते हुये कहा है कि—

अयं वै हरयोऽयं वै दश च शतानि च

सहस्राणि च बहूनि चानन्तानि च । (वृ० उ० २।५।१६)

कृष्णकर्ण को मारने के लिये जब श्री राम जी जाने लगे तब लक्ष्मण जी से कहा कि—

धनुर्हस्तादाददानोऽमृतस्याऽस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
 अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम् ॥१६६॥
 (ऋ० १०।१८।६ अथर्व वेद १८।२।६० में इस मन्त्र का उत्तरार्ध ऋग्वेद से भिन्न है ।)

अमृतस्य अस्मे हस्तात् इस अमृत स्वरूप = मुझसे अर्थात् मेरे हाथ से
 धनुः* आददानः धनुष अर्थात् सैन रक्षण का भार लेकर
 क्षत्राय वर्चसे बलाय च वीर्य, तेज और बल की सुरक्षा के लिये
 त्वं अत्र एव । वयं तुम यहीं रहो । मैं अकेले ही जाकर
 अभिमातीः सुवीराः इस गर्वयुक्त सुन्दर वीर कुम्भकर्ण को
 स्पृधः जयेम । समर में जीतता हूँ अर्थात् मार डालूँगा ॥१६६॥

(१३०) यः सृबिन्दमनर्शनिं पिप्रुं दास मही शुवम् ।

बधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ १६७ ॥

(ऋ० ८।३२।२)

उग्रः यः श्रीरामजी अत्यन्त तेजस्वी हैं जिन्होंने
 सृबिन्दम् अनर्शनिम् पाप कर्ममें अपने वीर्य को नष्ट कर देने वाला कामी†
 चित्त की दुर्वृत्तियों के रोकने में असमर्थ लोभवत्
 पिप्रुम् काटने पर भी जिसका शिर बढ़ता जाता रहा ।
 दासम् अहीशुवम् पूर्व जन्म के दास भानुप्रताप या जय विजय, अब
 सौंप के समान क्रोधरूपी विष से हरदम भरा रहने
 अपः, रिणन्, बधीत् । वाला पानी भरी खाल तुल्य रावणकी देहको खण्ड-
 खण्ड करते हुए मार डाला ।

वेद भाष्य कारों में किसी ने 'सृबिन्दु, अनर्शनि, पिप्रु, दास और अही-
 शुव' नामक पाँच विशेषण न मानकर पाँच नाम के अलग-अलग राक्षस
 माना है । किसी वेद भाष्यकार ने इनकी उपमा 'सृबिन्द-निर्वीर्य-प्रहस्त-

* तुम सुग्रीव विभिषण अनुज होंभारहु सैन ।

मैं देखौँ खल बल दलहिं बोले राजिव नेन ॥

† मोह दशमौलि तद्भ्रात हंकार पाकारि जितकाम० (विनय पत्रिका ५८)

चित्तनिरोधनादगतिक अहङ्कार-अतिकाय, लोभ-कुम्भकर्ण' काम रावण और क्रोध इन्द्रजित कहा है। तथा किसी भाष्यकार ने—सृबिन्द = मत्सर-महोदर, अहङ्कार-कुम्भकर्ण, लोभ-अतिकाय, काम इन्द्रजित् और मोह को रावण कहा है ॥ १६७ ॥

रावण को श्री राम जी ने अकेले मारा है यह ऊपर की श्रुति बतला चुकी है अब श्रुति बताती है कि राक्षसी सेना को श्रीराम जी ने बानरों को सहायक बनाकर मार डाला—

आशु शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एक वीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥१६८॥
(ऋ० १०।१०३।१, अथर्व० १६।१३।२, शु० य० १७।३३, साम० २१।१।१,
तै० सं० ४।६।४।१ नि० १।१५)

आशु	उन बानरों में प्रत्येक बानर शीघ्रगामी हैं। कई
शिशानः	पत्थरों के शिल्पी हैं अर्थात् पत्थरों को शान दिया;
वृषभः न भीमः	गढ़ छाँट, काट कर सेतु योग्य बना लिया, प्रत्येक बानर
घनाघनः	साँड़ के समान बड़े एवं भयंकर शरीर वाले हैं।
क्षोभणः	उनमें कोई बानर भुण्ड बाँध कर (घन) तथा कोई
चर्षणीनां क्षोभणः	बानर अघन (अकेले अकेले) ही लड़ता है। कोई
अनिमिषः	दस्यु अधर्मी राक्षसोंको लुभित = व्याकुल करदेता है
संक्रन्दनः	हर एक बानर किसी न किसी देवता के अवतार हैं
साकम् एकः वीरः	इससे प्रत्येक बानर खूब गर्जते हैं इन
इन्द्रः	बानरों को साथ लेकर सारे ब्रह्माण्ड में एक वीर
शतं सेनाः अजयत् ।	परमैश्वर्यमान् सर्व समर्थ श्रीराम जी ने रावण की
	सैकड़ों अनन्त सैन्य दल को जीत लिया अर्थात् सारी
	राक्षसी सैन्य को मार डाला।

सारी राक्षसी सैन्य के मर जाने पर रावण अकेला लड़ता रहा और बराबर शिर भुजा कटने पर भी क्यों नहीं मरता था ? इसका कारण पीछे मंत्र १४ वें में बताया जा चुका है ॥ १६८ ॥

स स्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हँसासो नीलपृष्ठा अपतन् ।
विश्वं शर्द्धो अभितो मा निषेद नरो न रणवाः सवने मदन्तः ॥१७६॥

स स्वम्

यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् ।
अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्व पदास्पदम् ॥
इस श्रौत निरुक्ति से स्वः का अर्थ हुआ “परमानन्द
चिद्धिग्रह श्री हरि” ‘स’ अव्यय का अर्थ सहित है
अर्थात् जब परमानन्द चिद्धिग्रह श्रीरामजी के संयुक्त
अवतार के समय भूमंडल में—

नीलपृष्ठाः

‘डलयोरैक्यम्’ नीड = स्वर्ग, पृष्ठ = स्थान है
जिनका, ऐसे

चित् ह हँसासः

आ अपतन्

शुम्भमानाः

तन्वः

जीव विशेष ही हैं निश्चय करके जो; ऐसे वे देवता लोग
सब प्रकार से भगवत्सेवा के लिये सन्नद्ध होकर
आये हैं और परमशोभनीय दिव्य शरीर वाले
इच्छा शरीर धारण किये हैं । वे देवगण अंश मात्र
से स्वर्ग में स्थित थे और पूर्ण रूप से पृथ्वी पर
अवतीर्ण हुये थे, भगवत् सेवा के लिये । यहाँ आकर
सम्पूर्ण रूप से ‘शृधुक्लेदने’ वृष्टि करने वाले अन्त-
रिक्ष स्थान के वे देवगण

विश्वम् शर्द्धः

अभितः मा (माम्)

निषेद (निषपाद)

न नरः सवने

रणवाः

मदन्तः

सवने ।

सब प्रकार से मेरे पास मुझसे अभिन्न-सखा हाकर
रहें मुझे सुखी करें इस पर दृष्टान्त है कि
जैसे मनुष्य पुत्र जन्मादि उत्सव में
रमणशील = प्रफुल्लित होकर
आनन्द मत्त हो जाता है । इसी तरह भगवान के
अवतार लेने पर
युद्ध रूपी यज्ञ में लंका में आनन्दित मन से ऋक्ष-
बानर रूप में देवता लोग भगवान के चारों ओर

स्थित हुये 'चिदानन्द भय देह तुम्हारी।' 'सुर अंशिक
सब कपि अरु रिद्धा' ॥ १६६ ॥

(१३१) भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सु प्रकेतैर्द्युभिराग्निर्वितिष्ठन्नशद्विर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥१७०॥

ऋ० १०।३।३ साम १५।२।३

भद्रः भद्रया

श्री राम जी श्री सीता जी के सहित

सचमान्, आगात्

बनवासी रूप से सुसज्जित होकर दण्डक में गये

पश्चात्

वहाँ जाने पर श्री राम जी के परोक्ष में पञ्चवटी में

स्वसारम्

'पर स्त्री माता एवं बहिन के तुल्य होती है । इस
न्याय से बहिन रूप अथवा पृष्ठ ८३ के अनुसार
अपनी कन्या श्री सीता जी को हरने

जारः अभ्येति ।

जार बन कर पर स्त्रीगामी रावण आया ।

यहाँ तक पूर्व कथा का सम्बन्ध है अब आगे की कथा श्रुति बतलाती है
कि रावण बध के बाद जब लोकमर्यादा रक्षार्थ श्रीरामजी ने श्री जानकीजी
को बहुत दुर्वचन कहा जिससे श्रीजानकीजी अपनी निष्पापता = शुद्धि सिद्ध
करने के लिये सबके समक्ष ही प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर गईं उस समय

अग्निः वितिष्ठन्

अग्नि उस प्रज्वलित ज्वाला में अपने देव विग्रह से

उशद्भिः वर्णैः

आकर के अत्यन्त कमनीय वर्ण आकृति एवं

सुप्रकेतैः

सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न अर्थात् सर्वथा निर्दोष,

द्युभिः

द्युलोक मोक्ष-नित्यविभूति को प्रदान करने वाली; श्री
राम पत्नी श्री सीता जी के सहित

रामं अभि अस्थात् ।

श्री रामजी के सामने उपस्थित किया श्री सीताजी को
सर्वथा निर्दोष सिद्ध करके श्री राम जी की बगल में
स्थापित किया ॥१७०॥

उस समय जो लोग श्री सीता जी को शुद्ध जानते थे

(१३२) ते अवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।

वीडुहरास्तप उग्रो मयो भूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन ॥१७१॥

ऋ० १०।१०६।१ अथर्व ५।१७।१

ते अकूपारः

सलिलः मातरिश्वा

वीडुहराः, तपः

उग्रः, मयः

भूः, आपः

प्रथमजा देवीः

प्रथमा

वे लोग अर्थात् समुद्र और समस्त

निर्मल जल या जलाधिदेव वरुण, वायु तथा,

कालचक्र के सञ्चालक निमेषाद्यधिदेवगण, धर्म

रुद्र, आनन्दादि के अधिदेवगण इन्द्र यमादि

पृथ्वी, शरीर = इन्द्रियों के अधिदेवगण और

सृष्टि के आरम्भ में प्रगट हुई देवी योगमाया आदि

सबने प्रत्यक्ष होकर श्री रामजी से अनादि आह्ला-

दिनी शक्ति श्री सीताजी के

ब्रह्म किल्बिषे ऋतेन

श्रवदत् ।

ब्रह्म वीर्यरक्षा के दोष के सम्बन्ध में सत्य की शपथ ले

निवेदन किया कि सीता जी सर्वथा निर्दोष हैं १७१

श्री सीता जी को देकर वे सब श्री राम जी को समझाने लगे कि—

(१३३) सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहणीयमानः ।

अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्यानिनाय ॥१७२॥

ऋ० १०।१०६।२ अथर्व ५।१७।२

प्रथमः राजा सोमः

ब्रह्मजायाम्

पुनः

प्रायच्छत्

सबसे पहिले सम्राट् पद पाने वाले चन्द्रमा ने

अपने गुरु बृहस्पति की धर्मपत्नी को हरण करके

और उससे पुत्र उत्पन्न करने के पश्चात् पुनः

बृहस्पति को लौटा दिया । चन्द्रमा ने तारा के साथ

बलात्कार किया था पर तारा का स्वकृत दोष न होने

से तारा के ग्रहण कर लेने पर, किसी के द्वारा

बृहस्पति निन्दित नहीं हुये किसी ने निन्दा न की

तारा को निर्दोष बतलाने वाले सूर्य या मित्र देवता,

जलाधिदेव वरुण, सर्वसाक्षी वैश्वानर अग्नि और

होता आदि यज्ञ के ऋत्विज = यज्ञाचार्य या देव

अदहणीयमानः

अन्वर्तिता मित्रः

वरुणः, अग्निः

होता

हस्तं निनाय
आसीत् ।

सभी ने तारा का हाथ पकड़ कर = आगे करके बृहस्पति के पास लाकर स्थित कर दिया और बृहस्पति ने उसे स्वीकार कर लिया । जब दूसरे से पुत्र हो जाने पर भी स्वकृत दोष न होने के कारण तारा को बृहस्पति ने ग्रहण कर लिया, तब श्री सीता जी तो लङ्का में पूर्ण रूप से ब्रह्मचारिणी रहीं अतः आप अवश्य स्वीकार कर लें ।

इसी तरह बाली ने सुग्रीव से छीनकर सुग्रीव की पत्नी रुमा से बलात्कार करते हुये अपने घर रखा था परन्तु रुमा का कोई भी स्वकृत दोष न होने के कारण ही रुमा को सर्वथा निर्दोष मानकर श्री राम जी ने ही सुग्रीव को दिया था “पावा राज कोष पुरनारी ।” परन्तु अहल्या ने तो (वा० रा० में) मुनि वेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन । मतिं चकार दुर्मेधा देवराज कुतूहलात् ॥

अपनी दुर्वासना से इन्द्र को पहचान कर अपना सतीत्व अर्पण कर दिया था, इसीसे वह महर्षि गौतम द्वारा परित्यक्ता एवं शापित हुई थी । अतएव वेद मानने वाले प्रत्येक वैदिक धर्मानुयायी-सनातनधर्मी आस्तिक मात्र को चाहिये कि अत्याचारी गुंडों द्वारा बलपूर्वक भ्रष्ट की गई अबलाओं को बिना किसी प्रत्यवाय के ग्रहण कर उन्हें समाज में पहले सा स्थान दें जैसा कि आज भी पाकिस्तानी बर्बर गुण्डों से अपहृता बलात् भ्रष्ट की गई ललनाओं को सद्विचार शील सज्जन गण ग्रहण करते हैं और ग्रहण करना ही चाहिये । धर्म-शास्त्रों में मान्य धर्मशास्त्र मनुस्मृति में भी ऐसा ही करने को धर्म बतलाया गया है—

बलाद्दत्तं बलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम् ।

सर्वं बलकृतान् अर्थान् अकृतान् मनुरब्रवीत् ॥ ८।१६८

परन्तु स्वेच्छा से भ्रष्ट हुई कुल दूषिकायें तो सर्वथा त्याज्य ही हैं । वे तो—

“पति वंचक पर पति रति करहीं । रौ रौ नर्क कल्प शत पर हीं ॥”

“पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई । विधवा होय पाइ तरुणार्ई ॥”

बृहस्पतिपत्नी तारा के समान पुत्रोत्पत्ति की कल्पना ही नहीं की जा सकती जब कि—

(१३४) हस्तेनैवग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।

न दूताय प्रह्वे तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥१७३॥

(ऋ० १०।१०६।३ अथर्व ५।१७।१०)

हस्तेन ग्राह्यः एव

अस्याः आधिः

इयम् ब्रह्मजाया

इति अबोचन्

चेत्

दूताय

प्रह्वे एषा

तथा न तस्थे

क्षत्रियस्य

राष्ट्रम् गुपितम् ।

(१३५) देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषदुः ।

भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धा दधाति परमेव्योमन् ॥१७४॥

(ऋ० १०।१०६।४ अथर्व ५।१७।६)

एतस्याम् देवाः

पूर्वे

सप्त ऋषयः

रावण ने हाथ से सीताजी को पकड़ा ही था इससे ही इन सीता जी को महान् दुःख हुआ है ।

ये श्री सीता जी ब्रह्म-विवाह पद्धति से दूसरे की पत्नी हैं तथा वनवास काल के कारण ब्रह्मचर्य ब्रती हैं और साक्षात् ब्रह्म की पत्नी हैं । उसी समय

ऐसा देवताओं ने रावण से यह भी कहा कि यदि इनके साथ बलात्कार की चेष्टा करोगे तो उसी समय नल कुबेर के श्राप से चेष्टा करते ही तुरन्त मर जावोगे । अतएव

हे श्री राम जी आपके दूत—पार्षद जय जन्मान्तर में रावण के हरण करके

वेग से ले जाने पर भी इन श्री सीता जी ने वैसा रावण का अनुसरण नहीं किया,

अपितु क्षत्रिय कुलावतीर्ण आपके

राजकुलोचित धर्म की रक्षा किया ॥ १७३ ॥

इस सीताजी के सतीत्व व्यवहार में सब देवगण और श्री राम के पूर्वज तथा ब्रह्मा के मानसिक पुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और नारदादि सभी सप्तर्षि मंडल

वेदों में राम कथा

ये तपसे निषेदु
अवदन्त, भीमा,
ब्राह्मणस्य जाया
उपनीता
परमे व्योमन्
दुर्धराम् दधाति ।

जो लोग कि ब्रह्मविचार के लिये एकत्र बैठे थे,
एक मत से कहने लगे कि अरे रावण ! राक्षस कुल
को मृत्यु देने, नाश करने वाली ये
पर ब्रह्म श्री रामजी की पत्नी श्री सीता जी कैसे भी
श्री राम जी के पास से अलग की गईं तो
परलोक में सुख देने वाले तुम्हारे तप यज्ञादि कर्म
नाश करके तुम्हे जीते ही नर्क यातना के समान
कष्ट देने वाली हो जाती हैं अर्थात् हो जायेंगी ।

कालरात्रि निशिचर कुल केरी । तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥१७४॥

(१३६) ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।

तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥१७५॥

(ऋ० १०।१०६।५, अथर्व ५।१७।५)

बृहस्पतिः देवानां एकं
अंगं भवति जाया स
सोमेन नीतां
अन्वविन्दत् ।

देवगुरु बृहस्पति देवतों के एक अर्थात् प्रधान
सहायक होते हैं । वे बृहस्पति अपनी पत्नी ताराको
सोम के द्वारा बलात्कृत होने पर भी
स्वीकार कर लिया । यद्यपि बलात्कार से सोम ने
उससे पुत्र भी उत्पन्न कर दिया था ।

सः विषः

परन्तु वह रावण यद्यपिकाम विष से व्याप्त था तथा-
पि सप्तर्षियों के वचन से उसके

वेविषत्
ब्रह्मचारी चरति

नख से शिख तक सर्वांग में भय व्याप्त हो गया था
इससे सीता के सामने ब्रह्मचारी ही रहता था । इस
लिये श्री सीताजी लङ्का में सदैव शुद्ध रहीं

देवाः जुह्वं न ।

जैसे श्रुवा में रखी हुई मन्त्र पूत हवि को देवता लोग
ग्रहण करते हैं वैसे ही तन-मन वचन पूता श्रीसीताजी
को आप ग्रहण कीजिये ॥१७५॥

इस तरह उपर्युक्त प्रकार से श्री सीता जी को निर्दोष बताकर

(१३७) पुनर्वै तेवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।

राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥१७६॥

(ऋ० १०।१०६।६ अथर्व ५।१७।१०)

वै ब्रह्मजायाम्

सत्यम् कृण्वाना

देवाः पुनः

अददुः । पुनः

उत्

मनुष्याः अददुः

राजानः पुनः ददुः ।

सर्वथा निष्पाप ब्रह्मचारिणी श्री सीताजी को

सत्य की शपथ लेते हुये

ब्रह्माशिवादिकों ने अग्नि के साक्षी देने के बाद

श्री सीताजी के सत्यता की साक्षी दिया पुनः

देव लोक से आये हुए, दशरथ, हरिश्चन्द्र आदि

मनुष्यगण ने श्री सीताजी को सच्चरित्रता कहा

और इसके बाद इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि

दिशाओं के राजाओं ने श्री सीता जी के पातिव्रत की

साक्षी दिया ॥ १७६ ॥

जिस तरह विवाह काल में सर्व देवताओं की साक्षी से कन्या पति को दी जाती है उसी तरह श्री सीता जी के पुनर्गर्हण में आप को कोई दोष नहीं है इस प्रकार श्रीराम जी को—

(१३८) पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम् ।

ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥ १७७ ॥

(ऋ० १०।१०६।७ अथर्व ५।१७।११)

निकिल्बिषम्

देवैः ब्रह्मजायाम्

पुनः

दायकृत्वी पृथिव्याम्

ऊर्जम् भक्त्वाय

सबके द्वारा निर्दोषिता घोषित कर देने के बाद

देवताओं ने श्री सीताजी को अग्नि जाता कन्या

प्रत्यक्ष देखने से फिर से 'रामहिं समर्पी आनिसो ।'

कन्या दानवत दान दिया और जब श्रीरामजी राज

गद्दी पर बैठे तब पृथ्वी की उत्तमोत्तम

अन्न, रत्न, राज्यादि वस्तु विभक्त कर अर्थात् विभी-

षण सुग्रीवादिको राज्य ब्राह्मणादिको रत्न, धन,

गाय आदि और देवताओं को, यज्ञ, हवि, सोमरस,

पुरोडास आदि विभक्त कर जब सुस्थित हुये तब

उरुगायम्
उपासते ।

महान् कीर्ति वाले श्रीराम जी की सभी
उपासना करते हुये कालक्षेप करने लगे ॥१७७॥

श्रीराम जी को सिंहासन पर अभिषिक्त करके बशिष्ठादि महर्षि जब आशी-
र्वाद दे चुके तब—

प्रतद्दुः शीमे पृथवाने वेने प्र रामेऽवोचमसुरे मघवत्सु
ये युक्त्वाय पञ्चशता स्म यु पथा विश्राव्येषाम् ॥ १७८ ॥

(ऋ० १०।६३।१४)

ये पञ्चशता
युक्त्वाय यु
पथा, स्म, एषाम्
दुः शीमे
पृथवाने, वेने
असुरे
मघवत्सु
रामे
प्रतत् विश्रावि
प्र अवोचम् ।

जो देवता पाँच सौ घोड़ों से खींचे जाने वाले
रथ पर चलनेवाले हैं वे इस रामाभिषेक के
उत्सव में आये हैं । इन देवताओं की वाणी
अनन्त स्वरूप वाले, व्यवहार में—राजारूप में
विस्तृत राज्य वाले, सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य वाले,
सुरावर्जित-परम सदाचारी अतएव महाबली
सर्व गुण एवं सर्वश्री से सदैव सम्पन्न रहने वाले,
रामजी में परमभक्ति के कारण अब तक के किये हुये
परमोत्कृष्ट उन चरित्रों को स्मरण कर सुनाते हुये
परमोत्कृष्ट स्वर में गान करने लगे

भिन्न-भिन्न स्तुति करि गे सुर निज-निज धाम ॥ १७८ ॥

देवताओं ने अपनी सुन्दर वाणी में श्रीराम जी की कीर्ति का गान किया।
उसका वर्णन जिन मन्त्रों में है उनमें से कुछ निम्नलिखित मन्त्र हैं—

इन्द्र क्षत्रमभिवाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरुलोकम् ॥१७९॥

(ऋ० १०।१८०।३ अथर्व ७।८४।२)

इन्द्र !
चर्षणीनां वृषभ
क्षत्रम् वामम्

हे परमैश्वर्यमान् श्री रामजी !
शुभ कामनाओं की वर्षा करने वाले ! आपने
क्षत्रिय धर्म का रक्षा करने और

ओजः

अजायथा उरुं जनं

अमित्रयन्तम्

अपानुदः

देवेभ्य उरु लोकम्

अकृण ।

बल को यथा स्थान प्रगट करने की शिक्षा देने को जन्म लिया है जन्म लेकर बहुत से मनुष्यों को खा जानेवाले रावण एवं रावण के अनुयायियों को दूर कर दिया = मार डाला । राक्षसों को मारकर देवताओं के लिये उनके श्रेष्ठ लोक को निष्कण्टक एवं सुखी बनाया ॥ १७६ ॥

किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत प्रयद्वक्षे शिपिविष्टोऽस्मि ।

मा वर्षो अस्मदपगूह एतद्यदन्य रूपः समिथे बभूव ॥१८०॥

(तै० स० २।२।१२।५ नि० ५।८, ऋ० ७।१००।६, साम १७।१।६)

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है कि किसी समय बशिष्ठ जी के लिये किसी दुष्ट से भगवान् ने युद्ध किया था इससे देवताओं के साथ महर्षि बशिष्ठ जी भी श्रीराम जी की स्तुति करते हैं—

विष्णो ! किम् ते

परिचक्ष्यं इत् भूत

यत् प्र ववक्षे

शिपिविष्टः अस्मि

ते, यत् अन्यः रूपः

समिथे बभूव

एतत् वर्षः अस्मत्

मा उपगूह ।

हे सर्व व्यापक प्रभो ! क्या आप के नाम का प्रख्यापन करने में पूर्ण रूपेण कोई समर्थ होगा

आप जो श्रुतियों द्वारा यह कहते हैं कि

मैं शिपिविष्ट हूँ = मेरा तेज सब में प्रविष्ट है ।

तब आप का, जो दूसरा तेजोमय रूप

युद्ध भूमि में प्रगट हुआ था वही

यह तेजोमय विग्रह है इस तथ्य को हमसे

मत छिपाइये । अर्थात् हमलोगों को उस तेजोमय

विग्रह का भी दर्शन करा दीजिये ॥१८०॥

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।

युवेदापि त्वमिच्छसे ॥१८१॥ (ऋ० ८।११।१३)

इन्द्र ! त्वम्

सनात् अभ्रातृव्यः

जनुषा असि

त्वम् अना

हे परमैश्वर्यमान प्रभो श्री राम जी ! आप तो

सदा अनादि काल से बन्धुओं के सहित हैं फिर भी जन्म = अवतार लिया करते हैं ।

आप अग्रणी हैं आपके ऊपर कोई नेता नहीं है ।

त्वम् अनापि:
युधा इत्
आपि इच्छसे ।

आपको किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती
आप तो युद्ध = दण्ड द्वारा ही भक्तों-जीवों की
सहायता = शुद्ध करने की इच्छा करते रहते हैं ।

शुभ अरु अशुभ कर्म अनुहारी । ईश देई फल हृदय विचारी ॥१८१॥

यज्जायथा अपूर्व्यं मघवन् वृत्र हत्याय ।

तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तम्ना उत द्याम् ॥१८२॥

ऋ० ८, ८६, ५ साम० ६।२।७, १२।६।४

अपूर्व्य ! मघवन् !
यत् वृत्र
हत्याय, जायथा
तत् पृथिवीम्
अ प्रथयः, उत्

हे सर्वादि ! हे ज्ञानवान्, लक्ष्मीवान् श्री राम जी !
आपने जो पाप एवं पापी राज्ञसों के
मारने के लिये अवतार ग्रहण करके राज्ञसों को मारा
है उससे आपने पृथ्वी का
विस्तार किया अर्थात् प्रजा को सुखी किया जिससे
प्रजाओं के कारबार, जीविका साधनादि की अधिक
वृद्धि हुई । प्रजा के सुखी होकर यज्ञादि करने से
स्वर्गस्थ देवगण भी स्थिर हो गये । जो कि राव-
णादि के डर से मारे मारे घूमते थे ॥१८१॥

द्याम् अस्तम्ना ।

त्वं ह त्यत् सप्तभ्योऽजायमानोऽशत्रुभ्योऽभवः शत्रुरिन्द्र ।

गूढे द्यावा पृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणंधाः १८३

अथर्व २०, १३७, १ ऋ० ८, ६६, १६ साम० ३।१०।४

इन्द्र ! त्वम्
अजायमानः सप्तभ्यः
अशत्रुभ्यः

हे परमेश्वर्यशालिन् श्री राम जी ! आप अजन्मा हैं
तो भी जन्म ग्रहण करके रावणा, कुम्भकर्णा, मेघनाद,
त्रिशिर, दूषणा, खर और सुबाहु ये सात वीर जो
शत्रु रहित थे अर्थात् जिनसे शत्रुता करने सम्मुख
लड़ने की हिम्मत किसी को नहीं थी । ऐसे प्रबल उन
सातों खलों के

शत्रुः अभवः

आप शत्रु हुये । उन सातों के मर जाने के बाद अब

त्यत् द्यावा
पृथिवी गूढे

अविन्दः

विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः

रणम् धाः

उभेचिदिन्द्र रोदसी आ पप्राथोषा इव महान्तं त्वा महानान् ।

सम्राजं चर्षणीनां देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा ॥१८३॥

ऋ० ७।२०।४ (भाष्यों में इस मन्त्र में बहुत पाठ भेद है)

इन्द्र !

उभेरोदसी पृथिवी

उषः इव

आ प्रपथ

जनित्री भद्रादेवी

महानां महान्तं त्वा

चर्षणीनां सम्राजम्

अजीजनत्

हे परमात्मन् ! आपने दुष्ट बध कर तीनों लोकों का कल्याण किया इससे सर्वज्ञ अर्थात्

दोनों अन्तरिक्ष आकाश और पाताल तथा भूमण्डल में अपने यश के प्रातः काल के समान शीतल प्रकाश का विस्तार किया अर्थात् आपका यश त्रैलोक्य व्याप्त है !

जन्म देने वाली कल्याण रूपणी कौशल्या देवी ने पूज्य ब्रह्मादिकों से भी पूजनीयतम आपको सम्पूर्ण मनुष्यों के सम्राट् रूप में उत्पन्न प्रकट किया ॥१८३॥

अहन् विभार्षिसायकानि धन्वर्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।

अहन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयोरुद्रा ! त्वदस्ति ॥१८४॥

ऋ० २।३३।१० तै० आ० ४।५।७

अहन् ! त्वम्

धनुः सायकानि विभार्षि

यजतं निष्कं विभार्षि

हे पूज्यतम प्रभो ! आप सदैव अपना दिव्यायुध धनुष और बाणों को धारण किये रहते हैं । और समय समय पर

जगद्रक्षार्थ अनेक चित्र विचित्र रूप धारण किया करते हैं । और

वेदों में राम कथा

अहं ! इदं अभ्वं
वैश्वम् दयसे
रुद्र !

वै त्वत्
ओजीयः न अस्ति ।

इस मन्त्र में आया हुआ 'विश्वरूपम्' शब्द 'निष्कं' का ही विशेष्य समझना चाहिये ॥१८५॥

धनुर्विभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतबधं शिखण्डिन् ।
रुद्रस्येषुश्चरति देव हेतिस्तस्यै नमो यतमस्या दिशीतः ॥१८४॥

(अथर्व० ११।२।१२)

*शिखण्डिन् !
धनुः विभर्षि
सहस्रघ्नि, शतबधम्
हिरण्ययं, हरितम्
देव !
हेतिः† रुद्रस्य इषुः
अस्या दिशीतः चरति
यतम् तस्यै नमः ।

हे शिखा धारण करने वाले श्री राम जी
आप ऐसा धनुष धारण करते हैं जो कि
हजारों का नाशक और सैकड़ों को मारने वाला है,
तथा स्वर्णमय एवं सूर्यवत् कान्तिमान है ।
हे दिव्य क्रीडनशील प्रभो ! उस धनुष पर से
अग्निज्वाला वत्प्रज्वलित पाशुपत-ब्रह्मास्त्रादि मन्त्रितबाण
इस संसार की सारी दिशाओं में चलता है अर्थात्
आपका शत्रु कहीं भी नहीं बच सकता ।
जिस दिशा में आप का बाण है उसे प्रणाम है ॥

देवताओं द्वारा श्रीराम जी के कीर्तिगान् का स्पष्टीकरण इन दो मन्त्रों में किया जाता है—

(१३६) सृजः सिन्धू रहिना जग्रसानां आदिदेताः प्रविविज्रे जवेन ।

* शिखा चूड़ा शिखण्डश्च (अमरकोश)

† वह्नि ज्वाला च हेतयः । (अमर)

मुमुक्षुमाणा उत या मुमुक्षेऽथैता न रमन्ते नितित्ताः ॥१८५॥

(ऋ० १०।११।६)

अहिना जग्रसानाम् रावण रूपी महान् सर्प से डसे गये
सिन्धून् समुद्रों को उन्मुक्त कर मानों फिर से उनकी
सृजः । रचना की गई हो अर्थात् मानों उसका पुन-
जन्म हुआ हो

आदित् एताः उसी रावण से डरकर छूटकर ये नदियाँ
जवेन प्रविबिज्जे अपने वेग से चलने = बहने लगीं । तथा
मुमुक्षुमाणाः जो लोग रावण के कारागार से छूटना चाहते थे वे
मुमुक्षे उत याः उसकी बन्दी से छूट गये और जो
एताः तित्ताः ये सब देवतागण रावण के कारण शोक मोह से
पीड़ित हो जीवन में सदैव कटुता का ही अनुभव
करते हुये किसी तरह का

न रमन्ते अथ सुख नहीं पाते थे अब वे सब सन्पूर्णा
नितित्ताः रमन्ते । कटुता से रहित होकर आनन्दोपभोग करते हैं ॥१८५॥

(१५३) सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिबो नाके मधुजिह्वा असश्वतः ।

अस्य स्पशा न निमिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥१८६॥

(ऋ० ६।७३।४, अथर्व ५।६।३)

मधु जिह्वाः अत्यन्त मीठी वाणी से हित और प्रिय बोलनेवाले
सहस्रधारे देवता एवं ऋषिगण जो कि सहस्रधार से घृत
क्षरण वाले सोमाभिषवसवन में भाग लेने वाले हैं वे
दिवः नाके स्वर्ग निवासी देवर्षिगण अन्तरिक्ष में घूम-घूमकर
समस्त प्राणियों को जो कि

असश्वतः यज्ञ, तप आदि करने में असमर्थ हैं उन्हें सिखाते
समस्वरन् समझाते हैं कि, समुद्र के तीर में विश्वधारक
अस्य, स्पशाः पदे पदे इन श्री रामजी के पहरेदार बानर गण हैं थोड़ी-थोड़ी
दूर पर वे पहरेदार नियत किये गये हैं,

ते च
न निमिषन्ति

पाशिनः

सेतवः

अव ।

सोने की कौन कहे अपने पहरे पर वे बानरगण पलक तक नहीं झपकाते अर्थात् हरदम सावधान रहते हैं। वे बहुत प्रकार से अपनी सेवा उपस्थित करने वाले हैं अर्थात् सब प्रकार से श्रीराम जी की सेवा में तैयार रहते हैं। और वे सब बानर वीर अनेक आयुध धारण करनेवाले हैं 'गिरि पादप नख आयुध धारी ।'

उन्हीं बानरों ने मिलकर पुल बनाया। तो क्या बानरों की शक्ति पानी पर पहाड़ तैराकर पुल बनाने की थी? नहीं, वह तो श्रीराम जी की कृपा है जो श्रीराम जी बानर भालु तक पर करते हैं भला उनकी कृपा से वञ्चित कोई भी मनुष्य कैसे रह सकता है जो कि भगवत्कृपा कांक्षी हो। अतः सभी मनुष्य को सदैव प्रार्थना करना चाहिये कि

हे प्रभो ! रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए ॥१८६॥

(१४०) सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन् सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमाते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः ॥१८७॥
(ऋ० १०।१११।१०)

सध्रीचीः सिन्धुम्

उशतीः इव, आयन्

सनात् पूः भित्*

सहधर्मचारिणी श्री सीता जी समुद्र के समान अपार एवं गंभीर गुण युक्त श्रीरामजी के पास मिलन कामना करती हुई कमनीय नदी के समान आ गई और सदैव निरन्तर शरीर को शोषण करने वाला तथा पुर अथवा नगर गाँव आदि सभी को अग्नि आदि द्वारा-भेदन कर उजाड़ देने वाला और

* 'नगर गाँउपुर आगि लगावहिं ॥'

आसाम् जारः आरितः । इन सीता जी पर कुदृष्टि वाला रावण मारा गया ।
 इन्द्र ! ते अस्तम् हे परमैश्वर्य शालिन् श्री राम जी ! आपके घर
 प्रार्थिवाः वसूनि अयोध्या जी में पृथ्वी की सारी सम्पत्ति ।
 आजग्मुः †अस्मे आ गई है । हम लोग आपके दर्शनाभिलाषी
 पूर्वीः सूनृताः । तो निरन्तर ही अनाद्यनिधना वेदवाणी से आपकी
 स्तुति किया करते हैं ॥ १८७ ॥

देवता एवं महर्षियों के स्तुति कर लेने के बाद वेद ने भी श्री राम जी की स्तुति किया जिसका एक मन्त्र यह है—

बोध मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।

पीयते त्वो अनु त्वो गृणाति बन्दारुस्ते तन्वं बन्दे अग्ने ॥१८८॥

(ऋ० १।१४७।२, शु० य० १२।४२, तै० सं० ४।२।३।४, नि० ३।२०)

यविष्ठ ! मे अस्य हे सदैव युवा रहने वाले भगवन् । मेरे इस
 मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य पूजनीय अच्छे प्रकार से सजाये हुए
 वचसः बोध । स्वधावः स्तोत्र को सुनिये । हे सुन्दर रीति से प्रजा को धारण
 करने वाले राजा रूप परमेश्वर
 त्वः पीयते त्वः कोई तो आपकी निन्दा करता है और कोई
 अनुगृणाति । अग्ने ! आपकी स्तुति करता है । हे प्रकाश रूप परमेश्वर !
 ते बन्दारुः हम वेद तो आपकी स्तुति करने वाले हैं । अतः
 ते तन्वम् आ आपकी मूर्ति को सम्यक् प्रकार से विधिपूर्वक
 बन्दे । बन्दना करते हैं ।

‘ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुण यश नित गावहीं ।’ ॥८८८॥

(१४१) सचन्तः यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।

आयन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो न किरद्भानु वेद ॥१८९॥

(ऋ० १०।१११।७)

† ऋधिसिधि संपति नदी सुहाई । उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई ।

केतवः अस्य राम्

ज्ञानी लोगों ने इस वेदत्रयी के सारभूत प्रणव के कारण राम पद को शब्दतः एवं अर्थतः

अविन्दन् । यत्

प्राप्त किया । जो लोग 'राम्' पद से 'ओम्' नहीं मानते उनके लिये श्रुति कहती है कि जैसे

उषसः

उषा काल में थोड़ा प्रकाश होता है वैसे ही कल्पादि में अल्प प्रकाश जो कि विराट् रूपेण हुआ वह 'अ' कार रूप है और जो

सूर्येण

सूर्य के समान पूर्ण प्रकाश रूप हिरण्य गर्भ 'उ' है

सचन्तः

उन दोनों 'अ' 'उ' को एक में मिलाते हैं अर्थात् 'ओ' बनाते हैं

चित्राम् राम्

स्वर युक्त 'चित्र' अग्नि बीज 'राँ' को

अविन्दन् । दिवः

प्राप्त किया । दिन = जागृत काल का अनुभव किया हुआ, देखा हुआ और सुना हुआ पदार्थ ही

जैसे स्वप्न में पुनः प्राप्त होता है उसी तरह यह बीज 'राँ'

पुनः ददृशे

फिर दुबारा जानियों द्वारा ही देखा गया अर्थात् 'राँ राम्' ऐसा देखा गया उसके बाद

आयत्

उस 'राँ राम्' पद में 'आय जोड़ देने से 'राँ रामाय' ऐसा रूप बना । उसके बाद उसमें

नक्षत्रम्

चन्द्रमा अर्थात् चन्द्रमा का परम कारण हृदय के पर्यायवाची शब्द 'नमः' को जोड़ देने से 'राँ रामायनमः' ऐसा रूप बना ।

यह श्री राम मन्त्रोद्धार हुआ । श्रुति इसके बाद श्री राम मन्त्र के यजन का फल बतलाती है कि 'मन' जिसका रूप कि स्वाभाविक ही चंचल है 'मनोदुर्निग्रहं चलम् ।' ऐसा होते हुये भी—

यतः किः न

यति अर्थात् इस मन्त्र के याजक का मन फिर; इधर उधर विक्षिप्त; नहीं होता अर्थात् श्री राम मन्त्र

जापक का मन निर्विकार हो जाता है और उस निर्विकार मन से भगवान् श्री रामचन्द्र जी को वह साक्षात्-प्रत्यक्ष पा जाता है ।

अद्धा वेद ।

अर्थात् सविधि श्री राम मन्त्र जपने से श्री रामभद्र जी का प्रत्यक्ष दर्शन होता है । वयोवृद्ध रामायणी श्री श्यामसुन्दर दास जी (कड़ा—प्रयाग) ने अपनी 'वेद तत्व प्रकाशिका' पुस्तिका में इस मन्त्र की व्याख्या निम्न प्रकार से किया है ।—

भाषा भावार्थः—ज्ञानियों ने श्री राम सम्बन्धिनी वेदत्रयी सारभूता ब्रह्म बीज राँ रूपी सम्पत्ति को प्राप्त किया । प्रणव और राम में अभिन्नता है । सांख्य सिद्धान्त सिद्धान्तित कार्य कारण भाव के ऐक्य का सिद्धान्त करते हुये भदे निरासपूर्वक केतवः का विशेषण 'उषसः सूर्येण सचन्तः' पद से दिया गया है, उसका भावार्थ यह है कि उषोवत्' = कल्पमुखोवत्-अल्पप्रकाश 'विराट' 'आ' कार का सूर्य पूर्ण प्रकाश हिरण्य गर्भ 'उ' कार रूप से ऐक्य किया "अ + उ = गुण 'ओ'" यह कार्यत्व सामान्यात् 'ओम्' का उपलक्षण हुआ अतः स्पष्टतः राँ और 'ॐ' का ऐक्य है ।

यदि कोई सन्देह करै कि 'प्रणव' को ही ज्ञानियों ने प्राप्त किया 'राँ' को नहीं, तो इसी श्रुति में चित्राम् पद दिया है क्योंकि 'चित्रकिरण' होने से अग्नि को चित्र कहा जाता है । भावार्थ यह कि जिसमें वह अग्नि स्वर युक्त राँ है । यहाँ पर चित्र शब्द को अर्शादि मानकर " अर्शादिभ्योऽच् = ५।२।१२६ " पाणिनि के इस सूत्र से 'अच्' के बल से ऐसा अर्थ हुआ कि राँ राम का उपलक्षक है अतः स्पष्ट हुआ कि 'राँ' बीज को ही ज्ञानियों ने प्राप्त किया, अतः प्रस्तुत ऋचा के पूर्वार्द्ध से 'राँ' सिद्ध हुआ अब उत्तरार्द्ध से राम मन्त्र = बीज प्रथमपद, रामाय' मध्यम पद और 'नमः' अन्तिम पद सिद्ध होता है । यथा— 'दिवो न पुनर्ददशे' = जैसे दिन की प्रत्यक्ष की हुई वस्तु रात्रि में स्वप्नावस्था-पन्न मनुष्य को दिखलाई पड़ती है, वैसे ही 'राँ' फिर देख पड़ा अर्थात् 'राम' को फिर पढ़ना चाहिये । अब 'राँ राम्' ऐसा बना इसके आगे राम का

विशेषण 'आयत् नक्षत्र' इस पद से दिया है 'आय' को (राम्) के साथ योजित करने से 'रामाय' सिद्ध हुआ। प्रश्न = 'आयत्' का 'त्' क्या हुआ ?

उत्तर = 'त्' का 'इत्' संज्ञा हो कर लोप हो गया। 'य' इव यति यति यतीति यत्। आचार क्विन्तय धातु से कर्ता में 'क्विप्' कर निष्पन्न जो 'यत्' शब्द है उसका स्वार्थिक अर्थ 'य' ऐसा ही होता है। अतएव 'राँ रामाय' सिद्ध हुआ। 'आयत्' के आगे 'नक्षत्रम्' पद है। नक्षत्रों में मुख्य चन्द्रमा है अतः 'नक्षत्र' शब्द 'चन्द्रमा' का वाचक है। चन्द्रमा का परम कारण हृदय लिया जाता है और हृदय से तन्त्रागम प्रसिद्ध 'नमः' शब्द लिया जाता है। चन्द्रमा का परमकारण हृदय है ऐसा 'हृन्मनो मनसश्चन्द्रमा।' यह श्रुति कहती है। इस तरह राममन्त्रोद्धार कर अब उस राममन्त्र का माहात्म्य श्रुति कह रही है कि 'यत्' अर्थात् 'यतमान' 'इस राममन्त्र के याजक' का मन इतस्ततः न 'किः = किरति न' अर्थात् विक्षिप्त नहीं होता, अपितु 'अद्धानु वेद' याजक इस राममन्त्र का यजन करते हुये मन से ब्रह्म का = श्री राम जी का साक्षात् करता है ॥१८६॥

उपरोक्त मन्त्र में कथित श्रीराम मन्त्र के मुख्य उपासक परमाचार्य श्री हनुमान जी ही उस मन्त्र के इस एक पाद विभूतियों में प्रचारक एवं प्रसारक हैं अतः श्रुति इस मन्त्र से श्री हनुमान जी की स्तुति करती है कि—

(१४२) तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारुचित्रम्।

पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥१८१॥

(ऋ० ५।३।३)

रुद्र !

तव श्रिये

मरुतः मर्जयन्त ।

हे रुद्रावतार श्री हनुमान जी ।

आपने जो परमनिधि सम्पत्ति श्री राममन्त्र को श्री जानकी जी से प्राप्त कर ब्रह्मा को दिया है आप की उस ब्रह्मविद्या रूपी सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये

मरुत आदि देवतागण तप ध्यानादि द्वारा आत्म संशोधन कर रहे हैं ।

ते जनिम चारु

यत् विष्णोः उपमम्

चित्रम् पदम् निधायि

तेन नाम गोनाम्

गूह्यम् पासि ।

आप ही का जन्म लेना रमणीक सुफल है ।

क्योंकि श्री जानकी जी से आपने ही सरहस्य विष्णु आदि सम्पूर्ण भगवन्नाम वाचक शब्दों के वाच्य 'राम' पद के पास में स्थित अग्नि बीजात्मक पद 'राँ' को धारण किया है

उस अग्नि बीज पूर्वक रामपद के साथ निहित "नमन्त्यनेनेति नाम" नमस्कार वाचक 'नमः' पद के साथ अपने इन्द्रियों के

गूहन स्थान हृदय को आप पवित्र किये रहते हैं ।

बिना गुरु के मुख से प्राप्त किये मन्त्र जन्य सिद्धि नहीं होती अतः वेद द्वारा श्री राम मन्त्र को जानते हुये भी देवता एवं ऋषिगण श्री हनुमान जी से प्राप्त करने के लिये तप ध्यान आदि से अपना आत्म सन्शोधन कर रहे हैं ॥ १६२ ॥

जीव और शरीर का पृथक्सिद्ध सम्बन्ध है परन्तु तादात्म्य भाव धारण करने के कारण जीव-देह के धर्म का अपने में आरोपण करते हुए अनुभव करता है कि मैं, काला, गोरा, दुबला, मोटा, काणा, खन्जा आदि हूँ । परन्तु परमात्मा और जीव का अपृथक्सिद्ध सम्बन्ध है । अतः ब्रह्म और जीव में तत्त्वतः भेद होते हुए भी परस्पर तादात्म्य भाव है । इसी अपृथक्सिद्ध सम्बन्ध के कारण कभी जीव कह बैठता है कि मैं ब्रह्म हूँ और ब्रह्म कह बैठता है कि समस्त चराचर भूत मैं ही हूँ । जिसका एक उदाहरण यह मन्त्र है । [श्री मद्भगद्गीता का दसवाँ अध्याय श्लोक २० से २६ तक इसी मन्त्र का भाष्य है ।]

श्रीराम जी ने अपने प्रिय साधकों से कहा कि—

(१४२) अहं मनुरभवंसूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।

अहं कुत्सामार्जुनेयंपृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥१६१॥

(ऋ० ४।२६।१, वृ० उ० ३।४।१०)

अहम्

सर्व नियन्ता मैं जिस वंश में अवतरित हुआ हूँ

मनुः । इसका प्रवर्तक (मनु श्राद्ध देव) अथवा मननशील
 विद्वान् के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं का मत्ता-ज्ञाता
 सूर्यश्च और इस वंश के प्रथम पूर्वज सूर्य अथवा सर्व
 प्रकाशक भी मैं ही
 अस्मि । हूँ । और जिनकी सन्तुष्टि के लिये मैंने अवतार लिया
 जो मेरे इस अवतार के कारण हैं वह
 कक्षीवान् पुत्र कामार्थी—स्वयम्भुवमनु = दशरथ नामक राजा भी
 अहम् अभवम् । मैं ही हुआ था ।
 ऋषि अहम् अस्मि । मेरे इस अवतार के लिये यज्ञ करनेवाले ऋषि शृंग
 और बशिष्ठ भी मैं ही हूँ ।
 आर्जुनेयाम् कुत्साम् आर्जुनी पुत्र कुत्सा को दीर्घायु देकर उसका बल मैंने
 ही बढ़ाया था,
 अहं पृंजे विप्रः । जिन्होंने सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र विद्या प्रदान किया वह ब्रह्मर्षि
 अहस्मि । उशना कविः । मैं ही हूँ और जो मेरे भक्तों के शत्रुओं (असुर
 दैत्यों) का तेज बढ़ाया करते हैं वह भार्गव शुक्र मैं
 ही हूँ । सर्वत्र-सर्व में मैं ही हूँ । अतः
 मा, आ, पश्य । मुझे सर्वत्र देखते हुए मेरी उपासना करो ।

यद्यद्विभूतिमत् सत्त्वं श्री मदूर्जितमेव वा । तत्तमेवांशमे विद्धि ॥ गी०
 सो अनन्य जाके असिमति न टरै हनुमन्त । मैं सेवकसचराचर रूप स्वामि
 भगवन्त ॥ सतम मो मय जब जग देखा ॥ १६१ ॥

बिना गुरु से रहस्य प्राप्त किये हुये उपासना सफल नहीं होती इस लिये श्री
 राम जी ने उपासना का एक अङ्ग मात्र बतलाया अब आप अपनी = श्री रामो-
 पासना एवं श्रीराममन्त्र के आद्याचार्य श्री हनुमान जी को आराधनीय बतला
 रहे हैं ।—

(१४५) प्र वः पातं रघुमन्यवोऽन्धोयज्ञं रुद्राय मीढुषे भरध्वम् ।

दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१६२॥

(ऋ० १।१२।१)

रघुमन्यवः !

मीढुषे रुद्राय

यज्ञम् भरध्वम्

वः अन्धः प्र

पातं अमुरस्य ।

वीरैः

रोदस्योः महतः

इषुधौ इव

दिवः स्तोषि ।

हे श्री रामोपासना प्राप्ति के इच्छुक मनुष्यगण !
विद्यामृत की वर्षा करने वाले रुद्रावतार श्री हनुमान
जी की प्रसन्नता के लिये उनकी
स्तुति पूजा अच्छी तरह करो जिससे कि
शरीर और मन की अच्छी तरह
रक्षा होती रहेगी । सुरा को नहीं स्पर्श करने वाले
ब्रह्मा के वीर = माया जयी पुत्र सनकादिकों ने भी
मनुष्य शरीर ही की प्रशंसा की है ।

पृथ्वी और अन्तरिक्ष के मध्य में रहने वाले मनुष्य
और देवता सभी के प्राणवायु 'स्वास' शरीर रूपी
तरकस से निकले हुए बाण के समान है अतः जीवन
के चञ्चल स्वास क्षणस्थायी
होने के कारण शीघ्र ही तारकब्रह्म षडक्षर मन्त्र प्राप्ति
के लिये श्री हनुमान जी की आराधना करो ॥१८२॥

(१४६) हिरण्य कर्णमणिग्रीवस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।

अर्यो गिरः सद्य आजग्मुषीरुस्त्राश्चाकंतूभयेष्वस्मे ॥१८३॥

(ऋ० १।१२२।१४)

नः अर्णः विश्वदेवाः

हिरण्यकर्ण, मणिग्रीवं

तत् वरि वस्यन्तु

अर्यः सद्यः

आजग्मुषीः

मन्त्र रहस्य प्राप्ति के इच्छुक सभी देवगण
अग्नि बीजात्मक जो तारक महामन्त्र है वह जिनके
कान में हैं, और जो मणिवत प्रकाशित ब्रह्मविद्या
आत्मतत्त्व को कण्ठस्थ रखने वाले हैं
उन हनुमान जी की आराधना करने से ही
पर्वत धारण करने वाले श्री हनुमानजी जो कि मन्त्र
सिद्धि के स्वरूप ही हैं तथा शीघ्र = बिना विशेष जप
तप के थोड़ी सेवा से ही
कृपाकर प्राप्त होने वाले हैं ऐसे हनुमान जी जी

उभयेषु आ उस्ता

अत्रामुष्मिक दोनों लोकों या सविकल्पक; निर्विकल्पक दोनों भावों की सिद्धियों से

अस्मे चाकन्तु ।

हमारी उपासना करने वालों की तृप्ति करै ॥१६३॥

इस प्रकार श्रीराम जी से अपनी प्रशंसा सुनकर श्री हनुमान जी ने प्रार्थना पूर्वक कहा कि—

(१४७) न स स्वो दक्षो वरुण धृतिः सा सुरामन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥१६४॥

(ऋ० ७।८६।६)

वरुण !

हे वरणीय प्रभो !

सः दक्षः

वह समुद्र तरणादि कुशलता का कार्य

स्वः न, उ

मेरे पुरुषार्थ से नहीं हुआ अपितु सब कार्य तो

सा धृतिः ज्यायान्

आप की ही धैर्याश्रित शक्ति ने ही किया कराया है क्योंकि आप सर्व प्रकार समर्थ (ईश्वर) हैं तब भी

कनीयसः

हम सब तुच्छ जीवों पर कृपा कर हमलोगों के

पारे

समीप ही रहते हैं अतः आप की सामर्थ्य से ही समुद्रतरण आदि कार्य सिद्ध हुये हैं यदि कहा जाय कि दूसरे की सामर्थ्य से दूसरा कोई कार्य कैसे कर सकता है तो जैसे

सुरा, मन्यु, विभीदकः

मद्य, क्रोध, बहेड़ा का वृक्ष, भूत, प्रेत एवं सन्निपातजन्य

अचित्तिः न इत

उन्माद से आविष्ट होने से अशक्त—निर्बल पुरुष भी शक्ति साध्य कार्य कर डालता है वैसे ही आपकी शक्ति से ही हमारे द्वारा बड़े-बड़े कार्य हुये हैं और आप जो जीव के शुभाशुभ कर्म फल भोगार्थ

अमृतस्य

स्थूल शरीर के जाग्रत में सत्य मालूम पड़ने के समान

स्वप्नः प्रयोता अस्ति ।

स्वप्न सृष्टि के कर्ता हैं वही आप हमलोगों को शक्ति भी देते हैं

सो सब तुव प्रताप रघुराई । नाथ न कछुक मौरि मनुसाई ॥ १६४ ॥

अब श्री हनुमान् जी ऋषियों और देवताओं से संसार समुद्र से पार होने अर्थात् माया जीतने के निश्चित स्वानुभूत उपाय बतला रहे हैं । वैष्णवीय पंच संस्कारों में मन्त्र एवं तत्समुद्राङ्कन का वर्णन पीछे के मन्त्र में करके अब तत्समुद्रा का प्रभाव वर्णन करते हैं । मन्त्र एवं तत्समुद्रा अमिट संस्कार होते हैं इसी से श्रुति में इन्हीं दो संस्कारों का वर्णन विशेष रूप से है क्योंकि मन्त्र तथा मुद्रा (धनुर्वाण) ये दोनों संस्कार ही यथार्थ श्री राम जी की प्रधान वस्तु है इसी से मन्त्र माहात्म्य कह कर अब श्रुति धनुर्वाण धारण का माहात्म्य कहती है—

धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।

धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥१६५॥

(ऋ० ६।७५।२, शु० य० २६।३६ तै० सं० ४।६।६।१ नि० ६।१७)

धन्वना श्री राम जी के प्रधानायुध धनुर्वाण से अंकित होने परब्रह्म श्री रामजी की प्राप्ति के विरोधी पापों के नाश करने में

तीव्राः समदः जयेम । हम सब बड़े समर्थ होकर कामादिकों के ठाने हुये संगम को जीतेंगे । यदि कहा जाय कि इन्द्रियों तो विषयोन्मुख हो रहीं हैं तब कामादि कैसे जीते जा सकेंगे ? इसके समाधान में श्रुति का कहना है कि—

धन्वना, गाः जयेम धनुरंकन के प्रभाव से इन्द्रियों को भी जीतेंगे और इन्द्रियों के जय से ब्रह्म साक्षात्कार का लाभ हो जायेगा । और

धन्वना *आजिम् धनुरंकन के प्रभाव से ही मोक्ष मार्ग को भी जीतेंगे

अर्थात् धनुरंकन के प्रभाव से प्रसन्न हृदय ईश्वर से प्रदर्शित सुषुम्णा

*आजिम्—अजन्ति गच्छन्ति परब्रह्म गंतारोऽस्मिन्निति आजिमार्गः तम् ।

नाड़ी से निकल कर अर्चिरादि मार्ग[†] होकर परब्रह्म श्री राम जी को प्राप्त होंगे यदि कहा जाय कि माया बन्धन रहित हुये बिना ईश्वर की प्रसन्नता कैसे प्राप्त होगी ? तब इसका समाधान श्रुति इसी मन्त्र के उत्तरार्द्ध में सुन्दर एवं सुस्पष्ट रूप में करती है कि हमारे प्रभु का

धनुः शत्रोः

कामं अपकृणोति

सर्वाः प्रदिशः

धन्वना जयेम ।

धनुष ही अनादि माया बन्धन रूप शत्रु की संसार में डालने वाली कामना को नाश करने वाला है । यदि कहा जाय कि संचितादि कर्मों के बने रहते माया-बंधन-व्यवस्था कैसे नाश होगी ? तो सब दिशाओं में वर्तमान् नाना प्रकार की योनियों में जन्म देने वाले सर्व कर्मों को धनुरङ्कन के प्रभाव से जीत कर नाश कर देंगे । इसी तरह भगवद्बाण भी महामहिमशाली हैं ॥१६५॥

भगवान् श्री राम जी के कर कमलों में निरन्तर शोभित जो बाण हैं वे—

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्याः दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।

यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्मयंसन् ॥१६५॥

(ऋ० ६।७५।११, शु० य० २६।४८, तै० सं० ४।६।६।४, नि० २।५।६)

इषवः, सुपर्णं वस्ते वे बाण सुन्दर पक्षी = परवनों को धारण करते हैं ।

† सत्संगान्द्रव निस्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं प्रपद्यात्मवान्,

प्रारब्धं परिभुज्य कर्म सकलं प्रक्षीण कर्मान्तरः ।

न्यासादेव निरंकुशेश्वर दया निर्लून मायान्वयः,

हार्दानुग्रह लब्ध मध्य धमनिर्द्वाराद्वहिर्निगतः ॥ १ ॥

मुक्तोऽर्चिर्दिन पूर्वपक्ष षडुदङ्मासाब्द बातांशुमद्,

ग्लौर्विद्युद्रुणेन्द्रधातु महितः सीमान्तसिन्ध्वाप्तुतः ।

श्रीवैकुण्ठमुपेत्य नित्यमजडं तस्मिन्परब्रह्मणः,

सायुज्यं समवाप्य नन्दति समं तेनैव धन्यः पुमान् ॥१॥

श्री यामुनाचार्य जी कृत गीता भाष्य

अस्याः दन्तः मृगः

*गोभिः सन्नद्धा ।

इन तीरों के दाँत-फलक, शत्रुओं को ढूँढ़कर मारने वाले हैं । ये सदा किरणों या वेदमन्त्रों से युक्त रहते हैं । इसी से सदैव बलशाली रहते हैं ।

प्रसूता पतति ।

वे बाण श्री राम जी के हाथों से अमंत्रित भी छोड़े जाने पर शत्रुओं पर गिरते हैं, गिर कर बाह्याभ्यन्तर के शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं ।

यत्राः नरः

सं द्रवन्ति

जिन बाणों को बाहुमूल पर धारण करके मुमुक्षु मानव भगवद्धर्म में श्रद्धा सम्पन्न होकर द्रवित हृदय वाले हो जाते हैं । अर्थात् बाणांकित होते ही प्रत्यवाय रूप संचित कर्म नष्ट हो जाने से स्वच्छ हृदयवाले हो जाते हैं ।

च वि द्रवन्ति

अस्मभ्यम् इषवः

शर्म यंसन् ।

और भगवद्धर्म = भक्ति में विशेष रूप से संलग्न हो हम सब बाणांकित होने वाले को भगवद्बाण लोक परलोक में कल्याण = परम सुख देते हैं । १६६

इस प्रकार भगवद्बाणों का माहात्म्य कह कर अब इस अग्रिम मन्त्र में श्रुति बता रही है कि बाणाङ्कित होते समय बाणों की इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये कि—

ऋजीते परिवृन्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।

सोमो अधिब्रवीतु नो अदितिः शर्म यच्छतु ॥१६७॥

ऋ० ६।७५।१२ शु० य० ६।४६, तै० सं० ४।६।६।४

ऋजीते

नः परि वृन्धि

हे सीधा मार्ग बनाते हुये सीधे चलने वाले बाण !
आपसे अङ्कित होने वाले हमें काम क्रोधादि विकारों
एवं तज्जन्य पाप कर्मों से बचाइये

नः तनूः

आपसे अङ्कित होनेवाले हमारे स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर

* लौह निर्मित तीर तब तक तीर ही कहाती है जब तक कि वह मन्त्रित नहीं होती । मन्त्रित होते ही उसकी बाण संज्ञा हो जाती है ।

अश्मा भवतु

सोमः नः

अधि ब्रवीतु

अदितिः नः

शर्म यच्छतु ।

पाषाणवत् दृढ़ हो जायँ जिससे हम अबाधित रूप से
भगवद्भजन कर सकें जिससे सर्वोत्कृष्ट

सौंदर्यामृत एवं सर्व श्री सम्पन्न श्री राम जी हमारे
ऊपर कृपा करके हमें अपनी

सेवा में नियुक्त करें या हमारी भक्ति की प्रशंसा करें
और अविनाशी सीता राम जी हमें सदैव

अपना कैकर्य रूप परम सुख दें ॥१६७॥

(३१) चमूषच्छयेनः शकुनो विभृत्वा गोविंदुर्द्रप्स आयुधानि विभ्रत् ।

अपामूर्मि सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१६८॥

ऋ० ६।६६।१६ साम० ६।१।३

शकुनः* गोविंदुः

श्येनः

चमूषत्

द्रप्सः ।

आयुधानि

विभ्रत् अपामूर्मिम्

समुद्रम् सचमानः

महिषः तुरीयं धाम

विवक्ति ।

पक्षी रूप भगवदंशभूत जीव

सामर्थ्य = प्रकाश स्वरूपभूतज्ञान युक्त होते हुये भी
माया के कारण शरीररूपी पिंजड़े में बन्द रहता है,
माया बद्ध होने से आत्म प्रवञ्चन किया करता है ।

भगवदायुधों = धनुर्वाण, शङ्ख चक्रादिकों को जब

धारण करता है तब दुःख रूप लहरियों से भरे

संसार-समुद्र को सेवन करता हुआ सुत वित कल-
त्रादि को भोगता हुआ भी

परम समर्थ होकर भगवान् के दिव्य धाम को

प्राप्त कर लेता है अर्थात् मुक्त हो जाता है ॥१६८॥

इस प्रकार भगवदायुधों का माहात्म्य बतलाकर अब भगवच्चरणों में
प्रार्थना करते हैं—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।

अतप्ततनूर्नतदामोऽश्नुते श्रुतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥१६९॥

ताण्ड्य ब्रा० १।२।८ ऋ० ६।८३।१ साम० ५, ६, १२।४, ४, ७ । तै०

आ० १।११।१

* 'द्वासुपर्णा सयुजासखाया० ऋ० १।१६।१ में जीव को पक्षी कहा है ।

ब्रह्मणस्पते !

प्रभुः विश्वतः

गात्राणि पर्येषि । ते

पवित्रम्

विततम्

अतस्तनूः आमः

तत् न अश्नुते

श्रुतासः तत्

बहन्तः समाशत्

इत् ।

हे वेदों तथा ब्रह्मा के स्वामी श्री राम जी ! आप

सबके स्वामी हैं, सम्पूर्ण चराचर मात्र में

व्याप्त होकर रहते हैं, आपका

प्रकाशमय “मन्त्रः पवित्रमुच्यते, रश्मयः पवित्र मुच्यते । निरुक्त ५।६ ।” अभिमन्त्रित

बाण भी भक्तों के शरीर में व्याप्त होकर रहता है ।

जो लोग भगवदायुधों से अपने शरीर को अभिता-
पित नहीं करते वे लोग पाप में निमग्न रहने के
कारण आपके

उस प्रसिद्ध दिव्य धाम को नहीं प्राप्त कर सकते,

और जो आपके संस्कारों से संस्कृत होकर

अपने पापों को जला दिये हैं वे उस दिव्य धाम को
प्राप्त करके आपके दिव्यानन्द को भोगते हैं ।

यहाँ ‘इत्’ शब्द एवार्थक है अर्थात् इस मन्त्र में
वर्णित सिद्धान्त निश्चित तत्व ही है ॥ १६६ ॥

इस प्रकार श्री हनुमान् जी ने जब श्री राममन्त्र एवं धनुरंकन का माहा-
त्म्य कहा और अपने पुरुषार्थ की चर्चा तक नहीं की तो श्री हनुमान जी की
इस निरभिमानता को देख कर देवताओं एवं ऋषियों ने कहा कि—

(१४६) यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।

विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽअमीव चातनः ॥२००॥

ऋ० १०।६७।६ शु० य० १२।८० तै० सं ४।२।६।२

यत्र औषधीः

समग्मतः

राजानः समितः इव

जिनकी शरीर में औषधी-सञ्जीवनी लाकर

श्री राम-लक्ष्मण आदि के जिलाने-विशल्य करने की
अपरमित शक्ति है,

राजा की सभा में बैठने, सलाह देने वाला जैसे
सभासद ही कहा जाता है वैसे ही

स विप्रः भिषक् उच्यते वह व्यापकगुण एवं सम्पूर्ण औषधी लानेवाला वेद
 राक्षसों के मारने वाले, श्री रामादिकों को जीवन
 प्रदान करने के कारण वह वीरपुरुष
 श्रीमिव चातनः । आधिभौतिक एवं आधिदैविक दुष्टों के नाश करने
 के लिये प्रार्थनीय है । अतएव उन श्री हनुमान जी
 से हम सब लोग भीतर बाहर के सभी दुष्टों के नाश
 की कामना रखते हैं ॥२००॥

अब निम्नलिखित तीन मन्त्रों में भगवान् की बाहुओं का वर्णन है ।
 भगवान् ने अपने जिन-जिन अवतारों में राक्षसों को मारा है उन सभी अवतारों
 में से केवल श्री रामावतारकाल में ही आदि से लेकर अन्त तक दो बाहुओं से
 ही रहे और किसी भी राक्षसान्तक अवतार में सदैव द्विभुज नहीं रहे अतएव
 इन तीनों मन्त्रों में दो बाहुओं का ही वर्णन होने से बाहुओं को ही असुरों
 का नाशक कहा गया है । स्मरण रहे कि शचीपति देवराज इन्द्र तथा
 सभी देवतागण कोई भी चार भुजा से कम तो कभी रहता ही नहीं—

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।

तौ युंजीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥२०१॥

(साम० २१।१।२१ यह मन्त्र अथर्व १६।१३।१ में सामवेद के पाठ से
 बहुत उलट पलट में है)

योगे आगते

स्थूल जगत में बाह्य प्रतिद्वन्दी के सामने और सूक्ष्म
 जगत में मन, मोह मारादि शत्रुओं की प्रतिद्वन्दिता
 के लिये संग्राम भूमि में आने पर

इन्द्रस्य तौ बाहू

परमात्मा श्री रामजी के उन दोनों बाहुओं का ही

युंजीत

आश्रयण ग्रहण करना चाहिये जो बाहुवै

स्थविरौ युवानौ

मोटी मोटी पीन आयत युवावस्था के महान् बल से

अनाधृष्यौ सुप्रतीकौ

परिपूर्ण किसी से कभी न हारनेवाली, अत्यन्त सुन्दर

असह्यौ
प्रथमौ

और जिनका वेग कोई न सह सकै
ऐसी वे दोनों बाहुयें प्रथम से ही हैं अर्थात् ब्रह्म
का नित्य सनातन परविग्रह द्विभुज हीं है। चतु-
र्भुज अष्टभुज सहस्रभुज आदि नहीं।

याभ्याम् असुराणाम्
महत् महः जितम्

परमात्मा ने जिन दोनों बाहुओं से बड़े-बड़े
राक्षसों की बहुत बड़ी लड़ाई सैन्यको जीत लिया।
उन बाहुओं का आश्रयण करने वाला सर्वथा एवं
सर्वदा के लिये निर्द्वन्द्व हो जाता है ॥२०१॥

उरूँ नो लोकमनु नेषि विद्वान् स्वयं ज्योतिरभयं स्वस्ति ।

ऋभ्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उपक्षयेम शरणा बृहन्ता ॥२०२॥

(अथर्व १६।१५।४)

इन्द्र !
विद्वान्, नः

हे सर्वैश्वर्यमान् परमात्मन् श्रीराम जी !
आप सर्वज्ञ हैं। हमारे हित को जानने वाला अन्य
नहीं केवल आप ही मात्र हैं, हमें

उरुम् अनुनेषि यत्

निरावरण विस्तृत सर्वश्रेष्ठ लोक नित्यविभूति की
प्राप्ति करा दीजिये। जो लोक

स्वः
ज्योतिः, अभयम्*

स्वयं हैं अर्थात् किसी के द्वारा निर्मित नहीं हैं,
जो सर्वदा एक रस अखण्ड प्रकाशयुक्त रहता है,

* इसे औपनिषदिक श्रुति, ब्रह्मसूत्र एवं गीता में स्वयं भगवान् ने भी
स्पष्ट कह कर समझाया है। यथा—

“स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते, न च पुनरावर्तते
न च पुनरावर्तते” (छा० उ० ८।१५।१)

“अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ।” (ब्रह्मसूत्र ४।४।२२)

मामुपेत्य तु कौन्तेय दुःखालयमशाश्वतम् ।

नामुवन्ति महात्मानोः संसिद्धिं परमाङ्गताः ॥

स्वस्ति
स्थविरस्य ते बाहू
ऋभ्वा (उग्राः)

बृहन्ता

शरणाः उपक्षयेम ।

जो अभय स्थान है अर्थात् जहाँ से फिर कभी पतन (जन्ममरण) नहीं होता । जो सदैव मङ्गलमय बना रहता है ऐसे धाम वाले सर्व समर्थ आपकी दोनों बाहुयें परम सुन्दर दर्शनीय हैं । 'ऋभ्वा' के स्थान पर 'उग्राः' पाठ भी मिलता है जिसका अर्थ अत्यन्त बल पूर्ण होता है । बहुत बड़ी बड़ी अर्थात् आजानु-लम्बित है ।

वे बाहुयें सबकी रक्षा करने वाली हैं । उन दोनों बाहुओं का आश्रय लेकर हम अपने सम्पूर्ण शुभा-शुभ कर्मों का सर्वथा नाश कर देंगे ।

परमात्मा के युगलबाहू के सम्बन्ध में मानो इन्हीं श्रुतियों के उपबृंहण रूप ही आदि काव्य वाल्मीकीय रामायण में बारम्बार "बाहूते परिघोपमौ ।" 'सर्वभूषणभूषाहौ' "आजानुबाहू ।" आदि कहा गया है और अन्य श्रुति-स्मृतियों में जहाँ जहाँ भी ब्रह्म के परतम स्वरूप का वर्णन है वहाँ वहाँ प्रायः सर्वत्र परस्वरूप के नित्य द्विभुज रहने का ही वर्णन है । यहाँ थोड़े से प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं—

१—उभाहिहस्ता वसुना पृणस्वा० (यजुर्वेद ५।१६)

हे प्रभो आप मुझे दोनों हाथों से ऐश्वर्य भर दें ।

२—आरोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥ अथर्व ८।१।८।

आ ब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

(गीता ८।१५।१६)

होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं ॥

सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं । गीतावली उ० का० १३

हे प्रभो हम आपके दोनों हाथों की शरण-छाया चाहते हैं, हमें अन्ध-कार से निकाल कर प्रकाश = ज्ञान-भक्ति प्रदान कीजिये ।

३—यदिन्द्र चित्रमहह नास्ति त्वा दातमद्रिवः ।

राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्तया भर ॥ ऋ० ५।३६।१। साम०

३।१२।४

आपको देने के लिये मेरे पास जगत् में कुछ नहीं है इसलिये हे सर्व सम्पन्न प्रभो हमको जो ज्ञान एवं प्रेम रूप धन हैं उसे आप अपने दोनों हाथों से दीजिये ॥

४—प्रश्न—मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमुरु पादाबुच्येते ।

उत्तर—ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ॥ यजु० ३१॥

५—प्रकृत्या सहितः श्यामः पीतवासा प्रभाकरः ।

द्विभुजः कुण्डली रत्नमाली धनुर्धरः ॥ रा० ता० उ० ४।७

६—पुरुषोत्तमस्य देवस्य शुद्धस्य स्फटिकत्विषः ।

समपादस्य पद्मोर्ध्वे ह्येक वक्रस्य संस्थितिः ॥

वरदाभय हस्तौद्वावप्रवृत्तारव्य कर्मणि ॥ (संकर्षण संहिता)

७—दशहस्त्या अंगुलयो दश पद्मा, द्वावूरु द्वौबाहू आत्मैनं पंच विशम्
एतरेय ब्रा०

८—पाणिभ्यां त्रयीं सम्भरति ॥ (रहस्य आग्नाय)

९—युक्तः पाणिद्वयेन सः ॥ (सात्वत संहिता)

१०—द्विभुजं पुरुषांकारं युक्तमादित्यसन्निभैः ।

ध्वजैराभरणैश्चिन्हैश्शंखचक्रादि संज्ञितैः ॥ (पुष्कर संहिता)

११—निरस्त्रा द्विभुजा सौम्या शङ्ख चक्र करांकिता ।

महापुरुष रूपा च सुप्रसन्ना विलक्षणाः ॥ (सुमन्तु संहिता)

१२—द्विबाहोश्चक्र धृत पाणिर्दक्षिणश्शङ्खधृत परः ।

उपविष्टन्तु मोक्षार्थी उत्थितं विश्व सिद्धये ॥ (भरद्वाज संहिता)

१३—मुद्रां ज्ञान मयीं वाम्ये यामे तेजः प्रकाशनः ।

धृत्वा व्याख्यान निरतः चिन्मयः परमेश्वरः ॥ रा० ता० उप०

१४—स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम् ।

परं तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत्त्रयं यजेत् ॥ (ना० पा०)

१५—द्विहस्तमेकवक्त्रं च शुद्ध स्फटिक सन्निभम् ।

पीताम्बरधरं सौम्यं रूपमाद्यमिदं हरेः ॥ (ना० पा०)

१६—द्विभुश्चापभृच्चैव भक्ताभीष्ट प्रपूरकः ॥ (हनु० सं)

१७—ततः सिंहासनस्थः सन् द्विभुजः रघुनन्दनः ।

धनुर्धरः प्रसन्नात्मा सर्वाभरण भूषितः ॥ रा० ता० उ०

१८—रामास्संजायते कामः कामाद्विश्वं प्रजायते ।

तस्माद्धनुर्धरात्सर्वे द्विभुजा मूल रूपिणः ॥

१९—परं ब्रह्म परंधाम जगतां कारणं परम् ।

नागशय्या शयानं च द्विभुजं रघुनन्दनम् ॥

२०—द्विभुजो जानकीजानिः सदा सर्वत्र शोभते ।

भक्तेच्छातो भवेदेष वैकुण्ठे तु चतुर्भुजः ॥ (महाशिव सं०)

परिदध्म इन्द्रस्यबाहू समन्तं त्रातस्त्रायतां नः ।

देव सवितः सोम राजन् सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ॥२०३॥

अथर्व ६।६६।३

देव !

सवितः ! त्रातः

त्रायताम्

इन्द्रस्थ ते बाहू

समन्तम् परिदध्मे ।

सोम ! राजन् !

स्वस्तये मा

सुमनसाम् कृणु ।

हे दिव्य कीड़नशील ! हे सर्व उर प्रेरक !

हे सृष्टि स्थिति संहार कर्तृन् ! सूर्य वंश के भी

सूर्य ! हे सर्व रक्षक ! रक्षा कीजिये

सर्वैश्वर्यमान् आपकी दोनों बाहुयें

सबको सब ओर से धारण = रक्षण करती हैं ।

हे कृपामृतश्राविन् प्रियदर्शिन् हे उभय विभूत्यधीश !

आप कृपा करके मेरे कल्याण के लिये मुझे

सुन्दर निर्मल मन वाला बना दीजिये जिससे मेरा

मन सदा आपके ही चरणों में लगा रहे ॥२०३॥

यहाँ तक श्री रामराज्य प्राप्ति एवं स्तुति आदि का दिग्दर्शन श्रुतियों से

कराकर श्री रामावतार के अवशिष्ट चरित्रों में कुछ प्रधान प्रधान चरित्र के सम्बन्ध की एकाध श्रुति सङ्कलित की जा रही है ।

व्यवहार में जैसे श्री भरतादि तीनो भाई श्री रामानन्ध थे तथ्यतः चारों भाइयों में ऐक्य था वैसे ही व्यवहार में श्री माण्डवी आदि तीनों बहिनें भी श्री सीता जी की अनन्या थीं और तत्त्वतः एक ही थीं । श्री राम जी सदैव तीनों भाइयों के पुत्रों को भी अपने पुत्रों के समान ही मानते थे और अपने पुत्रों की तरह ही भ्रातृ-पुत्रों के साथ भी व्यवहार करते थे, एक ही ब्रह्म चार रूप में था इसीसे श्रुति सब भाइयों के पुत्रों को भी श्री राम जी के ही पुत्र कह कर संकेत कर रही है कि राम जी के

(१५४) अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि ।

देवाँ० उपप्रैत्सप्तभिः परा मार्त्ताण्डमास्यत् ॥२०४॥

(ऋ० १०।७२।८ तै० आ० १।१३।२ तांड्य ब्रा० २४।१२।६)

ये अष्टौ पुत्रासः	जो आठों पुत्र थे वे आठो
अदितेः तन्वः परिजातः	पृथ्वी के शरीर अर्थात् भूमंडल के राजा हुये और आठों पुत्रों को आठ स्थान का राज्य देकर
सप्तभिः देवान्	गृहस्थ धर्म वाले चारों वर्ण और ब्रह्मचारी, वाण-प्रस्थी, सन्यासी इन तीन आश्रमियों अर्थात् इन सातों तथा देवांश बानरों को भी इसी स्थूल शरीर से साथ लेकर दिव्य धाम को गये और उन्हें सूर्य मंडल को भेद कर जाने वालों के समान श्री राम जी ने
उपप्रैत मार्त्ताण्डाम्	पराप्रकृति त्रिपाद्विभूतिस्थ साकेत में ले जाकर रखा ॥
परा आस्यत् ।	

राज्य में रहने वाले सभी राजा रानी के पुत्रवत् होते हैं अतः अवधेश श्री राम जी के राज्य में रहनेवाले चार वर्णों के सभी गृहस्थों एवं अन्य तीनों आश्रमों के सभी आश्रमियों को श्री सीता राम जी के पुत्र कहते हुये श्रुति कहती है कि श्री सीता राम जी के साथ अयोध्या की समस्त प्रजा त्रिपद्वि-भूति (साकेत) गई थी उसी का संकेत इस श्रुति में भी है—

(१५५) सप्तभिः पुत्रैरदिति रूपप्रैत्पूर्व्यं युगम् ।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्त्ताण्डमारभत् ॥२०५॥

(ऋ० १०।७२।६ तै० आ० १।१३।२)

अदितिः श्री राम जी के साथ साथ ही श्री सीता जी भी
सप्तभिः पुत्रैः प्रजा रूप सात पुत्रों के सहित युगारम्भ से
पूर्व्यं युगम् पूर्व में ही स्थित जहाँ काल की कोई माया नहीं उस
उपप्रैत् मृत्यवे त्रिपाद्विभूति में चली गई तो भी मरण शील
प्रजायै त्वत् प्रजावों = बद्धजीवों के लिये अपने एक अंश से
मार्त्ताण्डम् अभरत् । “सूर्य मण्डल मध्यस्थं रामं सीता समन्वितम् ।”
सूर्य मण्डल को आप्यायित करती रहती हैं ॥२०५॥

(१५७) नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वतिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।

स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वाऽवरेष्वदधादा परेषु ॥२०६॥

(ऋ० १०।५६।७)

नावा, न, क्षोदः जैसे नौका द्वारा जल धारा में विचरण किया जाता
है उसी तरह श्री राम जी ने अपने
स्वस्तिभिः पृथिव्याः दिव्यानन्त कल्याण गुणों एवं पुष्पकादि विमानों से
पृथ्वी मण्डल के समस्त
प्रदिशः स्वाम्, प्रजाम् प्रदेशों में विचरण कर अपनी समस्त प्रजाओं के
विश्वा दुर्गाणि अति सम्पूर्ण लौकिक पार लौकिक संकटों को हटाया ।
बृहदुक्थः अवरेषु महान् कर्म करने वाले श्री राम जी ने भूलोक स्थित
अयोध्या जी की एवं अन्यत्र की सारी प्रजा को
परेषु आ अदधत् । अपने पर धाम में स्थापित किया ।

इससे श्रुति ने यह भी दिखलाया कि भगवल्लोक = मोक्ष प्राप्ति के लिये
महाकारुणिक श्रीराम जी की शरणागति ही लेनी चाहिये ॥ २०६ ॥

यद्यपि श्रीराम जी ने अपने उस लीला विग्रह दाशरथी रूप को सबकी
चर्म चक्षुओं से अन्तर्हित कर लिया परन्तु भक्तों एवं दिव्य दृष्टि प्राप्त जानियों
के लिये सदैव उसी अववेश रूप में विराजमान रहते हैं—

भोग स्थान परायोध्यालीला स्थानं त्विदं भुवि ।

भोग लीला पती रामो निरंकुश विभूतिकः ॥ म० शि० सं०

इसी तथ्य को श्रुति कह रही है—

अग्निः प्रियेषु धाम सु कामो भूतस्य भव्यस्य ।

सम्राडेको विराजति ॥२०७॥

(शु० य० १२।११७)

अग्निः भूतस्य, भव्यस्य तेजो विवृद्ध सर्वाग्रणी श्रीराम जी भूत और भविष्य के अद्वितीय चक्रवर्ती

एकः सम्राट् विराजति एक मात्र सार्वभौम शोभित है अर्थात् श्री राम जी के समान राजा न तो भूत काल में कोई हुआ है और न भविष्य में होगा ही (सर्वज्ञ श्रुति को तो भूत भविष्य सबके लिये ज्ञान है ।) वे श्री राम जी सबकी सदैव एवं सर्वथा

प्रियेषु धाम सु कामः । प्रीतियुक्त सब सदिच्छाओं को पूर्ण करते हैं ॥२०७॥

श्री अयोध्या जी का वर्णन वेद के जिन मन्त्र में है उन मन्त्रों की टीका वेदोपनिषद्भाष्यकार 'पंडितराज' स्वामी श्री भगवदाचार्य जी महाराज ने "अथर्व वेद में अयोध्या" शीर्षक लेख से 'तत्त्वदर्शी' पत्र में किया था । पश्चात् वह लेख केनोपनिषत् के भगवद्भाष्य के अन्त में भी प्रकाशित हुआ ।

पूज्य त्वामी जी से आज्ञा लेकर मैं उसी लेख को मूल के सहित इस ग्रन्थ के अन्त में दिये देता हूँ ।

अथर्व वेद (संहिता भाग) दशम काण्ड प्रथम अनुवाद द्वितीय सूक्त के २८वें मन्त्र के उत्तरार्ध से इस प्रकरण का आरम्भ होता है ।—

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २०८ ॥

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।

तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ २०९ ॥

(अथर्व १०।२।२८, २९)

इन दोनों का एक में ही अन्वय है अतः साथ ही अर्थ दिया जाता है—

- यः जो कोई
ब्रह्मणः पुरम् ब्रह्म की अर्थात् परात्पर, परमेश्वर, परमात्मा जगदा-
दिकारण, अचिन्त्य वैभव श्री सीतानाथ श्रीराम की
पुरी को
वेद जानता है उसे वह भगवान तथा भगवान के पार्षद
सब ही लोग चक्षु, प्राण और प्रजा देते हैं। किस पुरी
को जानने के लिये कहते हो ?
यस्याः पुरुषः उच्यते जिस पुरी का पुरुष बोला जाता है = कहा जाता
है अर्थात् जिसका प्रतिदिन नाम स्मरण किया जाता
है उस पुरुष की पुरी को जानने के लिये श्रुति कह
रही है।
यः ब्राह्मणः जो कोई अनन्त शक्ति सम्पन्न सर्वव्यापक सर्वनियन्ता
सर्व श्रेष्ठी और सर्वाधार श्रीराम जी की
अमृतेन आवृताम् अमृत अर्थात् मोक्षानन्द से परिपूर्ण
ताम् पुरम् वेद उस अयोध्या पुरी को जानता है
तस्मै, ब्रह्म, च ब्राह्मा उसके लिये साक्षात् भगवान और ब्रह्म सम्बन्धी
अर्थात् भगवान् के हनुमान् सुग्रीव अंगद, मयन्द,
सुप्रेण, द्विविद, दरीमुख, कुमुद, नील, जल, गवाक्ष,
पनस, गन्धमादन, विभीषण, जाम्बवान् और दधि-
मुख इत्यादि प्रधान षोडश पार्षद अथवा नित्य और
मुक्त सब जीव मिलकर—
चक्षुः प्राणं प्रजाम् उत्तम दर्शनशक्ति उत्तम प्राणनशक्ति अर्थात् आयुष्य
और बल तथा सन्तान आदि
ददुः । देते हैं। 'ददुः' इस भूत कालिक प्रयोग को देखकर
घबड़ाना नहीं चाहिये। वेद की सब बातें अलौकिक
ही होती हैं ॥२०६॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २१० ॥

(अथर्व १०।२।३०)

यस्याः, पुरुषः
उच्यते

जिस पुरी का परम पुरुष

कहा जा रहा है अर्थात् जिसका निरूपण सर्वत्र वेद शास्त्रों में किया जाता है और यहाँ भी २८वें मन्त्र के पूर्व के मन्त्रों से जिस पुरुष का निरूपण किया गया है उसे

ब्रह्मणः तां पुरम्

यः, वेद तम्

चक्षुः

प्राणः जरसः

पुरा न जहाति ।

भगवान् श्रीराम की उस पुरी अयोध्या को

जो कोई जानता है, उस प्राणी को

दर्शनशक्ति अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तरिक नेत्र तथा

शारीरिक और आत्मिक बल मृत्यु से

पूर्व निश्चय ही नहीं छोड़ते हैं ।

तात्पर्य यह है कि भगवान् श्री राम की इस लोकस्थ उस पुरी का दर्शन करने वाला सब प्रकार से सुखी और पवित्र जीवन इस लोक में व्यतीत करता है । अर्थात् जिला फैजाबाद में जो श्रीराम की पुरी है वह भी उतनी ही पवित्र है जितनी कि परधाम की पुरी पवित्र है तथा यहाँ का भी वैसा ही माहात्म्य है जितना कि उस दिव्य लोकस्थ पुरी का है । अन्तर इतना ही है कि यहाँ की अयोध्या माधुर्य लीला धाम है और वहाँ की भोग-ऐश्वर्य-लीला धाम है ॥ २१० ॥

अष्ट चक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।

तस्या हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ २११ ॥

(अथर्व १०।२।३१)

इस मन्त्र का अर्थ जानने से प्रथम श्री अयोध्या जी का स्वरूप जान लेना चाहिये । भगवान् श्रीराम जी की अयोध्या पुरी के चारों ओर कनक प्राकार है । यह अष्टम चक्र है । इसी को अष्टमावरण कहते हैं । इस चक्र के पश्चात् सप्तम चक्र अर्थात् सप्तमावरण है । इसी में अनेक रत्नों से जड़ित घाटवाली श्री सरयू जी नित्य बिहार करती हैं । इसके बाद षष्ठ चक्र अर्थात्

षष्ठावरण हैं। इसी आवरण में भगवान् का परमप्रिय प्रमोद बन है। प्रमोद बन की चारों दिशाओं में चार पर्वत हैं। पूर्व दिशा में शृङ्गारपर्वत, दक्षिण दिशा में मणिपर्वत, पश्चिम दिशा में लीलापर्वत और उत्तर दिशा में मुक्ता पर्वत है। इसी प्रमोद बन में शृङ्गार बन, बिहार बन, तमाल बन, रसाल बन, चम्पक बन, चन्दन बन, पारिजात बन, अशोक बन, विचित्र बन, कदम्ब बन, काम बन, और नागेश्वर बन ये द्वादश बन हैं। इसी बन में प्रतिक्षण सर्व ऋतु सर्व रागिणियाँ निवास करती हैं। इसके पश्चात् पञ्चम चक्र अर्थात् पञ्चमावरण है, इसी आवरण में मिथिलापुरी चित्रकूट, वृन्दावन, महावैकुण्ठ वा मूलवैकुण्ठ इत्यादि विराजमान हैं। इसके पश्चात् चतुर्थ चक्र अर्थात् चतुर्थावरण है। इसी में महाविष्णु लोक, रमावैकुण्ठ, अष्टभुज भूम पुरुषलोक, महाब्रह्म लोक और शम्भु लोक हैं। इसी के भीतर भगवान् भिन्न-भिन्न अवतार लेकर भिन्न-भिन्न लीलायें करते हैं। अतः सर्वलीला लोक इसी आवरण में विराजमान हैं। इसके पश्चात् तृतीय चक्र अर्थात् तृतीयावरण है। इसी आवरण में भगवान् का मानसिक ध्यान करने वाले योगी और ज्ञानी जन निवास करते हैं। इसके पश्चात् द्वितीयावरण है। इसमें वेद, उपवेद, शास्त्र पुराण, उपपुराण, ज्योतिष, रहस्य, तन्त्र, नाटक, काव्य, कोश, ज्ञान, कर्म, योग, वैराग्य, यम, नियम, इनके साधन, काल, कर्म, गुण इत्यादि सब देहधारी होकर निवास करते हैं। इसके पश्चात् प्रथमावरण है। इस आवरण में महाशिव, महाब्रह्मा, महेन्द्र, महावरुण, कुबेर, धर्मराज, दिग्पाल महासूर्य महाचन्द्र, यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक, किन्नर, विद्याधर, सिद्ध, चारण और अणिमा, लविमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशिता, वशिता, अवस्यति अर्थात् यथेष्ट सुखावाप्ति ये आठ सिद्धियाँ अथवा अनूर्मित्व, दूरश्रवण दूरदर्शन, मनोजव, कामरूप, परकाय प्रवेश, स्वच्छन्द मृत्यु, देव सहक्रीड़ा, सङ्कल्प सिद्धि और आज्ञाऽप्रतिघात ये दश सिद्धियाँ अथवा त्रिकालज्ञता, अद्वन्द्वता, परचित्ता भिज्ञता, अग्न्यर्काम्बुविष-प्रतिष्ठम और पराजय करना ये ५ सिद्धियाँ तथा पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व (या बर्ष) ये नव निद्धियाँ निवास करती हैं।

साम्प्रदायिक ग्रन्थों में अयोध्या के सप्त आवरणों का ही उल्लेख है । उसमें और इसमें कुछ विरोध नहीं है । काञ्चन प्राकार जो अयोध्या के चारों ओर अव्यवहित रूप से विद्यमान है उसे ले लेने से आठ आवरण होते हैं उनके छोड़ देने से सात ही रहते हैं छोड़ने में हेतु यह है कि उस आवरण में श्री अयोध्या जी के अतिरिक्त और कोई लोक नहीं है और अन्य आवरणों में अन्य लोक आदि बसे हुए हैं उस काञ्चन प्राकार को ग्रहण करने में हेतु यह है कि वह भी स्वरूपतः एक आवरण है । इसलिये कुछ विरोध नहीं है । कहीं कहीं भूमि, जल, अनल, वायु, नभ, त्रिप्रकारक अहङ्कार और महत्तत्त्व इनको ही सप्तावरण मान लिया है । यह श्री अयोध्या जी का वर्णन संक्षेप में किया गया है । इतने से प्रस्तुत मन्त्र का अर्थ सुगमता से अवगत हो जावेगा ।

ब्रह्म की उस पुरी का नाम और स्वरूप अवगत हो जावेगा ।

पूः अयोध्या	वह पुरी अयोध्या जी है, वह कैसी पुरी है ?
अष्ट चक्रा	आठ चक्रों अर्थात् आवरणों वाली है । अर्थात् जिसमें आठ आवरण हैं ।
नवद्वारा देवानाम्	जिसमें प्रधान नव द्वार हैं । तथा जो दिव्य गुण विशिष्ट, भक्ति प्रपत्ति सम्पन्न, यम—नियमादिमान, परम भागवत चेतनों से “सेव्याइति शेषः” = सेवनीय है ।
तस्याम् स्वर्गः	उस अयोध्या पुरी में बहुत ऊँचा अथवा बहुत सुन्दर
ज्योतिषा आवृतः	प्रकाश पुंज से आच्छादित
हिरण्ययः कोशः ।	सुवर्णमय मंडप है ।

ऐसा ही वर्णन भार्गव पुराण में भी आया है—

‘त्रिपाद्विभूतिर्वैकुण्ठे विरजायाः परे तटे ।

या देवानां पूरयोध्या ह्यमृतेनावृता पुरी ॥

श्री तुलसीकृत रामायण की टीका में श्री रामचरण दास जी ने साम वेद की एक तैत्तिरीय श्रुति लिखी है वह भी इसी अथर्व वेद के मन्त्र के समान ही है यथा—

“देवानां पूरयोध्या तस्यां हिरण्मयः कोशः
स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतो यो वै तां ब्रह्मणो
वेदामृतेनावृतां पुरीं तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च आयुः
कीर्तिं प्रजां ददुः ॥”

अथर्व वेद के मन्त्र की व्याख्या समझ जाने के पश्चात् इस श्रुति का अर्थ अत्यन्त सरल हो जाता है अतः इसका अर्थ नहीं लिखा है ॥२११॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रि प्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्म विदो विदुः ॥२१२॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे	उस विशाल सुवर्ण मय मंडप में
तस्मिन् आत्मन्वत्	उसके अर्थात् उस मण्डप के आत्मा के समान
यद् यक्षम्	जो पूजनीय देव विराज मान है
तत् ब्रह्मविदः	उसी को ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान जन
विदुः ।	जानते हैं । अथवा ‘ब्रह्मविदुः’ में दो पद है ‘ब्रह्म’ और ‘विदुः’ । तबअर्थ यह हुआ कि
विदः तत्	विद्वान् जन, उसी यक्ष को उसी परमोपास्य देव को
ब्रह्म विदुः	परात्पर सनातन महापुरुष, जानते हैं । जिस कोश में वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है ?
त्र्यरे	उसमें तीन अरे लगे हुये हैं अर्थात् तीन अरों पर वह मंडप बना हुआ है । तथा
त्रिप्रतिष्ठिते ।	तीनों लोकों में वह प्रतिष्ठित है । इस मंत्र में जो ‘तस्मिन्’ पद आया हुआ है वह षष्ठी के अर्थ में है । इसीलिये मैंने उसका अर्थ ‘उसके’ किया है ।

इस मन्त्र में स्पष्ट ही कहा गया है कि अयोध्या के मध्य में जो सुवर्णमय मणिमंडप है उसमें जो देव विराजमान हैं, उन्हीं को विद्वान लोग ब्रह्म कहते हैं । अयोध्या के मणिमंडप में भगवान् श्री राम जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी विराजमान नहीं है अतः भगवान् श्री राम जी ही परब्रह्म हैं । इसी

अर्थ को विशद करने के लिये मैं एक और श्रुति को यहाँ उद्धृत करता हूँ । इसे भी श्री रामचरण दास स्वामी जी ने ही अपनी रामायण टीका में उद्धृत की है वह यह है—

“याऽयोध्या पुरी सा सर्व वैकुण्ठानामेव भूलाधारा मूलप्रकृतेः परा तत्स-
द्ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्य रत्नकोशाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहार
स्थलमस्ति ।”

इसका भावार्थ यह है कि ‘जो अयोध्या पुरी है वह सर्व वैकुण्ठों का मूल आधार है । साम्प्रदायिकों ने अनन्त वैकुण्ठों का वर्णन किया है । उनमें से से ५ को प्रधान माना है । वे पांच ये हैं—

वैकुण्ठं पञ्च विख्यातं क्षीराब्धिं च रमाव्ययम् ।

कारणं महावैकुण्ठं पञ्चमं विरजापरम् ॥

अर्थात् क्षीरसागर वैकुण्ठ, रमा वैकुण्ठ, कारण वैकुण्ठ, महा वैकुण्ठ और विरजापर अर्थात् आदि वैकुण्ठ । इन पाँचों वैकुण्ठों का वही मूलाधार है । यदि आदि वैकुण्ठ भी साकेत लोक का ही नाम हो तो वह आदि वैकुण्ठ अर्थात् श्री अयोध्या जी शेष चार प्रधान वैकुण्ठों तथा अन्य अनन्त वैकुण्ठों का आधारी भूता हैं । वह मूल प्रकृति से परे अखण्ड और अपरिवर्तनीय ब्रह्ममय है, विरजा के दूसरे पार में स्थित है, दिव्य रत्नजटित मंडप वाली है । उसी अयोध्या में श्री सीता राम जी की नित्य विहार भूमि है ॥ २१२ ॥

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम् ।

पुरं हिरण्ययीं ब्रह्माविवेशापराजिताम् ॥२१३॥

(अथर्व० २।१०।३३)

ब्रह्म

सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीराम जी

पुरम्

उसी श्री अयोध्या पुरी में

आविवेश

प्रविष्ट है अर्थात् विराजमान हैं । वह पुरी कैसी है ?

प्रभ्राजमानाम्

अत्यन्त प्रकाश मयी है । पुनः वह कैसी है ?

हरिणीम्

मन को हरण करने वाली है अथवा सर्व पापों का आत्यंतिक नाश करने वाली है । पुनः वह कैसी है ?

यशसा-संपरीवृताम्

अनन्त कीर्ति से युक्त है । पुनः वह पुरी कैसी है ?

अपराजिताम् ।

सर्व पुरियों में श्रेष्ठ है अर्थात् जिसकी तुलना कोई पुरी नहीं कर सकती है ।

अथर्व वेद का प्रथम अनुवाक् यहाँ ही पूर्ण हो जाता है । इस अनुवाक के अन्त में इन साढ़े पांच मन्त्रों में अत्यन्त स्पष्ट रूप से श्री अयोध्या जी का वर्णन किया गया है । इन मन्त्रों के शब्दों में व्याख्याताओं को अपनी ओर से कुछ मिलाने की आवश्यकता नहीं है । श्री अयोध्या जी के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरी का इतना स्पष्ट और सुन्दर साम्प्रदायिक वर्णन मन्त्र संहिताओं में नहीं है ॥ २१३ ॥



श्री भगवन्नाम

१—कस्यनूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम

(ऋ० १।२४।१)

प्रश्न है कि—अमरत्व धारण करने वाले किस देवता के कितने सुन्दर नामों को स्वीकार अर्थात् जप कीर्तन आदि करें ? अगले मन्त्र में उत्तर है कि—

२—अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामाहे चारु देवस्य नाम

(ऋ० १।२४।२)

अमरत्व धारण करने वाले देवताओं में सर्व श्रेष्ठ अग्रणी देवता ब्रह्म—परमात्मा का सुन्दर नाम स्वीकार अर्थात् जप कीर्तन आदि करें । ('णी प्रापणे' अग्नेनयत्यग्निः = ब्रह्म)

३—नामानिचिह्निधरे यज्ञियानि.... । (ऋ० १।७२।३)

परमात्मा के यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले श्रेष्ठतम नामों को धारण अर्थात् जप कीर्तनादि किया ।

४—नामानिते शतक्रतो ! विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । (ऋ० ३।३७।३)

हे सब यज्ञों के आराधनीय परमात्मन् ! परापश्यन्ती मध्यमा बैखरी आदि सम्पूर्ण वाणियों के द्वारा आपके नाम को हम लोग गान करते हैं ।

५—भूरिनाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषायासे ।

(ऋ० ५।३।१०)

जगत्पिता वासुदेव परमात्मा वन्दनीय होकर अनेकों नाम धारण करता है । अतः हे सर्व व्यापक परमात्मन् वासुदेव यदि वे आपके अनन्त नाम आपको प्रसन्न करते हों तो हम उन्हीं नामों का सेवन करें ।

६—मर्त्या अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । (ऋ० ८।११।५)

मरण धर्म वाले हम मनुष्य गण, मरण धर्म से रहित आपके अनेक नामों का आदर अर्थात् जप कीर्तनादि करते हैं ।

७—अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभिद्रोणानि रोरुवत् ।

सीदन्योनौ वनेष्वा ॥ (ऋ० ६।६५।१६)

जङ्गलों—एकांत में बैठकर, सकल जगत्कारण परमात्मा में चित्त लगाकर अत्यन्त तेजस्वी-इन्द्रियजयी होकर तुम भगवन्नामों को रो रो कर उच्चारण करके ऊर्ध्वगति को प्राप्त करो । (साम संस्कार भाष्य से)

८—दधानानाम यज्ञियम् । (ऋ० १।६।४)

९—भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तं अमृत मेवैः ।

(ऋ० १।६।८)

१०—नाम स्वधावन् ! गुह्यंविभर्षि । (ऋ० ५।३।१)

११—यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ।

(ऋ० ५।३।२)

१२—प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि । (ऋ०)

१३—अस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन । (ऋ०)

इस परमात्मा के नाम का भावार्थ जानते हुये अर्थात् अर्थानुसंधान करते हुये कीर्तन जप करो ।

१४—चत्वारिते असुर्याणि नाम अदाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।

त्वमंग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवन् चकर्थ ॥

(ऋ० १०।५४।४)

मघवन् = हे धनपते ! लक्ष्मी-सीतानाथ श्री राम जी । महिषस्य ते = परम बलशाली आपके जितने भी । असुरकर्माणि अदाभ्यानि = राक्षस वधादि गुण कर्म वाले मधुसूदन, रावणारि, खरारि, कंसारि आदि । नामसन्ति = नाम हैं तानि विश्वानि = उस सम्पूर्ण नामों में । येभिः त्वम् चकर्थ = जिस किसी भी नाम से आप पुकारे जाते जप स्मरण किये जाते हैं । अङ्ग ! तानि त्वम् = हे प्राण प्रिय प्रभो ! उन सभी नामों से आप । चत्वारि वित्से = चारों फल प्राप्त करा देते हैं ।

१५—नाम नाम्ना यो हवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः । यदजः प्रथमं सं बभूव सह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ।

(अथर्व १०।७।३१)

सूर्यास्त से पूर्व अर्थात् समस्त दिन, उषा काल से पूर्व अर्थात् समस्त रात्रि, ईश्वर के नाम का उसकी महिमा के साथ जो कोई भक्ति पूर्वक उच्चारण करता जपता है कीर्तन करता है वह नाम जापक पुरुष उस आत्मराज्य आत्मानन्द को प्राप्त करता है जो आत्मानन्द सभी आनन्दों से प्रथम अर्थात् श्रेष्ठ है ।

१६—नामानिते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । (अथर्व २०।१६।३)

१८—इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयः । (अथर्व वेद)

ऋषिगण सर्वेश्वर्यशाली परमात्मा का नाम ग्रहण करते-जपते हैं ।

१७—शिवोनामासि० (शु० यजु० ३।६३)

हे परमात्मन् आप कल्याण प्रद नाम वाले हैं ।

१८—यत्ते अनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे । (शु० यजु० ५।६)

आपके जितने पूज्य-यज्ञीय नाम हैं वे सब सर्वोत्कृष्ट हैं । उन नामों से आपको धारण करता = भजता हूँ ।

२०—यो देवानां नाम धा एक एव । (शु० यजु० १७।२७)

अनेक नामों को धारण करने वाला जो ईश्वर सम्पूर्ण देवताओं में एक ही = अद्वितीय है । (उसी के नाम का जप कीर्तनादि करना चाहिये ।)

२१—घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ।

(शु० यजु० १७।८६)

सर्व पोषक परमात्मा के जितने गूढ़ नाम हैं वे सब परम भागवतों की जिह्वा पर अमृत के भी सारभूत के तुल्य विराजित रहते हैं अर्थात् परम भागवत लोग भगवन्नाम को अमृत से भी बढ़कर समझते हैं ।

२२—वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्त अस्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।

(शु० यजु० १७।६०)

इस यज्ञ में हम सब परमात्मा के नाम को कहते अर्थात् जपते कीर्तन कथन करते हैं और नमस्कार पूर्वक हृदय में धारण करते हैं ।

२३—न तस्य प्रतिभा अस्ति मस्य नाम महद्यशः । शु० य ३२।३

उस परमात्मा का कोई भी प्रतिमानभूत जोड़ीदार नहीं है जिसके नाम का यश महान् सर्वोत्कृष्ट है ।

२४—अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभिद्रोणानि रोहवत् सीदन्योनौ वनेष्वा ।
(साम पू० ५।४।७)

२५—दधानानाम यज्ञियम् (साम उत्त० ४।२।८)

२६—सदा ते नाम स्वयशो विवच्मि । (साम)

२७—यस्य वाक् ततिर्नामानि दामानि । (साम)

२८—पूयमानोभ्यर्षि गुह्यं चारुनाम । (साम)

२९—नाम वै ग्रहम् नाम्नाहीदं सर्वं गृहीतं किमुतद्यन्नाम ग्रहो बहूनां
वै नामानि विद्मथ नस्तेन तेन गृहीता भवन्ति ॥
(शतपथ ब्राह्मण ४।६।५।३)

३०—नाम कृत्वाथैनमुपतिष्ठते । (श० ब्रा० ६।५।१।५)

श्री मते रामानन्दय नमः

लेखक की गुरु परम्परा

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम ।
अस्मादाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम् ॥ १ ॥
परधाम्नि स्थितो रामः पुंडरीकायतेक्षणः ।
सेवया परया जुष्टो जानक्यै तारकं ददौ ॥ २ ॥
श्रियः श्रीरपि लोकानां दुःखोद्धरणहेतवे ।
हनुमते ददौ मन्त्रं सदा रामाङ्घ्रिसेविने ॥ ३ ॥
ततस्तु ब्रह्मणो प्राप्तो मुह्यमानेन मायया ।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम् ॥ ४ ॥
मन्त्रराजजपं कृत्वा धाता निर्मातृतां गतः ।
त्रयीसारमिमं धातुर्बशिष्ठो लब्धवान् परम् ॥ ५ ॥
पराशरो बशिष्ठाच्च सर्वसंस्कारसंयुतम् ।
मन्त्रराजपरं लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह ॥ ६ ॥
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यासः सत्यवतीसुतः ।
पितुः षडक्षरं लब्ध्वा चक्रे वेदोपबृंहणम् ॥ ७ ॥
व्यासोपि बहुशिष्येषु मन्वानः शुभयोग्यताम् ।
परमहंसवर्याय शुकदेवाय दत्तवान् ॥ ८ ॥
शुकदेवकृपापात्रो ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थितः ।
नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवीं गतः ॥ ९ ॥
स चापि परमाचार्यो गङ्गाधराय सूरये ।
मन्त्राणां परमं तत्त्वं राममन्त्रं प्रदत्तवान् ॥ १० ॥
गङ्गाधरात्सदाचार्यस्ततो रामेश्वरो यतिः ।
द्वारानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतोऽभवत् ॥ ११ ॥

देवानन्दस्तु तच्छिष्यः श्यामानन्दस्ततोऽग्रहीत् ।
 तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततोऽभवत् ॥ १२ ॥
 पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान् ।
 हर्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दाङ्घ्रिसेवकः ॥ १३ ॥
 हर्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ ।
 यस्य वै शिष्यतां पाप्मो रामानन्दः स्वयं हरिः ॥ १४ ॥
 रामानन्दस्य शिष्योभूदनन्तानन्द नामकः ।
 तस्यशिष्यः कृष्णदासः पयोहारी प्रतापवान् ॥ १५ ॥
 अग्रदासस्ततस्तस्य रामादिर्भगवानभूत् ।
 तस्य लक्ष्मणदासोऽभून्मस्तरामस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥
 लक्ष्मीरामश्च तच्छिष्यो नन्दलालस्ततोऽभवत् ।
 ततश्चरणदासो भूद्धरिदासस्ततः परम् ।
 तस्यरामप्रसादश्च मन्त्रानुष्ठानतत्परः ॥ १७ ॥
 शिष्यो रामप्रसादस्य रामनेवाजदासकः ।
 माणिकरामदासस्तु तस्य शिष्यो महामना ॥ १८ ॥
 सदाराम सुदासस्तु तस्य शिष्यो हि भव्यधीः ।
 दयाशीलः पराभक्ती रामायण्युपनामकः ॥ १९ ॥
 रामदयालदासस्तु तस्य शिष्यो महातपी ।
 फलाहारीति विख्यातो लोके खाकी च विश्रुतः ॥ २० ॥
 श्री मद्धहरिनामदासस्तस्य शिष्यो महामतिः ।
 त्यक्त्वा महान्तपदवीं गत्वा श्रीमणिपर्वते ॥ २१ ॥
 वरविश्रामबागाख्या सुभगा बाटिका कृता ।
 जानकीजीवनं तत्र स्थापित्वा सुप्रेमतः ॥ २२ ॥
 अयोध्यावासरसिकः रामसेवन तत्परः ।
 श्रीमद्धरिनामदासस्य कृपावात्सल्य भाजनः ॥ २३ ॥
 कुत्सां च मारयति यो वै श्रीरामः करुणाकरः ।
 दासोऽहं ब्रह्मणस्तस्य ह्यानन्दगतिकः सदा ॥ २४ ॥

मन्त्रानुक्रमणिका

	पृष्ठ		पृष्ठ
अग्निः प्रियेषु	२००	अर्षा सोम	२०६
अग्ने ! वयं प्रथमस्य	२०८	अर्हन् विभर्षि	१७६
अज्ञानहो नह्यत	१४४	अव्ये बधूयुः	१३६
अत उ त्व पितु	७०	अवीरामिव	१३४
*अतारिषु भरता	६७	अश्मन्वती	१५६
अतोदेवा अवन्तु	३०	अंशुं दुहन्ति	१५०
अथ किमेतैर्वा	३१	अस्य जानन्तो	२०६
अथासुमन्द्रो	६३	अष्टचक्रा नवद्वारा	२०२
अद्रिभिः सुतः	१२६	अष्टौपुत्रासः	१६८
अधःपश्यस्व	१०१	अहं मनुरभवं	१८४
अनृक्षरा ऋजवः	१५७	अहं रुद्रायाः	८८
अपश्यमस्य महतो	११८	*आग्नेयः कृष्ण	१२३
अपिवत् कद्रुवः	३२।८८	आजामि रत्के	१०४
अभ्रातरो न योषणो	३५	आ दक्षिणा	१२४
अभ्रातृभ्यो अना त्वा	१७४	आ दहस्वधा	६४
अभिगावो अनूषत	३६	आदित् ते विश्वे	३२
अमन्दान् स्तोमान्	६०	आदीन् शवस्य	७६
अमृक्तेन रुषता	१३६	आबुन्दं वृत्रहा	७४
अयंवै हरयो दश च	१६३	आरे मत् कर्म	३६
अयं स्तुतो राजा	८६	आरोह तमसो	१६५
अयो द्रष्टो अर्चिषा	६६।१४५	आशुशिशानो	१६५
अरममाणो अत्येति	१४८	आ सूर्योऽरुहत्	१५८
अरंदासो न मीदुसे	८०	आ सूर्योपातु	५६
*अर्वाची सुभगे भव	८४	इतिहासस्य च	१६

इदं त एकं परः	१३५	एवाहि मृतुथा	११४
इदं विष्णुविचक्रमे	३०	एष ब्राह्मणो	३३
इनो राजन्नरतिः	१०७	एष स्य मानुषी	३६
इन्द्र ! क्षत्रमभि	१७३	एषा प्रत्नेन	५७
इन्द्र तुभ्यमित्	१०६	एषा स्या नव्य	३५
इन्द्रं मित्रं वरुणं	५६	ओषु स्वसारः	६६
*इन्द्रश्चिद्या	१००	ऋजीते परिवृंधि	१६०
इन्द्रस्य नाम	२१०	ऋतस्य गोपा न	५३
इन्द्रस्य बाहू	१६३	ऋतस्य तंतुः	५४
*इन्द्रः सीताम्	८५	कथादेवानाम्	११५
इन्द्रोतिभिः	७६	कस्य नूनं	२०८
इयं मे नाभिः	६२	क्रतू यन्ति	११५
इषुर्नधन्वन्	१२६	कं नश्चित्रम्	४६
ईषे त्वोर्जे त्वा	४५	किमित्तेविष्णो	१७४
उक्षा मिमाति	१३७	कृष्णं त एम	६६
उक्षेव यूथाः	१३४	कृष्णां यदेनीम्	१०८
उत त्वः पश्यन्	१५५	कुहस्विद् दोषा	३६
उत त्या सद्यः	६२	गुहा शिरो निहितम्	११८
उदीर्ष्वातो पतिवर्ती	१५४	गोत्रभिदम्	८२
उदीर्ष्वातो विश्वावसो	१५५	गोष्ठं गावः	३६
उपप्रेत कुशिकाः	७७	घृतस्य नाम	२१०
उपमा श्यावः	६१	*घृतेन सीता	८४
उपोपमतिः	१३०	चत्वारिते असुर	७२/२०६
उपोप मे	६२	चत्वारि वाक्	१४
उभा हि हस्ता	१६५	*चत्वारिंशद्	६४
उरुम् नो लोकम्	१६४	चमूपच्छेनः	१६१
उरुम् यज्ञाय	१६२	चिन्मयस्य	४०

वेदों में राम कथा

जातः परेण	७३	दोषो गाय बृहद्गाय	३५
जाया तप्यते	१५२	धन्वना गा आजिम्	१८८
त्वं ह त्यत्	१७५	धनाना नाम	२११
त्वेषं रूपम्	१३३	धनुर्ज्याम्	८६
ततः सिंहासनस्थः	१६७	धनुर्हस्तात्	१६४
तद्बन्धुः सूरिर्दिवि	६१	धर्ममार्गम्	५६
तद्विष्णोः परमेपदे	२८	*नक्तंजातास्या	६५
तनूष्टे वाजिन्	१४०	न की रेवन्तं	१५७
तमितिहासं	१६	न तस्य प्रतिमा	२११
तवश्रिये मरुतो	१८३	न मा मिमेथ	१५२
तस्मिन्हिरण्यये	२०५	न वै तं चक्षुः	२०१
तस्मै नूनमभिद्यवे	२२	न स स्वो दक्षः	१८७
तां सु ते कीर्तिम्	५५	न हि सस्तव	६६
त्रिस्तो मातृन्	७१	नाभा पृथिव्या	१५१
त्रि सप्त सखा	११७	नाम कृत्वा	२११
त्रीणि पदानि	३०	नाम नाम्ना यो	२१०
ते अवदन् प्रथमा	१६७	नाम स्वधावन्	२०६
तेनो अर्वन्तो	११६	नामानिचित्	२०८
दण्डा इवेद्गो	६६	नामानि ते शतक्रतो	२०८
दधाना नाम	२०६	नामैव ग्रहम्	२११
दश हस्ता अंगुल्यः	१६६	नावा न क्षोदः	१६६
दूरे तन्नामगुह्यं	१४१	*नीचीनवारम्	११२
द्वेष्टि श्वश्रूरप	१५३	नृधूतो अद्रिसुतः	१४६
देवा एतस्याम्	१७०	नृ बाहुभ्याम्	१४६
देवानां पूरयोध्या	२०५	पदंयद्विष्णोः	३०
देवास आयन	१४२	परादेहि शामुल्यम्	७६
देहि मे ददामिते	११४	परापूर्वेषाम्	१५६

परा व्यक्तो अरुषः	१३२	*प्रोवाच रामः	८८
परि त्वा अग्ने	१४६	बलं धेहि तनूषनः	७६
परि त्वा पातु	१०५	बोध मे अस्य	३६।१८०
परि दध्म इन्द्रस्य	१६७	ब्रह्मचारी चरति	१७१
परिद्युक्तं सहसः	१२६	*ब्राह्मणो जज्ञे	५७
पवस्व सोम देव	१२१	भगस्ते हस्तम्	८६
पवित्रन्ते विततं	१६१	भजन्त विश्वे	२०६
पवित्रवन्तः परि	१६१	* भद्रो भद्रया	१६७
*पिता यत्स्वाम्	८३	भीताय नाधमानाय	११३
पितुर्मातुरध्या ये	५०	भूरिनाम बन्दमानः	२०८
पुनर्दाय ब्रह्मजायां	१७२	मध्या यत्कर्त्तव्यम्	६५
पुनर्वै देवाः	१७२	मर्त्या अमर्त्यस्य	२०८
पुरं यो ब्रह्मणः	२००	मनवे हवै प्रातः	२८
पुरान् भिन्दुः	७४	मनुर्वै यत् किञ्च	३१
पुरूरवो मा मृथा	३६	महौ ऋषिर्देवजः	७५
पूयमानो विभर्षि	२११	मा वो रसा	६३
पूर्वापरं चरतः	७७	मुखं किमस्य	१७६
प्रकृत्या सहितः	१६६	मुद्रां ज्ञानमयीम्	१६६
प्रकृष्टि ह्येव शूष	१२५	मोघं संहिता एव	३६
*प्रतद्दुःशीमे	१७३	य इमे रोदसी	७८
प्रज्ञान् मानात्	५१	य ई चकार	७०
प्र त्वा मुञ्चामि	१५८	यजायथा	१७५
प्र भ्राजमाना	२०६	यत्तेऽनाधृश्यम्	२१०
प्र मातुः प्रतरम्	१२८	यत्रेदानीं पश्यसि	१४५
प्र वः पान्तम्	१८५	यत्रौषधीः	१६२
प्र वो वायुम्	११६	यथा न योषित	३६
प्रियन्ते नाम	२०६	*यदंग त्वा भरताः	६८

वेदों में राम कथा

२१६

यदचरस्तन्वा	१०२	शाकमना शाकः	११०
यदिद्र चित्रमहह	१६६	शिवो नामासि	२१०
यद्विष्णो रूपमम्	२०६	शुचिः पुनानः	१२०
यः सृबिन्द	१६४	श्येनो न योनि	१३१
यस्त्वा भ्राता	३६	*श्रीरामचन्द्रम्	३४
यस्य वाक्ततिः	२११	षष्ठिः सहस्रा	३१
या अयोध्यापुरी	२०६	* स इहासं तु	१०१
यावतीद्यावा पृथिवी	५८	सई वृषा न	१०८
युवं कवीष्ठः	३६	*सचन्तः यदुषः	१८०
येभिर्ददे वृष्ण्या	१११	सजातो गर्भः	६८
यो देवानां नाम	२१०	सदा ते नाम	२११
यो ब्रह्माणं विदधाति	१	स द्विवन्धुः	६०
यो वै तां ब्राह्मणः	२००	सघ्रीची सिंधुः	१७६
रक्षोहणम्	१४५	सप्तभिः पुत्रैः	१६६
*रामोऽहम्	८६	सती चिद्या	१००
रूपं रूपम्	१६३	सभामेति कितवः	१५४
वयं नाम प्र	२१०	सम्प्राजो ये	१३०
विधुं दद्राणम्	१०६	* सम्बत् सरं न	६४
विश्वामित्रा अदासत	७८	समी रथं न	१२७
विष्णुरित्था	६६	समेत विश्वा	३२
विष्णुं स्तोमाः	६७	सम्यक् सम्यञ्चः	१६०
विष्णोर्नुकं	३०	सयह्वयोऽवनीः	४८
विष्णोर्योनिम्	३०	सरस्वती सरयुः	६२
विष्णोः वीर्याणि	३०	सरुद्रेभिः	४६
ब्रीडौ सतीरभिधीरा	१७	*सक्के द्रप्सस्य	१५६
शशः क्षुरम्	१४२	सर्वोवैयत्र जीवति	१०४
शतेन पाशैरभिधेहि	४०	स वाजं यात	४८

स वीरोदत्त	१०५	सुपर्ण इत्था नखम्	१४३
स स्वाश्वित्	१६६	सुपर्णवस्ते मृगः	१८६
सहस्रधारेऽवते	१७८	सुमंगलीरियं बधूः	८६
सहस्रधारे वितते	५२	सूर्यस्येव रश्मयः	१३६
सहिद्युता विद्युता	४७	सोमो राजा प्रथमः	१६८
संहोत्रं स्म पुरा	१३५	हंसः शुचिः सत्	६१
साकं बदन्ति बहवः	१४७	हरिं मृजन्ति	१४६
सा वृकी रश्मिना	३५	हस्तेनैव ग्राह्यः	१७०
स्त्रियं दृष्ट्वा किल	१०३	हितो न सप्तीः	१२२
सितासिते सरिते यत्र	२८	हिरण्यकर्णम्	१८६
सिन्धोरिव प्रवणे	११६	हिरण्य गर्भः	७१
सृजः सिन्धू रहिना	१७७		

जिन मन्त्रों पर * का चिन्ह है उन मन्त्रों में रामायण के विशेष पात्रों का नाम आदि है ।

